



रामकाव्यधारा : अनुसंधान एवं अनुचितन



रामकाव्यधारा : अनुसंधान एवं अनुचितन

•

डा० भगवती प्रसाद सिंह

आचार्य तथा अध्यापक, हिन्दी विभाग,  
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

•

**लोकभारती प्रकाशन**

15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन  
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग  
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

कॉपीराइट  
डॉ० मगवती प्रसाद सिंह

●

प्रथम संस्करण : १९७६

●

लोकभारती प्रेस  
१८, महात्मा गांधी मार्ग  
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य : ३०.००

‘भायप भगति’  
के साक्षात् स्वरूप  
परलोकवासी  
दादा जोधार्सिंह  
को  
अर्पित



## आत्मनिवेदन

रामभक्ति-साहित्य से मेरा सम्बन्ध चन्दन-पानी का रहा है। कबसे ? कह नहीं सकता। उसके सम्बन्ध में पढ़ने-लिखने की रुचि, पढ़ने-लिखने में गति होने के साथ ही अकुरित हुई, किन्तु इस क्षेत्र में अनुसंधान की प्रवृत्ति आचार्य स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल की प्रत्यक्ष प्रेरणा तथा तपोनिधि प० चन्द्रबली पाण्डेय के प्रात्साहन से जगी। इसके फलस्वरूप सरस्वती (जनवरी, १९४३) में मेरा प्रथम लेख 'सूकरखेत' प्रकाशित हुआ। तुलसी साहित्य के सुधी विद्वानों में उसका जैसा स्वागत हुआ, उससे मुझे परिणत शोध प्रविधि अपनाने में सहायता मिली।

राम काव्य के ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन करते हुए तुलसीदास के पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनगिनत रामभक्त कवियों और काव्यग्रन्थों का संधान मिला। उनमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है—पदमुक्तावली। यह प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित है। इसके अन्तर्गत १५वीं तथा १६वीं शती के अनेक निगुण-सगुण रामभक्तों के पद संग्रहीत हैं। उनकी विषय-शैली की मोमासा करने से आचार्य शुक्ल का यह अनुमान तथ्याश्रित प्रतीत हुआ कि 'सूरसागर पहले से चली आती हुई हिन्दी गीतिकाव्य-परम्परा का एक अत्यन्त विकसित रूप है।' स्वामी रामानन्द से लेकर तुलसी के समकालीन महात्मा अग्रदास और उनकी परम्परा के रामभक्तों की पद-शैली की रचनाओं से उक्त विद्या की लोक तथा सत समाज में समान रूप से व्याप्त प्रतिष्ठा प्रमाणित हो गयी। अतः तुलसीदास की जीवनी एवं कृतित्व के अज्ञात एवं अल्पख्यात तत्त्वों का अनुसंधान तथा विश्लेषण अपनी साहित्य साधना का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस सुदीर्घकाल-व्यापी शोध की अतर्थागा में सचित तथ्यों और तत्त्वों को प्रकाश में लाने के समय-समय पर अनेक निमित्त बनते रहे। प्रस्तुत ग्रन्थ उन्हीं स्फुर्तिगो का समवेत रूप है।

गहरे अनुशीलन से प्राप्त इन बिखरी हुई मुक्तामणियों को संग्रहित करते हुए मेरी दृष्टि इनके माध्यम से यथासम्भव न केवल रामभक्ति-काव्य धारा का



शृङ्खलाबद्ध वृत्त प्रस्तुत करने की ओर रही है, वरन् इस शृङ्खला की कुछ अज्ञात और अननुसंधानित कड़ियों को विद्वज्जनो के समक्ष प्रस्तुत करने तथा नवीन सदर्भ में सामान्यतः समस्त रामप्रति-काव्य और विशेषतः तुलसीदास के काव्य का आस्तिक दृष्टि से मूल्यांकन करने की ओर भी रही है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर निगन्धों को सकलित, नियोजित एवं व्यवस्थित करने के कारण इनके प्रकाशन का ऐतिहासिक क्रम मुरझित नहीं रह सका है। यह तथ्य मेरे साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास क्रम को सक्षिप्त करने में बाधक हो सकता है। अतः तत्त्वग्राही पाठको से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इसके क्षीराश—राम-तत्व तथा उसके आस्वादक सत्तों को निष्ठा—को ग्रहण कर लें और मीराश—दुराग्रह तथा दृष्टिदोष को मेरा अतर्मल धुलने के लिये छोड़ दें।

श्री जानकी नवमी, वैशाख शुक्ल ६, स० २०३३  
साकेत, बेतियाहाता, गोरखपुर।

—भगवती प्रसाद सिंह

## विषय-सूची

क्रमांक	पृष्ठ
१. आत्मनिवेदन	५
२. सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन	६
३. नाययोग और राममक्ति धारा	२७
४. श्री वृष्णदास पयहारी की योगभूला भक्ति	३१
५. मध्यकाल के अल्पख्यात राममक्तो की कुछ नवप्राप्त रचनाएँ	४१
६. स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली	७५
७. अकबर की रामनिष्ठा	१३४
८. तुलसीदास का गुरुधाम	१३७
९. रामलला नहछू ; पुनर्विचार	१६५
१०. मानवता और रामचरितमानस	१८६
११. तुलसी की लोकाराधना	२०६
१२. तुलसी का लोकानुभव	२३२
१३. भोराबाई के राममक्ति-परक पद	२५६
१४. राममक्ति साधना में योग तत्व	२६४
१५. तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन	२७८
१६. बिहार के रसिक सत	२६२
१७. तुलसीमत और वर्तमान जीवन संघर्ष	३१०
१८. मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद	३२०
१९. बाबा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी	३२५
परिशिष्ट (क) भोराबाई के राममक्ति-परक पद	
(ख) नामानुक्रमणी	



## सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन

पुराणों में रामावतार की प्रतिष्ठा हो जाने के साथ ही रामोपासना का द्वार उन्मुक्त हो गया। वाल्मीकि रामायण<sup>१</sup> तथा महाभारत में हनुमान और विभीषण की रामभक्ति का जो वृत्त प्रस्तुत किया गया है, उसमें यह स्पष्ट लक्षित होता है कि रामोपासना का बीजारोपण सर्वप्रथम दक्षिण की आदिवासी जातियों— वानरो, ऋशो तथा अमुरो में हुआ। हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवत, विभीषण आदि रामभक्त के रूप में लोकविश्रुत हैं। उत्तरी भारत में इसका प्रसार उन्हीं के माध्यम से हुआ। महाभारत काल में राम के साथ उनके भक्त, विशेष रूप से हनुमान की भी पूजा होने लगी थी। वनपर्व<sup>२</sup> में पांडवों के द्वारा की गई हनुमान-पूजा प्रकारान्तर से रामपूजा अथवा रामभक्ति का ही आनुपमिक विकास माना जायगा। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण ने ऐक्वाकुओं के कुलदेव श्रीरंग का दिव्य विग्रह विमानसहित अयोध्या से लाकर श्रीरंगनाथ धाम में कावेरी की दो धाराओं के बीच स्थापित किया था। श्रीवैष्णव संप्रदाय में श्रीरंग राम से अभिन और श्रीरंगधाम वैष्णवभक्ति का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। ऐतिहासिक काल में शठ-कोप, कुलशेखर आदि प्रमुख आलवारों तथा नाथमुनि एवं रामानुज जैसे अग्रणी वैष्णवाचार्यों को रामभक्ति का प्रसाद इसी दिव्यधाम में प्राप्त हुआ था।

व्यक्तिगत साधना में रामोपासना की यह परंपरा गुप्तकाल में अबाधरूप में चलती रही। महाकवि कालिदास ने अपने समय में 'रामगिरि'<sup>३</sup> की रामतीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का संकेत दिया है। गुप्तकालीन इतिहास में भी चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता की 'भगवत् रामगिरि स्वामिन्' की उपासिका कहा गया है। वराहमिहिर ने भी बृहत्संहिता में दाशरथिराम की उपासना के प्रचार की चर्चा की है। यह क्रम प्राचीन पाश्चात्य संहिताओं के निर्माणकाल (चौथी से आठवीं

१. वाल्मीकि रामायण : उ० का० : ४०/१४-१७

२. महाभारत : वनपर्व : १४८/१६, १७, १८, २०.

३. महाभारत : वनपर्व १५१/१५, १६, १७.

४. मेघदूत १.

५. दि व्लासिकल एज, पृ० ४१७

शताब्दी) तक किसी प्रकार चलता रहा, इसका पता अहिर्बुध्न्यसंहिता के कति-  
पय उल्लेखों से लगना है।

यह द्रष्टव्य है कि प्रवर्तन काल से लेकर आठवीं शती तक रामोपासना  
व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में ही विद्यमान रही। उसका सांप्रदायिक रूप इसके  
पश्चात् विकसित हुआ। सांप्रदायिक साहित्य का प्रणयन भी तभी से आरम्भ  
हुआ। श्री वैष्णव ऐतिहासिक काल में अपनी परंपरा का सूत्रपात शठकोप  
आलवार (नवीं शती) से मानने हैं। रामानंदीय संप्रदाय का प्रवर्तन श्रीसंप्रदाय  
के ही अन्तर्गत हुआ। अतएव रामभक्त भी शठकोप को ही अपना प्रथम आचार्य  
कहते हैं। इस प्रकार रामभक्ति की सांप्रदायिक धारा का प्रवाह नवीं शती में  
आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में पाया जाता है।

### आलवारों की रामभक्ति

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तरी भारत में भागवत धर्म का ह्रास  
होने लगा। उनके परवर्ती शासक मिहिरकुल, यशोधर्मन् और हर्षवर्धन वैष्णवैतर  
धर्मों के अनुयायी थे। अतएव आश्रय और प्रोत्साहन के अभाव में, गंगा की  
घाटी तथा मध्यभारत से हटकर, द्रविड देश वैष्णवसाधना का मुख्य गढ़ बन  
गया। आठवीं शताब्दी से आलवारों की पीयूषवाणी से सिंचित हो, भक्तिलता  
पुनः सहजहा उठी। इनकी मर्यादा बारह मानी जाती है। जिनमें प्रथम चार  
प्यायगार, भूतत्तार, पे, तथा तिरुमलिशाइ, प्रधानतया नारायण और विष्णु के  
उपासक थे। पाँचवे आलवार शठकोप थे। वे मम्मालवार के नाम से भी जाने  
जाते हैं। आलवारों में इन्हीं की सर्वाधिक प्रसिद्धि हुई। इनकी 'सहस्रगीति' में ही  
दाशरथि राम की अनन्य शरणागति का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है।  
'दशरथस्य मृतं तं विना अन्यशरणवातास्मि'<sup>१</sup> में इनकी यह भावना स्पष्टतया  
व्यक्त हुई है। संप्रदाय में ये राम की पादुका के अवतार कहे जाते हैं। अपने  
समय के जिन ३२ दिव्यविग्रहों की मूर्ति इन्होंने की है, उनमें राममूर्तियाँ भी  
हैं।<sup>२</sup>

वेकटाचल के निरुक्त तिरुपति में श्री रामचन्द्र की मूर्ति की स्थापना इन्होंने  
ही की थी। इसका उल्लेख सांप्रदायिक साहित्य में पाया जाता है।<sup>३</sup> सदाशिव-

१. सहस्रगीति, ३/६/८.

२. प्रपन्नामृत, पृ० ३२७.

३. श्रीराम रहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४३, ४४.

सहिता मे कलियुग मे रामतारक मंत्र के उपदेश से, सांप्रदायिक रूप मे रामोपासना के प्रचार का श्रेय, इन्हीं को दिया गया है । इनकी साधनाभूमि वैकटाचल बताई गई है—

कलिकलोद्भवाना च जीवानामनुकम्पया ।  
देव्यानुबोधित साक्षाद्विष्णु सर्वजनेश्वर ॥  
वृत्तकृत्या तदा तदमीर्लब्ध्वा मन पङ्कजरम् ।  
ददौ प्रीत्या सदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥  
वेङ्कटादौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराकुश ।  
विष्वक्सेन समाराध्य समिप्यति षडक्षरम् ॥  
तत्समीपे महापीठे वेङ्कटे रङ्गमण्डपे ।  
जपिष्यन्ति चिर मन्त्र तारक तिमिरापहम् ॥<sup>१</sup>

इससे रामभक्ति के प्रचार मे शठकोप आलवार का महत्त्व आँका जा सकता है । उनकी माधुर्यभक्ति की विवचना आगे की जायगी ।

छठवे आलवार शठकोप के शिष्य मधुर कवि हुए । सांप्रदायिक ग्रन्थों मे इनकी जीवनी का जो अंश प्राप्त है, उससे इनका रामोपासक होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता । प्रपञ्चामृत मे इनकी अयोध्यायात्रा, सरयूस्नान और सीताराम-पूजा का उल्लेख करत हुए कहा गया है कि इन्होंने कुछ दिन अयोध्यावास भी किया था ।

सातवे आलवार केरल के राजा कुलशेखर प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं । रामायण को वे वेदों के समान पूज्य मानते थे ।<sup>२</sup> कहा जाता है कि रामचरित मे उनकी इतनी आस्था थी, कि एक बार कथा मे ध्यास के मुख से श्वरदूषण द्वारा विशाल

१. वही (सर्वाशिव सहिता से उद्धृत), पृ० ४४

२. तस्मिन्कालेऽयं वेदातिस्तस्माद्वदरिकाधमात् ।

अयोध्यामगमद्वीमाकविर्मधुरसत्तक ॥

स्नात्वाय सरयूनद्यां वेदाती भगवत्पर ।

सतेष्य सीतासहितमयोध्यारघुनन्दनम् ॥

कचित्कालमुदासत्तत्र नित्यवत्सरतः सदा ॥ अष्टावृत, पृ० ३६२.

३. वेदवेद्ये परे पुति जाते दशरथात्मजे ।

येव प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

वेदतुल्यमिदं साक्षाच्छ्रीमद्रामायण परम् ।

बाल सशिष्य तद्भक्त्या भगवान्कुलरोत्तर ॥ वही, पृ० २७८.

राक्षसी सेना के साथ अकेले राम पर आक्रमण किये जाने का वृत्तान्त सुनकर वे आवेश में आ गये थे और प्रभु की सहायता के लिए छट अपनी सेना का डका बजवा दिया था। इसी भाँति एक अन्य अवसर पर सीताहरण का वृत्तान्त सुनते ही, उनके उद्धार के लिए उन्होंने संका पर धावा बोल दिया था और सेना सहित समुद्र में कूद पड़े थे।<sup>१</sup>

नाभादास ने भक्तदास<sup>२</sup> के नाम से इनका परिचय देने हुए इसका संकेत किया है। प्रियादास ने इन्हें 'आवेशी' रामभक्त कहा है। कुलशेखर के सवध में यह भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने राम की प्रेरणा से अपनी पुत्री उनके प्रतिरूप श्रीरगदेव को व्याह्र दी थी।<sup>३</sup> आराध्य के प्रति ऐसे अगाध अनुराग के उदाहरण भक्तिसाहित्य में दुर्लभ हैं।

रामभक्ति के ये भाव कुलशेखर की कृतियों में भी अवतरित हुए। तमिल भाषा के एकादश छंदों में उनके द्वारा वर्णित सम्पूर्ण रामकथा, भक्तिसाहित्य की एक अमूल्य निधि है। उसमें पहली बार भक्ति के उद्गारों से ओतप्रोत संपूर्ण

१. वही, पृ० २८०.

२. सप्त सालि जानै सबै, प्रगट प्रेम कलियुग प्रधान।

भक्तदास एक भूष धवन सीताहर कीनों ॥

'मार-मार' करि खड्ग धाजि सागर में दीनों।

मरतिह को अनुकरन होइ हिरनाकुस मारयो ॥

यहै भयो दशरथ राम विछूरत तन छायो ॥

भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ३६७

३. प्रियादास जी ने इसकी टीका करते हुए लिखा है कि कुलशेखर की उत्कट भक्ति से प्रसन्न हो सीताराम ने उन्हें तत्काल दर्शन दिया था—

'मार मार' करि खड्ग निकासि लियो,

दियो घोरौ सागर में सो आवेस आयो है।

"मारो महिकास बुष्ट रावन विहाल करौ,

पावन को देखौ सीता भाव दूष छायो हैं ॥

जानकी रवन बोज दरसन दियो जानि।

बोले बिन प्राण जियो नीच फल पायो है ॥

सुनि सुख भयो, गयो शोक हृदय शरन जो।

रूप की निहारनि यों केरि के जियायो है ॥

वही, पृ० ३६६.

रामचरित के दर्शन होते हैं। आरम्भ में अयोध्या और राम की स्तुति करके आठवें छंद तक राम के राज्याभिषेक की कथा गयी गई है। इसके पश्चात् सीता के भू-प्रवेश का उद्देश्य पृथ्वी में अपने अणुपरमाणुओं को मिलाकर लवबुश के समान रामयशगायकों को जन्म देना बताया गया है। दसवें छंद में उनकी सेवा में गरुड की नियुक्ति का कारण भक्तों की रक्षा कही गई है। ग्यारहवें श्लोक में राम के मंत्री और दूत हनुमान की वदना की गई है। अन्त में राम का गुणगान करने वाले भक्तों को परम पद की प्राप्ति का अधिकारी कहा गया है।<sup>१</sup> इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि वस्तुतः सांप्रदायिक रामभक्ति की उद्भव-स्थली, द्रविड देश के उपर्युक्त आलवार भक्तों की भावसाधना ही है।<sup>२</sup>

### वैष्णवाचार्यों की रामभक्ति

वैष्णवों के चार सम्प्रदाय—श्री, सनक, ब्रह्म और रुद्र—में रामभक्ति के मूल केवल श्रीसंप्रदाय और ब्रह्मसंप्रदाय, में ही पाये जाते हैं। उसकी सांप्रदायिक परम्परा भी इन्हीं दो के भीतर पल्लवित हुई। प्रथम के आदि आचार्य नाथमुनि और द्वितीय के मध्व थे।

### श्रीसंप्रदाय के आचार्यों की रामभक्ति

आलवारों के उत्तराधिकारी श्रीसंप्रदाय के आचार्य हुए। ये उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ ही भक्तिरस के भोक्ता भी थे। आलवारों की भाँति इन्होंने विष्णु तथा उनके अवतारों में कृष्ण, वामन और नृसिंह के साथ रामावतार में भी अपनी गूढ़ आस्था और तन्निपयक साहित्यरचना में रुचि दिखाई। इसीलिए रामभक्तों में ये पार्षदों के अवतार के रूप में पूज्य हैं।<sup>३</sup> वैसे श्रीसंप्रदाय में लक्ष्मीनारायण की ही प्रमुखता दी जाती है, किन्तु सीताराम की उनसे एकात्मता स्थापित कर इन उदारराज्य और दीर्घदर्शी महात्माओं ने सम्प्रदाय के भीतर रामभक्ति के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा कर दिया।

१. प्रपन्नामृत, पृ० २८५.

२. देखिये—‘वेङ्कट—तिरुमुडि’ (सं० श्री० कृष्णमाचार्यों), पृ० १५४-५७

३. प्रपन्नामृत, पृ० ४५०.

४. श्री वैष्णव सम्प्रदाय के एक मुख्य सिद्धान्त ग्रन्थ—‘बृहद्ब्रह्म संहिता’ में सीताराम और लक्ष्मीनारायण की अभिन्नता दिखाई गई है—

तन्नायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः ।



प्रथम आचार्य नाथमुनि (८२४ ई०—१२४ ई०) थे । ये रघुनाथाचार्य तथा रगाचार्य के नाम से भी जाने जाते हैं । 'दिव्य देशो' का पर्यटन करते हुए, इन्होंने अयोध्या और चित्रकूट का भी दर्शन किया था ।<sup>१</sup> इनके द्वारा आराधित कोदंड-पाणि राम की मूर्ति धालाजी पर्वत पर बड़ त्रियरमठ में अब तक विद्यमान है । सर्वप्रथम श्रीरामानुजाचार्य ने इसी विग्रह से प्रेरणा प्राप्त की थी । तत्पश्चात् गोविन्दराज ने रामायण की विद्युत, 'भूषण टीका की रचना, इसी स्थान पर, हनुमान जी के समक्ष बैठकर की थी । श्रीमत्संज्ञनभूषणस्य शिखरे श्रीमास्ते सन्निधौ' से इसकी पृष्टि आप ही हो जानी है । इनके द्वारा विरचित 'नाथमुनि यागपटल' और 'मानसिक ध्यान रामायण' नामक दो रामभक्तिविषयक ग्रन्थ बताये जाते हैं ।<sup>२</sup> इनमें प्रथम के सम्बन्ध में श्री रामटहलशम का कहना है कि उसकी तोताद्रिमठ से प्राप्त ३०० वर्ष पुरानी प्रतिलिपि उपलब्ध है । इसके ५०वें पटल से इन्होंने 'राममन्त्र-वैभव' पर लिखे गये कुछ छंद भी उद्धृत किये हैं ।<sup>३</sup> इसके अतिरिक्त प्रपन्नामृत में नाथमुनि के महाप्रस्थान का जो वृत्तान्त दिया गया है, उससे 'रामचरणो' में उनकी अलौकिक अद्या व्यक्त होती है । कहते हैं एक दिन नाथमुनि को दूढ़त हुए दो धनुर्धर राजकुमार, एक सुन्दरी और बलवान बानर के साथ, उनके घर आये । उनकी पुत्री से पूछने पर उन्हें पता चला कि नाथमुनि

रामरूपेण रमते सीतया परया सह ॥

आविभूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता ।

आविर्भावे क्षितौ जाता जानकी दिव्यरूपिणी ॥

सू० ब० सं०, पृ० ८४, ८६.

१. प्रपन्नामृत, पृ० ४५०,

२. श्रीरामरहस्यप्रचार्य (परि०), पृ० ४५

३. वही, पृ० ४६

४. एव श्रीरामदेवस्य मन्त्राक्षरपञ्चाकर ।

रां रामाय नम इति मन्त्रराजो मितार्थव ॥

ध्यायेदप जगन्नाथ राम दशरथात्मजम् ।

पर ब्रह्मेति सविन्त्य र्भट्टणवस्थ विभूतिभि ॥

तत श्रीराममन्त्रस्य पदक्षरनिमोगिन ।

रामबीजेन रामस्य परमर्षप्रदो भवेत् ॥

(धोनाथमुनि शोषपटल से उद्धृत)

श्री रामरहस्यप्रचार्य (परि०), पृ० ४६-४७.

कही बाहर गये हैं। अतएव चारों आगन्तुक लौट गये। पिता के घर आने पर पुत्री ने सारा हाल कह सुनाया। नाथमुनि तुरन्त ही उनके दर्शनों के लिए घर से निकल पड़े। गाँवों, नगरो, पर्वतों और जंगलों में ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब वे हताश हो गये, तो आराध्य का साक्षात्कार लाभ करने के उद्देश्य से उन्होंने परमधाम की यात्रा की।<sup>१</sup>

नाथमुनि के अनन्तर पृङ्गरीकाक्ष आचार्यपीठ के अधिकारी हुए। उनका 'रामार्पा' नामक रामभक्ति का ग्रन्थ दक्षिण के 'दिव्य देशों' में पाया जाता है।<sup>२</sup> तीसरे आचार्य राममिश्र थे। इनकी दो रचनाओं 'रामपङ्कश प्रपत्ति स्तोत्र' और वाल्मीकि-रामायण की 'भावप्रकाश टीका' का पता चलता है। नाम से ही इनका प्रतिपाद्य स्पष्ट है।<sup>३</sup> श्री राममिश्र के शिष्य माधुन मुनि (६१६-१०४० ई०) असाधारण महत्व के आचार्य हुए। वास्तव में श्रीसंप्रदाय की स्थापना तथा उसके सिद्धान्तों का प्रवर्तन इन्हीं की प्रेरणा का फल था। अपनी प्रसिद्ध रचना 'आलवदार स्तोत्र' में, इन्होंने राम की विभीषण से की गई प्रतिज्ञा 'सद्वृत्तदेव प्रपन्नाय की दुहाई दी है और अपने पितामह नाथमुनि की अकृत्रिम रामभक्ति का स्मरण दिलाकर, उसी नाते से चरणों में स्थान पाने की पात्रता

१ सन्ध्यावेद्यस्तत्र ग्रामेषु नगरेषु च ।

तौ राजपुत्रौ नाथार्य काननेषु च सादरम् ॥

चचार लग्नहृदयस्तेषां सदर्शने तदा ।

तेषामलभमानोऽप्य दर्शनं सुमहात्मनाम् ॥

कुत्रापि भूतले योगी कथञ्चिदपि यत्नतः ।

वैकुण्ठेऽपि च ताम्रपट्टं यतेयमिति वाङ्मया ॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४१८.

२ श्रीरामरहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४७

३ रामटहलदास जी ने राममिश्र स्वामी के राममंत्रविषयक १० श्लोक 'श्रीराम-पङ्कश प्रपत्ति स्तोत्र' से उद्धृत किये हैं। उनमें से नमूने के लिये दो नीचे दिये जाते हैं—

रामायणपरत्वार्थप्रतिपाद्यपर स्मृतः

एकार्तिकानां सेव्योऽयं मन्त्रराज पङ्कश ॥

गुह्यक्षीन्द्रकाकादीन् भस्मप्लवगराक्षसान् ।

मोक्षो बत पुरा येन ॥ मे प्राप्ता भविष्यति ॥

वही, पृ० ४८.

दिखाई है ।<sup>१</sup>

रामानुजाचार्य (१०१६-१११३ ई०) यागुन मुनि ने प्रशिक्ष्य थे । इन्होंने अपनी जीवन-यात्रा का अविकाश श्रीसंप्रदाय के सैदान्तिक ग्रंथों की रचना और प्रचार में बिताया । संप्रदाय के अंतर्गत वे अपने नाम-गुणानुसार छप अथवा सत्संग के अवतार माने जाते हैं और अर्हतिश अग्रज की सेवा ही इनकी निष्ठा बताई जाती है । प्रसिद्ध है कि महागुण स्वामी ने इनका दीक्षास्कार रामविग्रह के सामने काट्ट राममंदिर (बेंकटूराल निरुति) में किया था ।<sup>२</sup>

वाल्मीकि रामायण में इनकी अत्यधिक निष्ठा थी । उसकी चौबीस आवृत्तियाँ इन्होंने गैरगुण स्वामी में मनोयोगपूर्वक सुनी थी । रामतीर्थों में इनकी भक्ति इसी से जानी जा सकती है कि गैर राजा श्रमिष्ठ द्वारा यात्रान्त चित्रगुट का इन्होंने उद्धार किया था और अयोध्या का भी दर्शन करने आए थे । प्रपन्नामृत के अनुसार यादवावध पर इन्होंने स्वयं राम के सीताविग्रह सप्तकुमार की स्थापना की थी ।<sup>३</sup> उसमें इनकी अनुरक्ति इतना दृढ़ हो गयी थी कि आनधारो तथा अन्य पूर्वाचार्यों द्वारा आराधित श्रीरंगदेव को भी वे झूल गये थे । श्रीभाष्य

- १ ननु प्रसन्न सहृदय नाथ तवाहमस्मोति च याचमान ।  
तयानुकम्प्य स्मरत प्रतिष्ठा भदेकवज्रय किमिव सत ते ॥  
अहृन्निम त्यक्चरणारविद प्रपन्नकर्पावधिमात्मवत्तम् ।  
पितामह नाथमुनि विलोभ्य प्रसीद भद्रवृत्तमभिलिखित्वा ॥

आलवदारस्तोत्र, पृ० ६७, ६८

- २ श्रीरामो भगवान्पूर्वं तत्र ज्येष्ठो भवद्यथा ।  
तयवाभूत्कलिपुगे धीर्मात्सकमणदेशिक ॥ प्रपन्नामृत, ४५०
- ३ सन्निधौ रामचन्द्रस्य कोदण्डशरधारिण ।  
तप्तात्म्यां शक्षकक्रान्तां विधिनाम्नौ कृपानिधि ॥ वही, पृ० ३४  
यह कोदण्डराम मंदिर अब तक विद्यमान है । विशेष विवरण के लिए देखिये—कल्याण तीर्थाङ्क पृ० ३४६
- ४ वही पृ० १००
- ५ वही पृ० ८७
- ६ वही पृ० १०८
- ७ वही पृ० १५५
- ८ सप्तसुतस्य जनश्रुष्टिमनोहरस्य लावण्यसपदि निमग्नमना यतीन्द्र ।  
विस्मृत्य रगपतिमागम भूषरेन्द्रे तस्यौ सुख विविधवास्थपरपराम्भि ॥  
वही, पृ० १५६

की रचना इसी स्थान पर हुई थी ।<sup>१</sup> 'शरणागति गद्य' में राम के प्रति अभिव्यक्ति भाव, इनकी अगाध रामभक्ति के द्योतक हैं ।<sup>२</sup>

श्री रामानुज की शिष्यपरम्परा में, कुरेश स्वामी के 'पंचस्तवी', पराशर भट्टार्य के 'गुण-रत्न कोष', सोवाचार्य के 'श्रीवचनमूषण' और देवराजाचार्य के 'दरवरमुनि शतक' आदि ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों की रामभक्ति का अखंड प्रवाह मिलता है । इनके पीछे भी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य—शृंगार्य, ताताचार्य और लक्ष्मी-कुमार ताताचार्य रामभक्ति का प्रचार करते रहे । विजयनगर के बीरहोव मतानुयायी राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) को 'पंचसत्कारों से भूषित कर रामभक्त बनाने' का ध्येय श्री शृंगार्य को ही है । प्रपन्नामृत के इस उल्लेख का समर्थन तत्कालीन इतिहास भी करता है । विजयनगर के राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) द्वारा निर्मित 'हजारा राममंदिर' उस प्राचीन नगर के जवसावशेषों के बीच खड़ा आज भी

१. वही, पृ० १५०

२ 'अपारकाक्ष्यसौरीत्यवात्सल्योदायस्वयंसौन्दर्यमहोदधे काकुत्स्थ ।'  
'मा ते भूवन्न सशय अनृत नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन, रामो  
द्विर्नाभिभाषते ।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभय सर्वभूतेभ्यो ब्रह्मैतद् व्रत मम ॥

इति मयैव ह्युक्तम्, अतस्त्व तत्त्वतो मज्जानदशनंप्राप्तियु निस्सराय  
सुखमास्त्व ।"

शरणागति गद्य, पृ० ११, १२.

३ शृंगार्य इति ख्यात सर्वशास्त्रविशारद ।

रामभक्तो विशेषेण नित्य रामकथाप्रिय ॥

विरूपाक्षस्ततो धीमान्वीरसैवमतोऽपि स ।

पुत्रमित्रकलत्राविसहितश्च स नागर ॥

पंचसत्कारसम्पन्ने बभूव सुमहायश ।

राजागुलीये धीराममुद्रा दृढतरा ध्येयात् ॥

धीराममुद्रा सर्वत्र तदा प्रभृति विभृता ॥

प्रपन्नामृत, पृ० ४८५

४. प्रपन्नामृत, पृ० ४७७

५ The Hazara Ram Temple, most probably the work of Virupaksha II is a more modest but perfectly finished example of this style. The inner walls of the temple are decorated in relief with scenes from the Ramayana

A History of South India  
(K. A. Nilkantha Shastri) P. 464

अपने निर्माता की रामभक्ति का सादर दे रहा है।

प्रवक्तामृत में वर्णित परवर्ती आचार्यों की रामभक्ति सम्बन्धी अनेक कथाओं से यह ज्ञात होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक विजयनगरी-होते-होते श्रीमत्प्रदाय के भीतर राम की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि आचार्य लोग उनके चरित का गुण-गान हो नहो करते थे प्रत्युत उनकी विधिवत् पूजा और राममंत्र सहित पञ्चसंस्कार दीक्षा का भी प्रचार करने लगे थे।

## ब्रह्मसंप्रदाय में रामोपासना

श्री मध्वाचार्य (११६६-१३०३ ई०) के ब्रह्मसंप्रदाय में रामभक्ति के गूढ़ आरम्भ ही से मिलता है। उत्तर भारत की दिग्विजय करके बदरिकाश्रम से वे दिग्विजयी राम की एक मूर्ति दक्षिण में गये थे।<sup>१</sup> प्रसिद्ध है कि अपने शिष्य नरहरितीर्थ से, १२६४ ई० के लगभग, उन्होंने जगन्नाथपुरी में मूल रामसीता की मूर्ति मँगवाई थी। सम्भवतः यही विग्रह उन्होंने अपने अष्टशिष्यों में से एक को दिया था, जिसकी स्थापना उत्तरादिमठ मैसूर में 'मूलराम' के नाम से हुई थी। इससे अनिरक्त उद्गुपी के 'कनैमारमठ' में प्रतिष्ठित रामविग्रह भी मध्वाचार्यप्रदत्त बताया जाता है। काशी में हनुमान घाट पर स्थापित 'मध्वाश्रम', मध्व संप्रदाय की रामभक्ति शाखा की मूल गद्दी—उत्तरादिमठ—से ही सम्बद्ध है।

मध्वाचार्य हनुमान के अवतार कहे जाते हैं।<sup>२</sup> 'मध्व विजय में रामदूत हनुमान का यशगान किया गया है। संप्रदायिक परंपरा में, हनुमान की राम-भक्ति सम्बन्धी एक छंद प्रचलित चला आता है, जिसका भाव यह है कि रामार्चन

१. वैष्णवविजय शिविजय (भट्टारकर), पृ० ६६

२. मध्व संप्रदाय में मूलराम विग्रह की वदना का श्लोक नीचे दिया जाता है।

इससे उसके प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है—

सीतायुक्तमज्ञाविपूजितपदं श्रीमूलराम विभुम् ।

राम विविग्रयाद्यमेवममल श्रीवशराम मुधो ॥

व्यासाख्या प्रतिमा सुदर्शनशिला श्रीविदुसाचार्या मुदा ।

धकाकानपि पूजयन् विजयते सत्यप्रमोदो गुरुः ॥

३. राममंत्र निज कर्ण सुनाया । परंपरा पुनि तत्त्व सखाया ॥

संप्रदाय विधि मूल प्रधाना । अधिकारी तामहें हनुमाना ॥

मध्व रूप सोई अवतरिया । नत अभेद जिन खंडन करिया ॥

के लिए सांप्रदायिक आचार के अनुसार अजलि में पुष्प धारण करने में जितना प्रयत्न उन्ह करना पड़ता है, उतना सजीवनी बूटी समेत झोणाचल को उठाकर लाने में भी नहीं करना पड़ा था ।<sup>१</sup> माध्वमत में हनुमान के साथ भीम की भी बड़ी प्रतिष्ठा है । हो सकता है, चापुपुत्र होने से हनुमान के बन्धुत्व के कारण ही उन्हे यह गौरव प्राप्त हुआ हो । उत्तरादिमठ की शाखाओं में राम और हनुमान के साथ उनकी भी मूर्ति पूजी जाती है ।

मध्वाचार्य विरचित 'द्वादश स्तोत्र' में 'जानकीकान्त राघव' की वदना भावपूर्ण शैली में की गई है ।<sup>२</sup> माध्व-संप्रदाय में रामोपासना के ये बीज भागे चल कर रामभक्ति की स्वतंत्र परंपराओं की स्थापना में सहायक हुए । १८वीं शती के विख्यात रामभक्त निध्वाचार्य रामसखे इसी मत के अनुयायी थे । अयोध्या तथा मैहर (मध्य प्रदेश) में स्थापित गढ़ियों की परंपरा अब तक चली आती है । माध्वसंप्रदाय में रामभक्ति का प्रसार मात्र इसी शाखा द्वारा हुआ, जो उसके विशाल स्वरूप को देखने हुए नगण्य ही कहा जायगा । उसकी मुख्य धारा कृष्ण-भक्ति को लेकर चला, गौडीय वैष्णव संप्रदाय अथवा चैतन्यमत भारतीय धर्म-साधना में उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है ।

## रामायत संप्रदाय की स्थापना

रामानुजाचार्य की परंपरा के बारह्वे आचार्य हर्षानन्द स्वामी के समय तक श्रीसंप्रदाय के अन्तर्गत रामभक्ति का प्रचार दक्षिण भारत में होता रहा । उत्तरी भारत में रामगंगा के भगीरथ बने स्वामी राघवानन्द । ये स्वामी हर्षानन्द के शिष्य थे, जिनका आविर्भाव आचार्य रामानुज की परंपरा में बारह्वी पीढ़ी में हुआ था ।

१. रामार्चने यो गयत, प्रसून द्वाभ्यां कराम्यामभवत्प्रयत्न ।  
एकेन दोष्णा नयतो गिरीन्द्रं सजीवनाद्याश्रममस्थ माभूत् ॥
२. प्रपमो हनुमन्नाम द्वितीयो भीम एव च ।  
पूर्णप्रजस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधक ॥
३. 'राघव राघव राजसशत्रो माहतिवल्लभ जानकीकान्त'—द्वादशस्तोत्र (मध्वाचार्य), पृ० ६, ४
४. रामानुजाचार्य—गोविन्दाचार्य—भट्टार्क स्वामी—वेदान्ताचार्य—कलिजित-स्वामी—कृष्णाचार्य—सोकाचार्य—शैलेशस्वामी—चरवरमुनि—देवाचार्य—पुरुषोत्तमाचार्य—हर्षाचार्य—राघवानन्द । गलता गढ़ी (जयपुर) की आचार्य

नाभादास के अनुवर्ती राघवदास ने स्वरचित भक्तमाल में इस परंपरा के विशिष्ट आचार्यों का परिचय देते हुए लिखा है—

इय रामानुज के पाटि, पटेतर देवाचारिय ।  
देवाचारिय के दिप्यो, हस हरियानद आरिय ।  
हरियानद करि हेत, राघवानद निवाजे ।  
साके रामानद महत, महिपुर में बाजे ॥  
अब राघो रामानद के है, अनतानद भिष बडो ।

येकादस सिप ओर है, आदि पधित अनुक्रम पडो ॥<sup>१</sup>

स्वामी हर्षानंद रामोपासक थे । उन्हीं के आदेश से रामभक्ति का प्रचार करने के लिए राघवानंद ने आचार्यपीठ से विदा लेकर उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया था । वहाँ पहुँचकर इन्होंने अयोध्या, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए स्थिति का अध्ययन किया और रामोपासना के प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की । इसक पश्चात् दक्षिण को लौट गये । आचार्य पीठ में पहुँचने पर इन्हें गुरु के देहावसान का समाचार मिला । गद्दी पर गुरुमाई को बैठे देख उनसे बड़े प्रेम से मिले । यही इनकी माता भी रहती थी । उनका शरण-वदन किया । मंदिर में जब 'पगल' का समय आया तो वहाँ के कर्मचारियों ने इनका आसन पक्ति से अलग लगाया । जिसका कारण यह था कि राघवानन्द जी आचार-व्यवहार में वैष्णवमात्र में भेद नहीं रखने थे । उनका यह सिद्धान्त श्री वैष्णवों की उस गद्दी की सदाचार-परंपरा के विरुद्ध पड़ता था । गुरुभाइयों के इस व्यवहार से खिन्न हो वे काशी चले आये और फिर आजन्म यही रह कर रामभक्ति का प्रचार करते रहे । पञ्चगंगा घाट पर इनकी मूर्ती के अवशेष आज भी पाये जाते हैं । 'हरिभक्त रसामृत सिंधुवेला' नामक ग्रन्थ में अनंतस्वामी ने भी राघवानंद के दक्षिण से आकर उत्तर भारत में राममंत्र प्रचार करने की चर्चा की है । इनकी

परंपरा यही है । भक्तमाल में दी गई परंपरा से इसमें भिन्नता केवल ११वें आचार्य के नाम में पाई जाती है । भक्तमाल के अनुसार हर्षाचार्य देवाचार्य जी के शिष्य थे, किन्तु इससे वे पुरुषोत्तमाचार्य हैं शिष्य ठहरते हैं ।

१. राघवदासकृत भक्तमाल, पृ० ५१
२. गद्दी पं अवर गुरु भाई को बैठे विलोकि,  
करिकें प्रणाम मिले परस्पर घाइकें ।  
माता तहँ आई ताके पव सिर नाइ,  
पाई सुखद असीत सहस्रो आनंद अघाइकें ।  
मंदिर में तीरथ सँ पगति में आये जब,  
सदाचार रीति से बैठारे बिलगाइ के ।

‘सिद्धान्त पंचतन्मात्रा’? नामक रचना इधर खोज में मिली है। उससे ज्ञात होता है कि ये योगपरक-सगुण-रामभक्ति के प्रतिपादक थे। अतः इष्टदेव की पूजा में आरती, अर्घ्य, चरणामृत आदि बाह्य उपचारों की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी आंतरिक श्रद्धा को अधिक महत्त्व देते थे। प्रसिद्ध है कि काशी में इन्होंने शाकरमतानुयायी, प्रयागनिवासी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण रामदत्त अथवा रामभारती<sup>१</sup> को राममंत्र की दीक्षा दी। यही आगे चलकर रामानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

## स्वामी रामानंद

स्वामी रामानंद रामोपासना के इतिहास में एक युग-प्रवर्तक आचार्य हैं। उसे एक सगठित तथा स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप देना इन्हीं का काम था। इनके पूर्व श्रीसम्प्रदाय में श्रीराम की प्रतिष्ठा होते हुए भी प्रधानता लक्ष्मीनारायण को ही दी जाती थी। आरंभिक आचार्यों की दृष्टि में दोनों समान रूप से पूज्य थे, किन्तु सम्प्रदाय के प्रसार के साथ उसकी कुछ शाखाओं में भेदपूर्ण व्यवहार होने लगा था। इसके साथ ही वैष्णवाचार के निर्वाह की भी समस्या थी। श्रीसम्प्रदाय के भीतर रामभक्तों का वर्ग अपने सहधर्मों अन्य वैष्णवों की अपेक्षा आचार-व्यवहार में अधिक उदारता का समर्थक था। स्वामी राघवानन्द को इसी कारण आचार्य पीठ से बहिष्कृत होने का दंड मिला था। दोनों वर्गों में कटुता का एक और कारण उपस्थित हो गया था। वह था रामभक्तों की विचारधारा पर नाथ पन्थ का प्रभाव। राघवानन्द जी की ‘सिद्धान्त पंचतन्मात्रा’ में उसकी पूरी छाप दिखाई देती है। ‘सदाचार’-परायण तथा भक्तिप्रधान वैष्णवसम्प्रदाय से सामाजिक एवं व्यक्तिगत आचार को अपेक्षाकृत गौण स्थान देने वाली इस ज्ञानमार्गी शैव साधना का परंपरागत विरोध था। इस प्रकार के मौलिक मतभेदों के कारण अपनी मातृ-भूमि, द्रविड देश में विकास की सम्भावना न देखकर, रामोपासना, आचार्य पीठ से से विदा हो, राघवानन्द के साथ उत्तर भारत आई थी। रामानन्द के हाथों वह सर्वांग समृद्ध बनी।

देखि अभिमान उर योग बलआन कही,

करो शुद्ध वापी बल मधुर बनाइक ॥ २० प्र० ३०, पृ० ११.

१. वदे धीराधवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम्।

याम्यादुत्तरमागत्य राममंत्र प्रचारकम् ॥

योगप्रवाह, प्रथम सं० २००३, पृ० २२ (पाद टिप्पणी) में उद्धृत।

२. २० प्र० ३०, पृ० १२.

३. धीमद्रामानंद दिग्विजय, भूमिका, पृ० २३.



## सैद्धांतिक विशेषतायें

स्वामी रामानन्द ने श्रीसम्प्रदाय के निशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपत्तिसिद्धान्त का आधार लेकर रामायत सम्प्रदाय का मगठन किया। इसमें उन्होंने कुछ नये विचार रखे, जो पुराने मत के विरुद्ध पड़े हुए भी सामयिक परिस्थिति के अनुरूप तथा लोकोपयोगी थे। इसकी प्रेरणा उन्हें राघवानन्द जी ने मिली थी, इसमें सदेह नहीं। उन्होंने श्रीवैष्णवों के मारयणमंत्र के स्थान पर रामतारक अथवा पडशर राममंत्र को सांप्रदायिक दीक्षा का धीज मंत्र माना, बाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना में आन्तरिक भाव की शुद्धता पर और दिया, जानि-पाति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भाव मिटा कर वैष्णव मान में समता का समर्पण किया, नवधा से परा और प्रेमासक्ति को अत्यधिक बताया और सांप्रदायिक सिद्धान्तों के प्रचार में परंपरापोषित सस्मृत भाषा की अपेक्षा हिन्दी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी। एक आचार्य होने के नाते सांप्रदायिक विचारों के निरूपण में उन्होंने जहाँ एक ओर प्राचीन पद्धति का सत्कार कर 'वैष्णवमतान्त्रभास्कर' और 'रामार्चनपद्धति' की रचना सस्मृत में की, वहीं दूसरी ओर रामरक्षास्तोत्र, सिद्धान्त पटल, ज्ञान-लीला, ज्ञान-तिलक, और योगविनामणि आदि हिन्दी रचनाओं में तत्कालीन आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन आस्थाओं और विचारों को भी स्थान दिया। दीव तथा शाक्त पंथियों के प्रभाव से समाज में तन, मंत्र, कीलक-कवचादि तांत्रिक उपामना के अंगों के प्रति लोभा का आकर्षण देख उन्होंने रामोपासना में भी उसकी व्यवस्था की। रामरक्षा की रचना इसी उद्देश्य से हुई थी। इसी प्रकार नायपथी उपासकों के आदर्श पर सन्त जीवन के प्रत्येक कृत्य के लिए उन्होंने पृथक्-पृथक् मंत्रों की रचना कर सिद्धान्त पटल का निर्माण किया था। उनके ग्रन्थों की प्रामाणिकता में बहुतों को सदेह है। तो भी इतना तो निश्चित ही है कि रामानन्द ने जनवाणी का सत्कार करते हुए सस्मृत तथा हिन्दी (तत्कालीन लोकभाषा) दोनों भाषाओं में अपने विचारों का प्रकाशन किया था।

यह सब केवल इस उद्देश्य से किया गया कि रामोपासना युगधर्म के अनुकूल बने और पथों के दलदल में फँसी हुई जनता का उद्धार करके उन्हें उचित मार्ग प्रदर्शन कर सके।

## सांप्रदायिक संगठन

सांप्रदायिक सिद्धांतों के प्रवर्तन के पश्चात् उनके प्रचार की समस्या सामने आई। स्वामी रामानन्द ने इसे जितनी सफलता के साथ हल किया उससे उनकी

अदभुत संगठन शक्ति का परिचय मिलता है। इस्लामी शासन के आतंक से त्रस्त उत्तरी भारत के प्रमुख तीर्थों में, उन्होंने अपने केंद्र स्थापित किये। इस नवीन संप्रदाय के अनुयायी वैरागी कहलाये। ये तीर्थों में धम कर रामभक्ति का प्रचार करने लगे। इससे यवन शासकों की असहिष्णुता से प्रोत्साहित मुसलमानों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये जाने से तीर्थों की रक्षा हुई। इसके साथ ही वन-पूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को रामतारक मन की दीक्षा देकर पुनः हिन्दू बनाने का क्रम भी चलाया गया।<sup>1</sup>

भविष्यपुराण में अयोध्या में आये दिन घटने वाली इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है—

म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः ।

समोर्गिनश्च ते ज्ञेया अयोध्याया यभूविरे ॥

कठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता ।

माले त्रिपुड जिह्वा च श्वेतरक्त तदाभवत् ॥

भविष्य पुराण, ३/४/२१.

### भक्तिरव की व्यापकता

स्वामी रामानन्द के द्वारा की गई देश और धर्म के प्रति इन अमूल्य सेवाओं

१. 'रामानन्द की हिन्दी रचनायें' के विद्वान् संपादक डा० पीताम्बरवत्त बड़प्वाल का इस सम्बन्ध में कहना है "हिन्दू धर्म से बिछुड़े हुए पूर्वजों को स्वामी रामानन्द ने फिर से हिन्दूधर्म की गोद में स्थान दिया था। इसी प्रकार संप्रयोगियों को जिन्हें फंजाबाद के नवाब ने बल से मुसलमान बना लिया था, उन्होंने हिन्दू बनाया" (१० हि० १०, पृ० ३०)। यह विचारणीय है कि नवाब वंश के प्रथम सूबेदार सआदत खाँ मुहानवल मुल्क की अवधि में निपुक्ति १७३२ ई० में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने की थी और वह अयोध्या में किला मुबारक (वर्तमान लक्ष्मण किला) नामक स्थान पर रहता था। उसके उत्तराधिकारी दूसरे नवाब शासक, अब्दुल भंसूरअली खाँ सफवर जग (१७३६-१७५४ ई०) ने, फंजाबाद की नगर का रूप देकर, उसे अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार रामानन्द जी के समय (१४१० से १५१० ई० अथवा १३५६-१४६२ ई०) और फंजाबाद में नवाबी शासन की स्थापना काल में ३०० से अधिक वर्षों का अंतर पड़ जाता है। अतएव डा० बड़प्वाल का उक्त मत ग्राह्य नहीं है। हो सकता है अयोध्या में नवाबों ने उनका तात्पर्य वहाँ के मुसलमान सूबेदार से रहा हो।

ने सभी संप्रदायों के वैष्णवों के हृदय में उज्जा महत्त्व स्थापित कर दिया। भारत के सांप्रदायिक इतिहास में परस्पर विरोधी गिद्धांतों तथा साधना-पद्धतियों के अनुयायियों के बीच इनकी सौकरप्रियता उन्ने पूर्व किसी संप्रदाय-प्रवर्तक को प्राप्त न हो सकी थी। महासाष्ट के नायायियों ने जानदेव के विद्या विद्रुम पत्र के मुद्र में उन्ने पूजा, अनेक मतावलम्बियों ने ज्योतिर्मठ के श्रद्धाचारी व रूप में उन्ने अपनाया, बाबरीयों के सत्ता में आने संप्रदाय का प्रवर्तन मानकर उन्नी रचना की ओर कबीर के गुण तो वे थे ही, इसलिए कबीरपणियों में उनका आदर स्वाभाविक है। स्वामी रामानंद के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य, उन्नी उदार एवं सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयवादी विचारधारा में निहित है, जिगकी प्रेरणा से सभी जातियों और वर्गों के त्रिजामुखों को शरण में लेकर उन्नेने प्रकाशमय पथ पर अग्रसर किया था। हिन्दू-मुसलमान दोनों दीन के सत् उनने उपदेशों में वृत्तहृत्प हुप। उपासना की मगुण और निर्गुण दोनों पद्धतियों को उन्ने विकास की प्रेरणा मिली। उन्ने बारह प्रधान सिध्यों में इन दोनों प्रणालियों के प्रचारक गतों में प्रमुख थे—अनन्तानंद और कबीर। इनमें प्रथम से सगुण और द्वितीय से निर्गुण धारा का प्रसार हुआ। भारतीय सन्तुति की रक्षा और विकास में उक्त दोनों संप्रदायों का कितना योग है, यह किसी ने दिग्ग नही है। अत यदि उनने जन्मदाता की तुलना 'नाभादास' ने सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधि 'राम' से कर दी हो तो अपुक्ति नहीं बही जा सकती।

## रामभक्ति का प्रसार और रसिक साधना का सूत्रपात

हमी रामानंदीय वैष्णवपरंपरा में तुलसी का आविर्भाव हुआ। वे अनन्तानन्द जी के प्रशिष्य और मरहरिदास अथवा मरहर्यानन्द के शिष्य थे। यदि रामावत संप्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय स्वामी रामानंद को ॥ तो जन-जन तक उनका संदेश पहुँचा कर लोकमानस में 'रामभक्ति' की प्रतिष्ठा और 'रामचरित' के प्रति श्रद्धा का भाव जागरित करना तुलसी का ही काम था। उनके 'मानस' से जो रसलहरी उठी उससे शताब्दियों के राजनीतिक उत्पीडन, सामाजिक अनाचार और आर्थिक अव्यवस्था से सतप्त राष्ट्रहृदय तृप्त हो गया।

गोस्वामी जी ने रामचरित के जिस स्वरूप की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों

१. बहुत काल यमु धारिके प्रणत जनन को पार दियो।

श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥

भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० २२८.

में की, वह ऐश्वर्य प्रधान है। उनके राम लोकमर्यादा के रक्षक, लोकविरोधी तत्त्वों के उन्मूलक और लोकधर्म के संस्थापक हैं। किन्तु तुलसी की समकालीन रामकाव्य-धारा में रामोपासना के एक दूसरे पक्ष के अस्तित्व के भी चिह्न मिलते हैं, जिसका दर्शन स्वयं तुलसी की कृतियों में भी यत्र-तत्र हो जाता है—वह है रामायण सम्प्रदाय में माधुर्यभक्ति का उत्कर्ष। रामोपासना की इस पद्धति का प्रचार भक्तों के एक सम्प्रदाय विशेष तक सीमित था। सिद्धान्तों की गोपनीयता के कारण उसका उपदेश केवल अंतरंग और दीक्षित साधकों को ही दिया जाता था। अतएव उसका सारा साहित्य आचार्यपीठों के बस्तों में बँधा, अप्रकाशित और अविवेचित ही पड़ा रहा। उधर तुलसीसाहित्य के प्रचार में रामचरित के ऐश्वर्य प्रधान अथवा शुद्धजी के शब्दों में 'शील, शक्ति, सौन्दर्य समन्वित रूप की प्रतिष्ठा लोकव्यापक हो गई। उसके आधार पर जनसाधारण क्या, साहित्य की गति-विधि से परिचित विद्वानों तक की यह धारणा बन गयी कि रामकाव्य का पर-परागत स्रोत एकमात्र मर्यादाबद्ध अथवा ऐश्वर्यवरक भक्ति को ही लेकर चला है। माधुर्यविषयक जो रचनाएँ उसमें यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं वे अत्यन्त अर्वाचीन, अश्लील और अमर्यादित हैं।

परन्तु अनुसंधान, स्थिति का एक दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। इधर इस माधुर्यधारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उससे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती रामोपासना इसी से जोत-प्रोत थी। वास्तव में इस पद्धति के साधक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि तुलसी अपने समकालीन भक्ति क्षेत्र में प्रसूत शृंगारी रामभक्ति के एक अपवाद से प्रतीत होते हैं। यह दूसरी बात है कि इस सम्प्रदाय में इतनी प्रखर प्रतिभा का कोई कवि अवतरित नहीं हुआ, जो मूर और मीरा की तरह जनसामान्य को भी इस दिव्यरस का आस्वादन करा सकता।

'युगल सरकार श्री सीताराम' की मधुर लीलाओं के ध्याता और गायक, ये सत् 'रसिक' अथवा 'भाविक' नाम से जाने आते हैं। इस वर्ग के भक्तों की अपनी एक अलग साधना-पद्धति है और पृथक् भक्तमाल भी। परिमाण की दृष्टि से संपूर्ण

१. वपति मधुर छवि छाके सख्य भाव बाँके,  
श्रीमन्नुत्पराधव की कला भरे गात हैं।  
भाविक समा में गुण आगर रसिक प्रेम,  
सागर समान प्रेम सागर लखात हैं।

रामभक्तिगाहित्य का दो-तिहाई से अधिक भाग रसिक भक्तों द्वारा ही विरचित मिलता है और प्राचीनता के विचार से, साम्प्रदायिक विस्वागो के अनुसार, यह कम से कम उतनी ही पुरानी है, जितनी तुलसी की ऐश्वर्यप्रधान भक्तिपद्धति । इसके विकासगूत्रों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कामविशेष में किन्हीं कारणों ने इसका प्रवाह दीग अने ही पड़ गया हो, किन्तु छोन कभी मूछता नहीं दिमाई दिया ।

रामोपासना की ये दोनों धाराएँ आज भी समाना-तर बढ़ रही हैं । इनकी गहिरा भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापित है । रामभक्ति के माध्यम में इनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी का अहिन्दीभाषी प्रदेशों में प्रचार ठो होजा ही है, प्रका-रान्तर से भावार्मक एवता की स्थापना का भी पथ प्रशस्त हो रहा है । इस दृष्टि से रामभक्ति का आध्यात्मिक महत्त्व के साथ परम्परागत सांस्कृतिक मूर्ध्यों की रक्षा में भी विशिष्ट अवदान है ।

---

## नाथयोग और रामभक्तिधारा

महायोगी गोरखनाथ भारतीय अध्यात्मसाधना के ज्योतिर्स्तम्भ थे। उनकी आचार एवं विचार परंपरा से सारा मध्यकालीन साहित्य ओतप्रोत है। क्या निर्गुण और क्या सगुण दोनों भक्तिधाराएँ उनकी योग-साधना से प्रभावित हुईं और विषय तथा शैली दोनों क्षेत्रों में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर समृद्ध हुईं। कबीर और जायसी ने नाथसाहित्य एवं नाथपंथी साधकों से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी, यह उनके दार्शनिक विचारों एवं साधनाप्रणाली से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु सगुण भक्ति साहित्य में यह प्रभाव प्रतिक्रिया के माध्यम से परोक्षरूपेण अभिव्यक्त हुआ। भ्रमरगीत की रचना करते समय भूरदास के मानसनेत्रों के समक्ष अवश्य ही नाथपंथी योग-साधक रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास को तो नाथयोग का बढता हुआ प्रभाव देखकर लोकमानस से भक्तिभावना के सर्वथा छुत हो जाने की आशंका हा खली थी। यह उनके निम्नांकित उद्गार से प्रकट होता है—

गोरख जगामो जोग भगति भगामो सोग,  
निगम नियोग सो सो केलि ही छरो सो है ॥

किन्तु इससे यह भ्रम न होना चाहिए कि रामभक्तिधारा का योगप्रक्रिया से कोई प्रवृत्त विरोध था। वैष्णवधर्म के प्रधान उपजीव्य ग्रंथ भागवत में योग की शारीरिक क्रियाओं को वैधी भक्ति में और मानसिक प्रक्रियाओं को ध्यान में पर्यवसित करके भक्तिसाधना में योगपद्धति की महत्ता स्वीकृत की गई थी। नवधा के पदचान् दशधा अथवा प्रेमाभक्ति की साधना आराध्य की रसमयी लीलाओं के ध्यान द्वारा ही होती थी। ऐसी स्थिति में नाथयोग का प्रकट रूप में विरोध करते हुए भी परोक्ष रूप में उसके सिद्धांतों का अनुसरण करने से वैष्णव भक्त, चाहे वे रामभक्त हों या कृष्णभक्त, अपने को रोक नहीं सके। इस नये मंदिर में योग उपामक-उपास्य ने सन्न्यस्थापना का सर्वोत्कृष्ट माधन बन गया।

रामभक्तिसाधना में योगधारा का अजस्र प्रवाह स्वामी राघवानन्द के समय से मिलता है। उनके शिष्य रामानन्द तथा शिष्य स्वामी अनन्तानन्द से इस भावना के प्रसार में विशेष बल मिला। किन्तु वह पराकाष्ठा को पहुँची श्री कृष्णदास पयहारी की अलौकिक सिद्धियों के प्रकाश से। पयहारीजी की 'राजयोग'

नामक एकमात्र रचना प्राप्य है। इनकी मुख्य भाषना-भूमि गलता और पुष्कर थी। नाभादास वृत्त भक्तमाल प्रियादास वृत्त उसकी टीका और रसिक-प्रकाश भक्तमाल में इनकी सिद्धियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के शासनकाल में तारानाथ योगी को पराजित करके जयपुर दरबार में राजगुरु का पद प्राप्त किया था।

महायोग के चार सोपानो—मन्त्र-योग, हठयोग, लययोग और राजयोग में अन्तिम होने से राजयोग योगसाधना की परमोत्कृष्टावस्था है। राजयोग का साधक कुडलिनी शक्ति के जागरण द्वारा पदचक्रभेदन कर अनाहतनाद का रसास्वादन करता हुआ ब्रह्मजीव की एकता का रहस्यज्ञान प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। पयहारी जी ने मुक्ति के लोकप्रचलित चार भेदों सालोक्य, सांभीष्य, सारूप्य और सायुज्य से परे पाँचवीं मुक्ति 'ध्यानलीन दशा' की कल्पना की है और इस पद्य के साधक की उसमें स्थिति बताई है। कबीर, दादू आदि निर्गुण भक्तों की भाँति उन्होंने भी 'अनहदनाद' को 'रामनाम' की अलख ध्वनि का पर्याय माना है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ निर्गुणमार्गी भक्त नायपथियों के आदर्श पर मात्र ज्योति का दर्शन करता है वहाँ पयहारी जी उसके अतर्गत अपने आराध्यगुण 'सीनाराम' का भी दर्शन करते हैं—

आगे सुपताका उडत देखि । तहँ सेत छत्र छाया सुपेलि ।  
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि । चहँ दिसि प्रकास नहि बरन घूमि ।  
को बरनि सकत प्रभु को सरूप । रवि कोटि चद छवि ते अनूप ॥  
नभ नील मेघ इति रमाम गात । लखि पीत वसन बिद्युत लजात ।  
इमि बसत राम निज महित धाम । सब सत कहत जेहि परमधाम ॥  
पयहारी जी का अनुभव था कि इस रिचति को प्राप्त करने से सारे भवबधन छूट जाते हैं। यही योग की परम उपलब्धि है—

तहँ गए मिटत है जन्म मरण । तेहि हेत जोग जेहि रामशरण ॥<sup>१</sup>  
'राजयोग' में अपने शिष्य अग्रदास का ये इस योगसाधना का उपदेश देते हुए लिखते हैं—

प्राणहि अपान दृढ गाथि डोरि । कुडलिनि आव सम मुक्ति जोरि ।  
तन चलत पवन जहँ बहारध । तहँ छोडि जाहि सब त्रिगुण बध ॥  
उनटे मु इसा-पियला नारि । गुपुमना सुद लीजे बिचारि ।  
पहुँचे सो जवे अनहद गेह । राखे सुणक हरि सो सनेह ॥<sup>२</sup>

आठ पहर चौसठि घरो । ररकार घहराय ।

सकल मोह दावा मिटे तब नाना ठहराय ॥<sup>१</sup>

यह सर्वविदित है कि गोरखनाथ जी अवतारवाद के विरोधी थे, अतः दश-रथ-पुत्र राम के प्रति उनकी अनास्था स्वाभाविक थी—

दस औतार औतिरीया तिरिया, वै पणि राम न होई

कमाई अपनी उनहूँ पाई करता औरे कोई ॥<sup>२</sup>

किन्तु परम्परा से ब्रह्मम्प में सूर्यवंशी महाराज रामचन्द्र की जो प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी, उसकी मूक स्वीकृति 'गोरखबानी' के निम्नांकित छंद में मिलती है । इतना ही नहीं पयहारी जी ने रामभक्ति की प्राप्ति के लिए योग-साधना की जिस प्रक्रिया की व्याख्या 'राजयोग' की उपर्युक्त पक्तियों में की है, वह अविकल रूप से नाथयोग में मिल जाती है—

मन रे राजा राम होइले नृदद ॥

मूले कमलै राजि ले रविधद ॥

अनहद भीरो भवै तृवेणी के घाट ।

पीयलै महारस फाटिलै कपाट ॥

चदा करिले पूटा मूरज करिले पाट ।

नित उठि घोषी घोवै, तृवेणी के घाट ॥

भरिलै नाडी पोडी, पूरिले बक नालि ।

बदत गोरपनाथ अवधू, इम उत्तरिवौ पार ॥

पयहारी जी के शिष्यों ने रामभक्ति शाखा में इस योगमूलक सगुण-निर्गुण मिश्रित साधना का प्रचार किया । उनके पदट शिष्य कीलहदास इसके मुख्य स्तम्भ माने जाते हैं ।<sup>३</sup> प्रसिद्ध है कि इनकी ध्यान-समाधि इतनी उच्चकोटि की होती थी

१. राजयोग : छं० २६. २. गोरखबानी : पृ ५४ ३. यही, पृ० ५५.

४. गागेय मृत्यु गंग्यो नहीं त्यों कीलह करन नहि काल बस ॥

रामधरण चितवनि रहति निशिदिन लौ लागी ।

सर्वभूत सिर नमित धूर भजनानन्द भागी ॥

साख्ययोग मत सुबुद्ध कियो अनुभव हस्तामल ।

ब्रह्मरध करि गोन भए हरितन करनी बल ॥

सुमेरवेव सुत जग विदित, भू विस्तार्यो विमल जस ।

गागेय मृत्यु गंग्यो नहीं, त्यों कीलह करन नहि काल बस ॥

भक्तमाल (रूपकला) पृ० ३१५.



कि इस स्थिति में ये सर्वथा बाह्यमान शून्य हो जाते थे। इनकी परम्परा के अवधूतवेप धारण करने वाले लाखों विचरणशील एवं स्थानधारी रामभक्त महात्मा आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशों में पाये जाते हैं। नाथपंथी अवधूतों में इनका पार्यव्य केवल तिलक की भिन्नता में जाना जाता है। इस परम्परा में सम्बद्ध अवधूतसत मूँज की करघनी, अघारी, विशाल जटाएँ, वस्त्र के नाम मात्र केले के सूखे पत्ते, टाट अथवा छ अगुल चौड़े कपड़े की लंगोटी धारण करते हैं। रामोपासना की यह योगाश्रयी शाखा गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी लोकसंग्रही पद्धति से सर्वथा भिन्न ऐकांतिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिसमें हठयोग द्वारा शरीर और प्राण को ब्रह्म में करने के अनन्तर ब्रह्मजीव की एकात्म्यता का सम्पादन होता है। यही इनकी निर्विकल्प समाधि है। इस शाखा के साहित्य में शोरखपथ और नाथयोग के सिद्धान्तों की न तो कहीं निन्दा मिलती है और न उन्हें रामभक्ति के विकास में बाधक ही माना गया है। रामभक्ति-धारा के प्रसार में इसका विशेष योगदान रहा है। इसने विशाल साहित्य के अन्वेषण-गरीक्षण से निश्चय ही मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य के अनुशीलन में एक नई दिशा मिलेगी।

## श्री कृष्णदास पयहारी की योगमूला भक्ति

श्री कृष्णदास पयहारी स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य और अनन्तानन्द के शिष्य थे । रामानदीय संप्रदाय का वर्तमान व्यापक रूप बहुत अंश में इन्हीं की देन है ।<sup>१</sup> वास्तव में संप्रदाय प्रवर्तक के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये जिन धार्मिक गुणों की अपेक्षा की थी, कृष्णदास के प्रभावशाली व्यक्तित्व में वे पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे । उनके प्रशिष्य नाभादास के निम्नांकित शब्द इसके साक्षी हैं ।<sup>२</sup>

जाके सिर कर धर्यो तासु कर तर नहिं अड्डयो ।  
अप्यों पद निर्बान सोक निर्भय कर छड्डयो ॥  
तेज पुज बस भजन महामुनि ऊरधरेता ।  
सेवत चरन सरोज राव-नाना भुवि जेता ॥  
दाहिमा वस दिनकर उदय, सत कमल हिय सुख दयो ।  
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन्न परिहरि पय पान कियो ॥

ये राजस्थान के निवासी दाधीच्य ब्राह्मण थे । इनका मुखप्रदत्त नाम कृष्ण-दास था । दीक्षा के अनन्तर योगसाधना में प्रवृत्त होने पर इन्होंने अन्न त्याग कर केवल दुग्धपान का व्रत ले लिया था इसलिये तत्कालीन सतसमाज में 'पयहारी' नाम से प्रसिद्ध थे ।<sup>३</sup> इनकी मुख्य साधनाभूमि गलता थी ।<sup>४</sup> भक्तमाल में इनकी सिद्धियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक बार इन्होंने अतिथि रूप में आए हुए सिंह की अन्त्यर्धना अपना मांस अर्पित करके की थी और इस प्रकार कलियुग में परोपकारी महर्षि इषीचि के आदर्श की स्थापना की थी । प्रियादास

१. रामभक्तों के ३७ द्वारों में से २० द्वारे श्री कृष्णदास पयहारी की ही परम्परा के हैं । इनकी शताधिक शाखा-प्रशाखाएँ देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं ।
२. श्री भक्तमाल (भक्ति रसायनी व्याख्या-चुम्बावन)—पृ० २६५ ।
३. जयपुर नगर के पूर्वी भाग में सूरजपोल से गलता को मार्ग जाता है । यह स्थान वहाँ से थोड़ी दूरी पर पहाड़ी में स्थित है । पयहारी जी की गद्दी और धूनी का वर्णन करने प्रति वर्ष हजारों यात्री यहाँ आते हैं । इस आचार्य पीठ की परंपरा अब तक असुण्ण रूप से चल रही है ।
४. गलते गलित अमित गुण, सदाचार सुठि नोति ।  
इषीच पाछे बूजो करो, कृष्णदास कलि जोति ॥

ने अपनी टीका में पयहारी जी की सिद्धाई के दो और उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—  
 एक है कुन्हु (पजार) के राजपुत्र की प्राण रक्षा कर उसे अपना रूपाभात्र बनाना  
 और दूसरा है एक स्त्री के गर्भस्थ बालक के विषय में सत्य भविष्यवाणी करना  
 कि वह महान् सत्त होगा ।

‘रसिक प्रकाश भक्तमाल’ में रचयिता जीवाराम ‘युगलप्रिया न गमता के  
 अनिरुक्ति पयहारी जी की एक दूसरी तपोभूमि पुष्कर का भी उल्लेख किया है  
 और उन्हें माधुर्यभाव का रामोत्तमक कहा है ।’ उस प्रय के टीकाकार वामुदेव-  
 दास से इनकी साधना के विषय में कुछ अधिक विवरण दिये हैं । उनके अनुसार  
 अनन्तानन्द ने मन्त्रदीप्ता सनर पयहारी जी सीययात्रा को खींचे गए । लौटने पर  
 उन्हें गुरु के देहावसान का समाचार मिला । गुरुघाट में ही ठहर कर उन्होंने  
 एक विशाल भडारा किया । इसक पश्चात् वे पुष्कर चले गए और वहाँ १४ वर्ष  
 तक घोर तपस्या की । इस अनुष्ठान में छ वर्ष व भीतर ही उन्हें आराध्य  
 युगल श्री सीताराम ने साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया । इस प्रकार पुष्कर  
 में योग सिद्धि प्राप्त करके वे गलता लौट आये और वहाँ की रम्य प्राकृतिक शोभा  
 ने आकृष्ट होकर कुछ दिन ठहर गए । इस बीच आमेर नरेश पृथ्वीराज  
 (सिंहासनारोहणकाल फाल्गुन वृष ५ म० १५५६) का दीवान विद्याधर उनके

कृष्णदास कलि जीति न्योति माहर पल बीषी ।  
 अतिथि धर्म प्रतिपालि प्रगट जस जग में सीषी ॥  
 उदासीनता (की) अवधि, बनक कामिनी नहि रातो ।  
 रामचरण मकरद रहत निसिखिन भक्षमातो ॥

श्री भक्तमाल (धुन्दावन), पृ०, ६१४.

५. कृपा अनन्तानन्द रसिक पुरन पयहारी ।  
 कृष्णदास रसरोति उपासक सियव्रतधारी ॥  
 पुष्कर छाया भजनभूमि प्रगटी सिय ध्यारी ।  
 पूर्व सूचिका धरी कया प्रिय लेहु सुधारी ॥  
 जिमि उत्तक अह काग रति, नित्य रास रस रूप गति ।  
 आचारज शृङ्गार पय, शिष्य अग्र से विमल मति ॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३

- ६ तारक जुगल मन्त्रराज अप ठान्यो कृत द्वादश जुगल वर्ष हर्ष उर छाये की ॥  
 छठए बरस दिव्य दपति दरस पाय उठि हरपाय दडवत बीनी भाय की ॥

२० प्र० भ०, पृ० १३.

दर्शनार्थ आया । वह इनसे बहुत प्रभावित हुआ । उसने लौटकर महाराज को एक तपोनिष्ठ महात्मा के आने का समाचार सुनाया ।

उन दिनों आमेर के राजगुरु नाथपयी योगी तारानाथ थे । उन्हें भी अपने अनुयायियों से यह सूचना मिली । वे तत्काल ही कुछ योगियों को साथ लेकर पयहारी जी के पास गये और उनसे गलता छोड़कर अन्यत्र चले जाने का अनुरोध किया । कृष्णदास जी ने केवल एक रात ठहरने की अनुमति चाही, किन्तु वे न माने । शारीरिक बल प्रयोग करके इन्हें हटाने की इच्छा रखते हुए भी वे साहस न कर सके । अतः अपनी परम्परानुसार यत्र-मत्र तथा वृत्त्या द्वारा इन्हें विचलित करने का प्रयत्न किया । इन पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ । उलटे विरोधी ही उसके शिकार बने । योगियों ने क्रुद्ध होकर, जिस स्थान पर पयहारी जी बैठे थे, उसके ऊपर की एक चट्टान लुढ़का दी जिससे इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय । किन्तु कृष्णदास जी अपने अद्भुत योगबल से उभे बीच में ही रोक दिया । अन्त में योगी तारानाथ सिंह बनकर गरजता हुआ सामने आया । पयहारी जी ने कमण्डल का जल अभिमंत्रित करके उसके ऊपर फेंका जिससे वह गदहा हो गया । इतना ही नहीं इनकी अलौकिक सिद्धि के प्रताप से सभी स्थानीय योगियों की कर्ण मुद्राएँ निकल कर उनके सामने एकत्र हो गईं । प्रातःकाल जब आमेर नरेश गुरु का दर्शन करने गए तो उन्हें मुद्राहीन देखकर बड़े आश्चर्य में पड़ गए । कारण पूछने पर गुरु शी लज्जावश क्रुद्ध न बोले परन्तु दीवान ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया । महाराज पृथ्वीराज ने पयहारी जी की सेवा में गुरु सहित उपस्थित होकर क्षमा याचना की । अन्य योगी भी आकर उनके चरणों पर पड़े । पयहारी जी ने उन्हें क्षमा कर दिया । गदहा बने हुए नाथपयियों को अपना पूर्वरूप मिल गया । कर्ण मुद्राएँ भी सबको पूर्ववत् प्राप्त हो गईं । पयहारी जी ने उनसे गलता छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर अड्डा बनाने को कहा साथ ही उन्हें दंड के रूप में नित्य पाँच बोस लकड़ी धूनी के लिये पहुँचाने का आदेश दिया । कहा जाता है कि इसके पश्चात् योगियों की इष्टदेवी भी आई और कृष्णदास जी की शिष्या हो गईं । पृथ्वीराज ने तारानाथ से नाता तोड़कर पयहारी जी का शिष्यत्व ग्रहण किया ।

- १ राज गुरु सेवरा ने सुनि एक सिद्ध आये देखि धर्याए तेज कह्यो कहा कीजिए ॥  
मिलि बस पाँच गए कह्यो ह्याते उठि जावो जायँगे अवश्य आजु रँनर है बीजिए ॥  
जंत्र मंत्र भूठि काल कृत्या लें चलाई सब उलटि पठाई निज कियो फल लीजिए ॥  
तब लिसियाय सिला ऊपर गिराई स्वामी अधर झुलाई कह्यो इन्हें न पतीजिए ॥  
रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३.

उन्हे पञ्चदश राममंत्र की दीक्षा के साथ ही साधु सेवा और शकीर्तन में कास-  
यापन करते हुए नित्य रामनाम जप का उपदेश हुआ।<sup>१</sup> इसी समय से गलता  
पयहारी जी का प्रधान पीठ बन गया। यहीं पर कुछ दिनों बाद उन्हींने दो  
शरणागत बालकों—कील्हदास और अग्रदास को पञ्चसंस्कार युक्त करके साधना  
में प्रविष्ट किया। एक सम्मो आयु भोगने के पश्चात् गद्दी का दायित्व बड़े शिष्य  
कील्हदास को सौंप कर श्री कृष्णदास जी ने अपनी ऐहिक सीला सवरण की।

कील्हदास ने गुरु द्वारा उपदिष्ट साधनापद्धति का सम्यक् प्रचार एवं संव-  
र्द्धन किया। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि सत्वालीन देशाधिपति ने मधुरा प्रवास  
के समय इनकी योगसिद्धि के परीक्षार्थ सिर पर सोहे की कील ठुकरा दी थी

१. सुनी पृथ्वीराज कुरा बंस में विदित जन्म,  
पाय सीतानाथ भजो क्यों न मन सापकं ।  
स्वामी हन संसृति भुसाने नहि जानै कसो,  
वैष्णव धरम प्रभु कहौ समुसाय कै ॥  
सुनिकं प्रवृत्ति को निवृत्ति को स्वद्वय कह्यो,  
नाम को महत्त्व सुनि दियो शोष नाप कै ।  
द्वादश तिलक माला छाप नाम मंत्र ध्यान,  
पायो सुख छायो भयो अभय बजायकै ॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १४

नाभादास ने आमेर नरेश पृथ्वीसिंह की गणना तत्त्वदर्शी रामभक्तों में की  
है। पयहारी जी ने प्रसाद से प्राप्त इनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन  
करते हुए वे लिखते हैं—

- (श्री) कृष्णदास उपदेश परम तत्त्व परचौ पायो ।  
निरगुन सगुन निरुपि तिमिर अज्ञान नसायो ॥  
काछ बाच निकलक मनौ गम्येय युधिष्ठिर ।  
हरि पूजा प्रह्लाद धर्मध्वजधारी जग पर ॥  
पृथ्वीराज परचौ प्रगट, तन संख चक्र मंडित कियो ।  
आमेर अछूत कूरम कौ, द्वारिका नाथ वरदान दियो ॥

श्री भक्तमाल (बुन्दावन), पृ० ६१६

- २ कील कील सिरबई नृपति तबहूँ नहि जागे ।  
प्रबल समाधी रसिक रामसिंह छवि अनुरागे ॥

२० प्र० भ०, पृ० १४

किन्तु उस स्थिति में भी ये समाधिस्थ रहे। ये सांख्ययोग के पारंगत विद्वान् थे। इनके शिष्य द्वारकादास भी अष्टांगयोग के निष्णात साधक थे। उन्होंने अपना प्राण ब्रह्मरध से त्याग किया था। इसी प्रकार कील्हदास के छोटे गुरुभाई अग्रदास और उनके लोकविश्रुत शिष्य नामादास के विषय में भी अनेक चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य में मिलता है।<sup>१</sup>

पयहारी जी के देहावसान के अनन्तर भी उनका अद्भुत प्रताप भक्ति क्षेत्र को आच्छादित किए रहा और रामानंदीय सम्प्रदाय के उपासक उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे। देवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के प्रसिद्ध महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पयहारी के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्हें सर्वप्रथम रामभक्ति का प्रसाद गजरूप में समागत श्रीकृष्णदास पयहारी द्वारा ही मिला था।<sup>२</sup> इस घटना के बाद भी उन्हें समय-समय पर पयहारी जी के स्वप्न में दर्शन देने रहने की कथायें साम्प्रदायिक साहित्य में मिलती हैं।<sup>३</sup>

एक सनै सहज सुभाय मधुपुरी आए, यमुना सुभीर न्हाइ बँडे शुचि तीर मे ॥  
श्यामल स्वरूप रघुनन्दन को हिए आयो, अबल समाधि लागी सतन की भीर मे ॥  
देश दुनोपति पावसाह सुनि कौतुक उयो, पेयन को आयो नहि जानै पर पीर में ॥  
कील शिर बई कछु बेदना न भई रहो, अबल समाधि जँसी लागी रघुवीर मे ॥  
२० प्र० भ०, पृ० १५

१ देखिये श्रीभक्तमाल (बृ'दावत पृ० २७५-२७६ तथा

'भक्ति सुधा विन्दु स्वाद तिलक' (रूपकला) पृ० ४४-४०

२ जयपुर राज्य राज रजधानी। तहाँ अवतरे मुनि विग्यानी ॥  
कृष्णदास पावन शतधारी। रहे कहावत श्री पयहारी ॥  
यहुत काल तप कीन्ह कठोरा। नित्य विवस रघुवंश मिहोरा ॥  
दियस एक बन फिरत अकेला। धार्यो भेष महा गज मेला ॥  
तेहि छन अधकार भइ भारी। दियराया महिमा पयहारी ॥  
बेगवत होइ बला चिधारी। जहँ बँडा बालक ब्रह्मचारी ॥  
लोन्ह चढ़ाइ कान्ह पर तिनहीं। अति स्यामल गज भय नहि जिनहीं ॥  
बोला ई कृतार्थ तेहि कीन्हा। सादर पोहारी पब बोन्हा ॥

दासा-तं पयहारिण परगुरु' रामस्वरूप मुनि।

गायत्री जय निर्मल गुस्वर श्री कृष्णदासाभिर्भः ॥

धृत्वाहस्तिषुः सुवशिषपरैः पयहारिभिः स्थापितम्।

बँकौली नगरात्सुदूर विजने सान्ने सुरम्ये वटे ॥

३ हरिपूजन में कृष्णदास मुनि आइ मिले हर्षाई,

लक्ष्मीनारायण चेत करो यह मुक्ति की राह बताई।

अवध प्रसाद होईहैं तब गुद ऐसो गिरा मुनाई ॥

पयहारी जी और उनके शिष्य-प्रशिष्यों के सम्बन्ध में प्रचलित इन कथाओं से उनकी योग साधना में असाधारण आस्था एवं गति का पता चलता है। रामोपासना के अतर्गत यह योगप्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। आगे चलकर उसने एक पृथक् साधनाप्रणाली का रूप धारण कर लिया और तपसी शाखा के नाम से अभिहित की जाने लगी। इसके प्रवर्तक थे पयहारी श्री वृष्णदास और साम्प्रदायिक सगठन कर्त्ता थे उनके उत्तराधिकारी गलता गढ़ी के द्वितीय आचार्य कीलहदास। इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि स्वामी रामानन्द के नाम से प्रसिद्ध रामरक्षा, ग्यानलीला, ग्यानतिलक, योगचित्तमणि आदि रचनाएँ भी योगपरक ही हैं किन्तु उनमें राजयोग की अपेक्षा हठयोग और सगुण की अपेक्षा निर्गुण साधना को प्रधानता दी गई है, उनके आराध्य जानियों के ही श्रेय हैं अपनी परामर्शिता सीता सहित परम धाम में नित्य लीलारत, ध्यानमग्न भक्तों को लोकोत्तर आनन्द का रसास्वादन कराने वाले अवतारी राम नहीं। इसलिए स्वामी रामानन्द की प्राप्त रचनाओं से रामोपासना की इस शाखा विशेष का प्रवृत्त सैद्धांतिक सम्बन्ध स्थापित होता नहीं दिखाई देता। बहुत संभव है उनकी कुछ हिंदी रचनाएँ साकेत बिहारी राम विषयक भी रही हों, जो क्रूर काम के प्रवाह के साथ अनन्त में विलीन हो गयी हों।

यह आज भी रामभक्तिकेन्द्र की एक शक्ति साधनाधारा है। प्रयाग, हरिद्वार, नासिक आदि तीर्थों में कुम्भ के अवसर पर कोपीन, मूँज की करघनी और विभूतिधारी रामोपासक नागाओं के जो अखाड़े बड़ी सज्जधज के साथ एकत्र होते हैं वे प्रायः इसी शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। इनको अनेक और अखाड़ों में संगठित करने का श्रेय महात्मा बालानन्द को है जिनकी गढ़ी जयपुर में अब तक स्थापित है।<sup>१</sup> शैव नागाओं से इनकी विभिन्नता इस बात में रहती है कि इनकी साधना भावयोग प्रधान होती है जब कि शैवों को हठयोग प्रधान। अब तक इस शाखा के उपजीव्य ग्रंथों में श्री वृष्णदास पयहारी तथा कीलहदास की कोई रचना प्रकाश में नहीं आई है।

प्राचीन हस्तलेखों की खोज करते हुए मुझे कुछ दिनों पूर्व पयहारी जी का 'राज-योग' नामक ग्रंथ प्राप्त हुआ था। यह एक छोटी सी रचना है जिसमें कुल २८ पद हैं—२७ श्लोक और एक दोहा। निम्नांकित शक्ति से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ अग्रदास की शिक्षा के लिए लिखा गया था—<sup>२</sup>

१. रामभक्ति में रक्तिक संप्रदाय, पृ० ३८८.

२. राजयोग, पृ० ६.

तब उहाँ अग्र । देखर मुघीर ।

जनु भर्यो उदधि अति अगम नीर ॥

इसके प्रतिलिपिकार, कीलहदास की परम्परा में आविर्भूत, महात्मा कामद-  
राम के कोई अज्ञातनामा शिष्य हैं । ग्रंथात् में दी गई पुष्पिका में अपना परिचय  
देते हुए वे लिखते हैं—

“॥इति श्री स्वामी पयोहारि कृष्णदास कृत राजयोगम् । श्री राम ॥”

“कृष्णदास कुल कील मत, साख्य ध्यान सिय राम ।

श्री गुरु कामद राम निधि, राम बीज रट नाम ॥”

इस छोटे से ग्रंथ में अभिव्यक्त विचारों से पयहारी जी की परंपराप्रसिद्ध योग-  
साधना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । वे नायपधियों की हठयोगी पद्धति के  
प्रतिकूल पातञ्जलि की अष्टांगयोगप्रणाली के प्रचारक थे । ‘राजयोग में’ उनका  
सात्पर्य इसी साधना पद्धति से है जिसका तत्त्ववाद शेषर साख्य है । नामादाम  
ने कीलहदाम के प्रसंग में इसका उल्लेख किया है—<sup>१</sup>

रामचरण जितबनि रहत निसिदिन ली लागी,

सर्वभूत शिर नमित सूर भजनानंद भागी ॥

साख्य योग मत सुदृढ किण अनुभव हस्तामल ।

प्रह्वारध करि गौन भये हरितन करनी बल ॥

कीलहदास की कोई कृति उपलब्ध न होने ॥ हमें इस सम्बन्ध में उनके अनु-  
यायियों और नामादास द्वारा प्रस्तुत तथ्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है । किन्तु  
पयहारी जी के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य अग्रदास की रचना ‘ध्यान मंजरी’ से ‘राजयोग’  
में प्रतिपादित सिद्धांतों का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । अग्रदास  
ने उक्त ग्रंथ में अपने ‘ध्यानयोग’ को गुरु (श्री कृष्णदास पयहारी) का प्रसाद बता  
कर प्रकारान्तर से इसकी पुष्टि की है<sup>२</sup>—

श्री गुरु सत अनुग्रहते अस गोपुर वासी ।

रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकाशी ॥

ध्यान मंजरी नाम सुनत मन भोद बढ़ावे ।

श्री रघुबर को ध्यान मुदित मन अग्र सो गावे ॥

अग्रदास रामभक्ति में रसिक भावना के प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं । इस  
सम्प्रदाय में सीताराम के गुगल स्वरूप की उपासना विहित है<sup>३</sup>—

१. धीमत्तमाल (घुन्दावन), पृ० २७३

२. ध्यान मंजरी (अग्रदास), छ० ७६, पृ० ५०.

३. राजयोग, छ० १८, १६, २०, २१, २२



पोडस वर्ष किशोर राम नित मुन्दर राजें ।  
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक सारें ॥  
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी ।  
रूप सच्चिदानन्द वामदिसि जनक कुमारी ॥

‘राजयोग’ में भी ‘परमधाम’ में नित्यलोला मग्न, शक्तिसयुक्त, आराध्य का यही स्वरूप ध्येय बताया गया है<sup>१</sup>—

आगे सुपताका उडति देखि । तहँ सेन धन द्याया सुपेसि ॥  
आसन सफेद तहँ अरुन भूमि । चहुँ दिसि प्रकाश नहि बरन घूमि ॥  
को बरनि सकत प्रभु को सरूप । रवि कोटि चन्द धवि ते अनूप ॥  
नभ नील मेष इमि श्याम गात । नखि पीत बसन विद्युत सजात ॥  
इमि बसत राम निज सहित वाम । सब संत कहत जेहि परम धाम ॥

पयहारी जी ने इष्टदेव के इस ध्यान में तल्लीन जीव-मुक्त भक्तों को शास्त्रा-नुमोदित चार प्रकार की मुक्तियों—सालोभ्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य से श्रेष्ठतर पाँचवीं ‘ध्यानलीन’ मुक्ति का अधिकारी बताया है<sup>२</sup>—

जे चारि मुक्ति बैकुंठ मानि । ते भुक्ति मुक्ति फल सेहु जानि ॥  
तब पंचई मुक्ति पावो प्रवीन । जो रहत अहोनिशि ध्यान लीन ॥

उनकी सम्मति में योगसाधना रामभक्तिप्राप्ति का एक मात्र साधन है । —

तहँ गए मिटत है जन्म मरण । तेहि हेत जोग जत रामशरण ॥

आमेर नरेश पृथ्वीसिंह के प्रसंग में नामादास ने पयहारी जी को निर्गुण तथा सगुण दोनों तत्त्वों का पारंगत आचार्य कहा है । राजयोग में अग्रदास को उपदिष्ट निम्नांकित साधना प्रणाली इसका समर्थन करती है<sup>३</sup>—

प्राणहि अपान हठ गावि डोरि । कुडलनि आव सम युक्ति ओरि ॥  
तब चलत पवन जहँ ब्रह्मरघ । तहँ छोडि जाहि सब त्रिगुण बध ॥  
उलटे सु इला विंगला नारि । मुपुमना शुद्ध लीजे विचारि ॥  
पहुँचै सु जबै अनहद मेह । राखै सु एक हरि सो सनेह ॥

इस स्थिति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय रामनाम का अखंड धूप है<sup>४</sup>—

१. वही, छं० २४, २६

२. राजयोग, छं० ५, ६, ७, ८

३. वही, छं० २५

४. वही, छं० २८.

आठ पहर चौंसठि घरी ररकार बहराय ।

सकल मोह दावा मिटे तब नाना ठहराय ॥

स्वामी रामानन्द का भी मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था<sup>१</sup> जिसे आने-जाने कर गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण एव सगुण ब्रह्म की ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दोनों के बीच 'चतुर दुमापी' घोषित किया । पयहारी जी भी 'रामोपासना' की इस समन्वयात्मक प्रवृत्ति के पोषक थे । परवर्ती 'रामभक्त' कवियों ने भी अपनी रचनाओं में निर्गुण सत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी के अन्य सगुणाश्रयी सम्प्रदायों में प्रायः इसके विपरीत, निर्गुण भावना को सगुण के विरोधी रूप में ही चित्रित किया गया है । कृष्ण काव्य की भ्रमर-गीत परंपरा में इसके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं ।

कृष्णदास जी के शिष्यों ने रामभक्ति शाखा में इसी उभय (निर्गुण-सगुण) प्रबोधक ध्यान योग का प्रचार किया ।<sup>२</sup> रामोपासना की प्रधान सांप्रदायिक धारा आज भी इसी पथ पर प्रवहमान है । इस सम्बन्ध में यह उल्लेख्य है कि योग समन्वित रामभक्ति की यह स्रोतस्विनी गोस्वामी तुलसीदास की लोक-समूही उपासनापद्धति से सर्वथा पृथक् एकात्मिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिसमें बाह्य की अपेक्षा मानसी पूजा को प्रधानता दी जाती है । आराध्य और आराधक की तादात्म्यस्थापना के लिये इसके अन्तर्गत पंचभाव सम्बन्धों की कल्पना की गई है । रामभक्तों का यह भावयोग ही रसिक साधना का मूलतत्त्व है, जिसका मर्म न समझने वाले छिछली प्रवृत्ति के साधक सम्प्रदाय को अपनी ऐहि-

१. मूरख तन घरि कहा कमायी । राम भजन बिन जनम गँमायी ।

राम भगति गति जानी नहीं । भँव भूलौ यँदा माहीं ॥

रामानन्द की हिबो रचनायें, पृ० ६

२. नाभादास ने श्रीकृष्णदास के प्रत्यक्ष शिष्यों की संख्या २४ बताई है, जिनकी नामावली इस प्रकार है—

कीलह अगर केवल्ल चरन ब्रत हूँ नरामन ।

सूरज पुख्या पृथू तिपुर हरिभक्ति परायन ॥

पद्मनाभ गोपाल टेक लीला गदाधारी ।

देवा हेम कल्याण गंगा गंगा सम नारी ॥

विष्णुदास कन्हार रंगा चाँदन सविरी गोविन्द पर ।

पँहारी पत्ताद तें सिष्य सर्व भये पारकर ॥

श्री भक्तमाल (बुन्दावन), पृ० २७३.

वत्ता परव वृत्तियो से कलकित और सतृणाम्यवहारी आलोचन उन्ही के सिर इस धारा का प्रतिनिधित्व मद कर अनेक भ्रान्तियो की सृष्टि करते हैं ।

मोस्वामी तुलसीदास ने गोरखपथी सिद्धांतों के प्रचार से तत्कालीन समाज मे शास्त्रो और महापुरुषों के प्रति पैन्ती हुई अनास्था की ओर इगित किया था । श्री वृष्णदास पयहारी ने इसके बहुत पूर्व ही अध्यात्मक्षेत्र मे बढ़ती हुई इस भीषण व्याधि का निदान ही नही उपचार भी आरम्भ कर दिया था । मध्यकालीन भारत मे नाथपंथियो का मुख्य कार्यक्षेत्र राजस्थान था । वहाँ के निवासी जनसाधारण और सामन्तो को अपनी अद्भुत योगशक्ति से चमत्कृत करके उन्हुनि ही सर्वप्रथम हठयोग का दृढ़तापूर्वक प्रत्याख्यान कर साधका को भावयोग की ओर उन्मुख किया था । उन्हे शिष्य-प्रशिष्या ने घोर तपश्चर्या के साथ ही देशव्यापी प्रचार द्वारा इस अनुष्ठान को पूरा किया । इस दृष्टि से वैष्णव भक्ति के विकास मे पयहारी जी की सेवाये चिरस्मरणीय रहेगी ।



## मध्यकाल के अल्पख्यात रामभक्तों की कुछ नवप्राप्त रचनाएँ

रामोपासना की रसिक शाखा के सत्तों के जीवनवृत्त तथा रचनाओं के अनु-शीलन की जो परम्परा 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' में स्थापित की गई थी, उस दिशा में इधर उत्तरी भारत के अनेक विश्वविद्यालयों के तत्त्वावधान में तथा स्वतन्त्र रूप में कई महत्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं। उनमें रामभक्ति में शृङ्गारी उपासना की पृष्ठभूमि, उसका मनोवैज्ञानिक विवेचन, भारतीय धर्म-साधना की अन्य शाखाओं, विशेषतः कृष्णभक्तों की माधुर्य भावना से उसकी तुलना आदि तर्कों का व्यापक रूप से निरूपण किया गया है किन्तु जहाँ तक साधना के सैद्धान्तिक एवं तथ्यात्मक शोध का प्रश्न है, प्रगति अत्यन्त धीमी रही है। इसका मुख्य कारण क्षेत्रीय शोध की सुविधाओं की कमी और शोधार्थियों में श्रमशीलता का उत्तरोत्तर ह्रास है। आदि एवं मध्यकालीन साहित्य पर कोई कार्य उक्त दोनों कारणों के रहते हुए सार्थक हो ही नहीं सकता। यह बड़े ही खेद की बात है कि प्रांतीय तथा केन्द्रीय शासन शोध कार्य के प्रोत्साहन के निमित्त जो आर्थिक सह-योग प्रदान कर रहे हैं, हमारे शोधार्थी उनका भी समुचित उपयोग नहीं कर पाते। इसी का यह परिणाम है कि उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान तथा मध्य भारत के प्राचीन सग्रहालयों में सुरक्षित कतिपय महत्वपूर्ण हस्तलेखों को अब तक प्रकाश में आने का सुयोग प्राप्त न हो सका।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में सुरक्षित 'पदमुक्तावली' से उपलब्ध पूर्व-मध्यकालीन रामभक्त की रचनाओं का परिचय पिछले लेख में दिया जा चुका है। प्रस्तुत निबन्ध में कतिपय अन्य स्रोतों तथा उक्त सग्रह में उपलब्ध मध्यकाल के रसिक रामभक्तों की कुछ अप्रकाशित कृतियाँ उद्धृत की जायेंगी। इससे इनकी विचारधारा एवं भावसाधना का स्वरूप स्पष्ट हो सकेगा। इन भक्तों में विशेष उल्लेखनीय हैं—झाड़ूदास, बालबली, सूरकिशोर और हर्याचार्य। इनमें से प्रथम को छोड़कर शेष तीन भक्तों का विस्तृत वृत्त 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' में दिया जा चुका है। अब यहाँ उनके जीवन की अद्यावधि अज्ञात एवं विशिष्ट

घातों उनकी नवोपलब्ध रचनाओं के साथ दी जाएंगी। इनसे रसिक सम्प्रदाय के भक्तों की काव्यशैली में एक विशिष्ट तत्त्व प्रकाश में आता है और वह है चरितात्मक शैली में रामकाव्य निर्माण में इन भक्तों की अभिसृचि तथा गति। उदाहरण के लिए हर्याचार्य तथा सूरकिशोर की कृतियाँ सी जा सकती हैं। इनमें से प्रथम श्रृंगारी साधक थे और द्वितीय वात्मन्यनिष्ठ भक्त। इनकी जो रचनाएँ अब तक उपलब्ध थीं उनमें भावपूर्ण शैली में आराध्य की रसमयी लीलाओं का वर्णन मिलता है। किन्तु नवप्राप्त रचनाओं में उनकी लीला का इतिवृत्त बड़ी ही सयत और प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। हर्याचार्य का 'सीताराम-विवाह' वर्णन और और सूरकिशोर का 'रावण-अगद-सवाद' इसके प्रमाण हैं। इनसे यह विदित होता है कि कोमलकांत पदावली के समान ही ओजपूर्ण छंद रचना की भी इनमें अकूत क्षमता थी। साथ ही ये इस तथ्य के साक्षी हैं कि रसिक राम-भक्त—चाहे वे माधुर्यासक्त हो या वात्सल्यनिष्ठ—अपनी कृतियों में सामाजिक मर्यादा तथा व्यक्तिगत चारित्रिक आदर्शों की रक्षा का बराबर ध्यान रखते थे। इसी से पदमुक्तावली में सकलित इस सम्प्रदाय के सतों की सारी रचनाएँ उस घोर श्रृंगारिकता से अछूती हैं, जिसके आधार पर इस शाखा के कवियों पर 'ईश्वरत्व की छीछालेदर' का आरोप लगाया जाता रहा है।

हमारा विश्वास है कि इन कृतियों से रामभक्ति की रसिक शाखा की साधना एवं साहित्य विषयक अनेक अज्ञात तत्त्व प्रकाश में आएँगे जिनसे अनुसंधित्सुओं को इस क्षेत्र में अबसर होने के लिए नयी प्रेरणा प्राप्त होगी।

### भाई दास

ये श्री कृष्णदास पयहारी के प्रशिष्य तथा हेमानंद जी के शिष्य थे। जयपुर और उसके आस-पास पयहारी जी द्वारा स्थापित रामभक्ति परंपरा के प्रसारक रूप में इनकी बड़ी प्रसिद्धि है। इनका आविर्भाव जयपुर राज्य के उमाढा नामक ग्राम में एक खाडल ब्राह्मण परिवार में हुआ था।<sup>१</sup> पिता का नाम पंडित चोखा-राम था। बालकाल से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्मोन्मुख थी। इसीलिए इनके समय का अधिकांश पूजापाठ में बीतता था। आरंभ में घर पर ही पिता ने अध्ययन की व्याख्या की किन्तु उसमें इनका मन नहीं लगा। दैवयोग से किशोरावस्था में ही इन्हें पयहारी जी के शिष्य स्वामी हेमानंद का सान्निध्य प्राप्त हो गया और इन्होंने उनसे मन्त्रीक्षा ले ली। इसके बाद गृहस्थी के जजाल से मुक्त होकर

ये जयपुर की पश्चिम दिशा में स्थित जगली प्रदेश में जाकर एक सरोवर के पास आश्रम बनाकर भजन करने लगे।

कुछ ही दिनों की साधना से इनके मन में आराध्य के दर्शन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हो गई। ये उसी समय अन्तः प्रेरणा से भगवान राम की लीलाभूमि अयोध्या की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर कुछ दिनों तक सरयू तटस्थ रामघाट पर भजन करते रहे। कहा जाता है कि एक दिन जब ये इष्टदेव के दर्शन के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, तो आराध्य ने सीता तथा लक्ष्मण सहित इन्हे दर्शन दिया। उनका चरण वन्दन करते हुए श्यामदास ने दर्शन तथा नित्य सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। भगवान बोले 'कलियुग में मेरा साक्षात्कार प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु तुम्हें नित्य सेवा के लिए हमारा विग्रह सरयू में प्राप्त होगा। उसे ले जाकर अपने पुण्यस्थल पर स्थापित करना, उसकी पहचान यह है कि जहाँ विग्रह भार प्रतीत हो, वही उसे पधरा देना। उसके उपलक्ष्य में विजयादशमी के दिन एक महोत्सव करना। उस समय तुम्हें मेरा दर्शन नीलकण्ठ के रूप में होगा। श्यामदास को उसी दिन सरयू में स्नान करते समय तीन विग्रह प्राप्त हुए। उन तीनों को लेकर उन्होंने राजस्थान के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या जाते समय अपने आश्रम में श्यामदास ने बरगद की एक डाल यह कहकर रोपी थी कि अगर मेरे लौटने तक यह डाल हरीभरी हो गई तो इस स्थान पर एक गाँव बसाऊँगा। इष्टप्राप्ति के पश्चात् जब अयोध्या में राजस्थान लौटते हुए वे उस स्थान पर पहुँचे तो उन्हें भूति का भार बढ़ा हुआ प्रतीत हुआ। वह डाल भी हरे-भरे वृक्ष के रूप में परिणत हो गई थी। अतः उन्होंने वही मंदिर बनाकर तीनों विग्रह पधरा दिये और दशहरा आने पर 'रावणवध लीला' का विशाल उत्सव आयोजित किया।<sup>१</sup> भगवान के कथनानुसार उस अवसर पर उन्हें नीलकण्ठ के दर्शन हुए। यह उत्सव आज तक जयपुर से ३२ मील की दूरी

१. श्री रामानुजदास 'रूपसरस' ने 'गुरुपरंपरा' नामक अपनी रचना में इस घटना का विवरण देते हुए लिखा है—

पपहारी के शिष्य लखो सुवि हेमानन्दसु।

हेमानन्द के श्रंगभूषण शिष्य जानु अट्टमन्दसु ॥

भक्तमाल में प्रगट नाम जिनकी सख सोअ ।

अब सुन जिनकी कथा मोद भरि हिये धरीजे ॥

धाम बरस गये अवध में स्नान करत मूरति मिली ।

धो सीता रघुवर सखन की कज कोस बसु दल खिली ॥१॥

पर स्थित हरसौली ग्राम में बड़े धूमधाम के साथ दशहरा को मनाया जाता है, जहाँ हजारों की संख्या में भक्तलोग नौलकठ के दर्शनार्थ इकट्ठे होते हैं। इनकी दिव्यधाम यात्रा सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार स० १५४२ में हुई। इन्हीं की परंपरा में आगे चलकर रसाचार्य महात्मा सियासखी का आविर्भाव हुआ था।

श्री सरयू तट रामघाट जहाँ वरसन बोनूँ ।  
 श्री सीता रघुनाथ सखन जुत निज जन चीनूँ ॥  
 लज्जत पदयो मुक्ति चरन सकुट इव तन सुधि भूल्यो ।  
 मनभयो हर्ष अपार देह तन एव कूल्यो ॥  
 कर जोरे छवि निरलते नेह भयो खल धारि डर ।  
 विनय करत सिय राम सों गङ्गाव ह्वै रहे कठ स्वर ॥२॥  
 विनयत पद महाराज मोहि नित जान सगते ।  
 किकरता में करीं बियस निसि अति जमय ते ॥  
 तब माया अति प्रखल बिनासै नाही कबहूँ ।  
 सुमिरेहूँ बिस्त रहौ नाम गुण घामोच्छ्व है ॥  
 लखि किसोर वय भक्त कहे दया सिधु आसा दिये ।  
 श्री रघुनाथ कृपावतन एवमस्तु बोलत भये ॥ ३ ॥  
 सुनु झामू ! अति दुर्लभो मोर मिलन कलि माहि ।  
 तेरी दुइता बियस किम धामे ससय नाहि ॥  
 नित सेवन हित प्राप्त होइहौं सरजू अतर ।  
 ताहि प्राणि एकांत माहि सुचि भूमि सुततर ॥  
 मुद धरा किमि जानऊँ ? प्रभु बोले ह्यति अदत ।  
 जहाँ भार भो मे लखै तहाँ आमु अथ भ्रम कदत ॥ ४ ॥  
 तहँ लोला तुम रचो विनय दशमी दिन मेरो ।  
 रावण वध दुख हानि खानि सुख भक्ति सु केरो ॥  
 बस अवतार उदार देखिबे जे जन आवहि ।  
 यद् ऋतु रहिहै तहा नित्य रति माया पावहि ॥  
 लोला मेरो इमि करहु मोर नाम ते जाय ।  
 घाम रूप गुण हिय धरहु तहाँ न माया घाय ॥ ५ ॥  
 तिहि उत्सव के माहि सदा में वरसन देहै ।  
 कलिहित प्रगढ़ नाहि भेष इक ओट जो लेहै ॥

शंभूदास के भक्ति सम्बन्धी कुछ फुटकर छंद मिलते हैं । एक पद नीचे दिया जाता है—

मगल रूप लाडली लाल ।

जननी जगावत कुँवर कोशल्या उठि पहिरो मुक्तामणि माल ।

अंगुरी गह अमना पाँव टेको आरति अधिक उतारुँ चलि चाल ॥

जाय सुरताया धेनू सकल के आज्ञा धो भेटहु तिहुँ काल ।

शंभूदास प्रभु रघुनुल भठन अवधपुरी विहरत भूपाल ॥

मील गाँस को बरस ताहि दिन अति सुखदाई ।

चित्र लिखायत फिरत तिनहि दुर्लभ कवि गाई ॥

सो तनु धरि मैं आयहुँ उत्सव रति प्रति हेत ।

रंघक भेद न दीजियो यह सब मम सकेत ॥ ६ ॥

अस कहि अंतरध्यान भये सीता रघुनायक ।

शंभू मूरति देव धारि छवि निधि निर्मायक ॥

बचन प्रभू के मनन करत गये सरजू जल मे ।

गहात लखे प्रयमूर्ति कही जिनि पंकज बल में ॥

हाटक सिंहासन सुघट कंजपद कर गहि लपट ।

भई हृदय दृढ़ता अमित वाक्य सतगुनी सुल छपट ॥ ७ ॥

चले भूति सिर धारि जया आता पहिले भई ।

परिचम बिसि प्रयकोस पर अवल होइ सो तहँ ठई ॥

इच्छा लखि तहँ धान जियो सुचि ग्राम बसायो ।

स्लेच्छ घौठ औ हीन नरन ते रहित सुहायो ॥

स्थापित कर उत्सव जियो आयो प्रभु सोइ धारि तन ।

विदित चरित कतिवास में हरसोली ललिये मयन ॥ ८ ॥

रैवासा अह गातयासरम बिच हरसोली ।

शंभूदास को पान तहाँ महिमा सु अतोली ॥

शंभूदास के सिख भए हँ गुन निधि जानूँ ।

रामदत्त जू बडे ॥ सधु नरहरि दासानूँ ॥

गान माहिं नरहरि जये तानसेन आविक गुनी ।

अबबर सुद्धता मानि भज वय बिसोर इनि गति गुनी ॥

—श्री सियासरण जी (लखपुर) के सौजन्य से प्राप्त ।



रूपसरस जी की उक्त रचना की अन्तिम पक्तियों से यह पता चलता है कि शंभूदास के शिष्य नरहरिदास उनके गुरु हेमानन्द जी की भाँति ही संगीत शास्त्र के प्रकाश पंडित थे। उन्होंने अकबरी दरबार के तानसेन आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञों को गानविद्या में पराजित किया था और उनके प्रभाव से अकबर के हृदय में दैन्य का उद्रेक और युगलकिशोर श्रीसीता राम के चरणों में आसक्ति का प्रादुर्भाव हुआ था। इनको स्थितिकाल को देखते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की संभावना में कोई कालदोष नहीं दिखाई देता। अकबर द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की मुद्राओं में अंकित सीता राम के चित्र से भी उक्त उल्लेख की सार्थकता प्रमाणित होती है।

## सिया सखी

महात्मा गोपालदास 'सियासखी' का राजस्थान के रसिक रामभक्तों में विशिष्ट स्थान है। जयपुर से ३२ मील पश्चिम में स्थित हरसोली नामक गाँव में इनका जन्म हुआ था। ये महात्मा शंभूदास की परम्परा में ११वीं पीढ़ी में आते हैं। इनके पिता महात्मा लक्ष्मणदास बुढाढरा गोत्र के खाडस ब्राह्मण थे। श्री रूपसरस द्वारा रचित गुरु परम्परा के अनुसार इनका साकेतवास फाल्गुन कृष्ण ६, सं० १८६७ में हुआ—

मुनि योगीश्वर तथा वसु शशि सबत गनिए ।

भास फाल्गुन कृष्ण पक्ष पष्ठी तिथि ठनिए ॥

सीताराम समीप गये, नित सेवन हित स्वामि ।

भक्ति तथा गान विद्या दोनों इन्हें अपने पिता महात्मा लक्ष्मणदास से रिकथ रूप में प्राप्त हुई थी। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी काव्य रचना करते थे। रामजन्म तथा विवाहोत्सव सम्बन्धी इनके ५०० के लगभग पद प्राप्त हैं।

- 
- विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति में रसिकसम्प्रदाय' पृ० ४१५। उक्त ग्रन्थ में इन्हें गौड ब्राह्मण लिखा गया है, जो बाब की खोजों से निराधार प्रमाणित हुआ। इसी प्रकार उनका जन्म स्थान बडगर्वाँव बताया गया था, वह भी ठीक नहीं था। वहाँ इनके गुरु का नाम शंभूदास दिया गया था, वह भी भ्रान्त था। इधर इनके जीवन सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। उपर्युक्त परिचय उन्हीं पर आधारित है।

## चन्द्र अली

श्री बलदेवदास 'चन्द्रअली' सिमासखी जी के छोटे भाई थे। ये उनके चित्र-कूट चले जाने पर जयपुर में चादपोल वाली गद्दी के महत हुए थे। इधर इनकी एक रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' प्राप्त हुई है। रसिक परम्परा में ये ग्योश्वरी चन्द्रकला जी के अशावतार माने जाते हैं। इन्होंने अपनी श्रृंगारी भावना के अनुसार ३२ कुजों का निर्माण कराया था। रूपसरस जी ने आराध्य की अष्ट-धाम सीला पर इनके द्वारा रचे गये चार हजार छन्दों की प्राप्ति का उल्लेख किया है—

चन्द्रअली अवतार अजतम नासक भानू ।

अष्टधाम सीला सलित चतुर्सहस्र प्रमानू ॥

'रामविवाह' विषयक इनका एक छन्द नीचे दिया जाता है—

जुगुल माधुरी रस बरसै री ।

धम धमड डूलह श्रृंगार पर भूषण दमक तडित दरसै री ॥

नव सुपमा क्षर लम्बो महल में गान गर्ज कृत अलि सरसै री ।

अद्भुत रससिंधु पूरित धिर भइ निमग्न सलि सगि चरसै री ॥

लगी लगन अनुराग भरे सब परिजन मज्जन अँग परसै री ।

'चन्द्रअली' लखि छवि विवाह की रोम रोम अति मनहरसै री ॥

अपनी रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' के अंत में इन्होंने 'युगल मञ्जरी' नाम एक रसिक सन्त का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। उससे पता चलता है कि भाव साधना में इन्होंने उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी।<sup>१</sup>

## सूर किशोर

रसिक प्रकाश भक्तमाल में इन्हें पयहारी जी के ज्येष्ठ शिष्य कीह्लस्वामी का प्रशिष्य कहा गया है। ये भी जयपुर के निवासी थे। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह के व्यवहार से दुःख होकर जब भधुराचार्य गलता छोड़कर चित्रकूट चले गये तो इन्होंने भी वह स्थान त्यागकर सोहार्गल सीकर को अपनी साधना भूमि बना ली। जानकीजी ने प्रति इनका पिता का भाव था। ये इस वात्सल्य-निष्ठा का निर्वाह अपने दैनिक जीवन में भी करते थे। पुत्री को सदैव गोदी में लिए रहते थे और उसके मनोविनोद के लिए नाना प्रकार के उपाय करते रहते थे। अयोध्या आने पर इन्हे किस प्रकार दिव्यदम्पति का दर्शन प्राप्त हुआ, इसकी

१. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—रा० १० सम्प्रदाय, पृ० ४२७ ।

क्या लोकप्रसिद्ध है।<sup>१</sup> मामा प्रयागदास इन्ही के शिष्य थे। इनकी सर्वविदित रचना 'मिथिला विलास' है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। नीचे 'पदमुक्तावली' में प्राप्त इनकी तीन रचनाएँ दी जाती हैं। इनमें प्रथम का प्रतिपाद्य 'अमर-रावण-संवाद' है। इससे विदित होता है कि सूर किशोर जी ने भावपूर्ण पदों के अनिरिक्त कुछ चरितात्मक रचनाएँ भी की थी। इस प्रकार की इनकी कोई रचना अब तक प्रकाश में नहीं आई थी। दूसरे छंद में जानकी चरणों में अनन्य निष्ठा व्यक्त की गई है और तीसरे छंद में धनुषयज्ञ का वर्णन है—

आव रघुवीर की सरन अङ्गद कहै मानि मत मूढ बर बचन मेरी।

जाहु रे जाहु जब कोपि लकेश बहो भुजनि मेरी वसै काल तेरी ॥ टेक ॥

सुर असुर नाग नर बली इते जगत में इन्द्र ब्रह्मादि सबही मवाए।

यह अद्भुत बड़ी बात पोछै रही रीख कपि लक गढ़ लैन आए ॥२॥

घाम कर की अलप अगुरी अक भनि लक छिनकराही ढहाऊ।

कहा करौ नैक मोहि लक रघुवीर की रक तुहि मारि अब ही उठाऊ ॥३॥

हौंहि असौ बली मुगध बपि काहि नै बालि से बाप को बैर लीनो।

तात के भ्रात की पतनि माता करी शत्रु की सरन जाय मूँड दीनौ ॥४॥

हेतु ममतात मैं रावरे से लछिन धर्म की मँड जिहि फोरि डारी।

परि है अब घुरि सुनि रावरेहु बदन राम अवतार बल डड घारी ॥५॥

सुनत ही बचन जानी फनिग को पन चप्यो सिध की पूछ सोवत मरोदूयो।

परजरी आगि उर बीस लोचन बिकल पटक भुज उठत मित्रन निहोदूयो ॥

जोलो यहै अँड अभिमान मर की भरनि ग्रीव मैं बकि है द्रष्टि धीठी ॥

सरस रन आँकुरी भुजा रघुवीर की जोलौं मति मूढतैं नाहि धीठी ॥६॥

चपल बनचरन की जाति घर बोर अति कहा राजान सौ बोलि जाने।

छत्र की छाँह इद्रादि सर थर करै वकत नहि-धीठ जहाँ सक आँनै ॥७॥

करहुँ जिय सक जो अधिक ताकीं गनौ जो कछु अपनपौ घटि बिचारौ।

भुजन सौ लपटि द्रव-पाल सब दलमलौ घरनि नम पत्र ज्यों फारि डारौ ॥८॥

अवर मटभेर समसेर अघसेर तू आपनो बल हीये नहि बिचारे।

कहत परधान महाराज रावन बली मुग्ध कित आप सौ बाध मारे ॥९॥

पर्यो बलि द्वार प्रतिहारि वावन गदा किकरी कोर दै दै जिवायो।

तात मम पालनै आनि बाध्यो तवै रहपटन मारिकै उबर ल्यायो ॥१०॥

यह मरम के बचन सुनि पेद उर में भये चटपटी जीयें भृकुटी चढ़ावै।

है कोई सूर सावत मेरी समा मारिल्यो मुगध नहि जान पावै ॥११॥

एक रहपट दीये मुकट उडि जाहिगे सभा सब चरन सो चापि डारों ।  
 बालि को पूत यह सोचि जीय में कहै सिंच होय मीढकनि कहा मारो ॥१२॥  
 किहै अपराध उत्पत्त छोटेन को बढन को क्षमा भूपन कहावे ।  
 जान द्यो दूत अवलौ न मारे कहूँ पसुन सौ सरत जिय लाज आवै ॥१३॥  
 कहै सूरकिसोर हँसि बालिनदन कहूँ यो कौन अब सीस तो सौ चपावे ।  
 नेक धरि धीर रणधीर रघुबीर भट देपि तरवारि केसी बजावे ॥<sup>१</sup>

## राग भैरव

जानकी पद रेनि की मोहि जनमि जनमि आसा ।  
 अरय धरम काम मोछि सब बन तैऊ दासा ॥ टैक ॥  
 मदगयद अगद हनुमान सरन आसा ।  
 सिंद की ध्यान लियम गाल मुनिन की निवासा ॥१॥  
 सुरग भूतल जोग' मोग ब्रह्म लोक आसा ।  
 सूर किसोर सब सुष पट बिजन की निवासा ॥२॥<sup>२</sup>

## राग पंचम

हृदये सिन्धु को चाप लिय सुभट सब,  
 पचि रहे तनकहूँ नाहि काहू उठायो ।  
 कहौ सिर धुनि धिप जनक येहु,  
 जगव मैं नाहि औसो वीर कोउ जननी जायो । टैक ।  
 मुनि बचन लपन अंगराज मनु, ऊछल्यौ  
 अगि ऊकणी चली सुभट ताई ।  
 कहौ कोदड कर पडि डारु असे,  
 बक अवलोकि भीहैं चढाई ॥१॥  
 अनुज को रापि प्रभु बाँधि कटि, पीत पट,  
 नाय गुर सीस अनुसीस पाई ।  
 उदित भयो भाल सोभा अपिल भवन की,  
 अमित बल तेज गभीरताई ॥२॥

१. पदमुक्तावली : छंद सख्या १६, ३६ अ, घ, ४० अ

२. पदमुक्तावली, छंद सख्या ८८

मच परमात के भान से जगमये,  
 ऊमगिइ सुरज नहि रह्यो छानू ।  
 जनक महाराजि मुपचंद कहू दुरि गयो,  
 ओर थिप देखि ऊढगन मिलानू ॥३॥  
 उत्तरि छिवि सो जले अतिहि लागत भले,  
 कुरप ले दरभ ते जरे जाही ॥  
 ऐक ही धार दुप भाजि गयो सबन को,  
 रह गयो तनक सी धनु तहाँ ही ॥४॥  
 अबनि पग धारते मदन मन मारते,  
 भाट चहुँ ओर ते बिरव बोलै ।  
 बिना बानेत रघुबस के बाँकुरें.  
 जनक दुपपाट और कौन पोलें ॥५॥  
 फबी हैं अलक वह ललित मुप कबल परि,  
 माधुरी हँसनि सुप सबन दीन्हें ।  
 मत गजराज भुज सुडि फेरन जटकि,  
 धरन सी ललकि चित चोरि लीन्हें ॥६॥  
 साबर कुँवर सिव चाप भजन बल्यो,  
 बात कहू जाय पुर में बलाई ।  
 पलन के ललन छाडे ललना सकल  
 कल न परि तनकुहु पल न लाई ॥७॥  
 रमती श्रमती जट अटनि मैं बहो,  
 घटिन मैं मानु छट्टा चिमक्के ।  
 हुलसती बगिसती निकसती देत छवि,  
 उढत अचल खपल अँग दमक्के ॥८॥  
 हे सपी ! हो सपी हो ननद आवरी  
 सास फिवु आत भगनी बुलावे ।  
 है बडो चावरी दमकि चलि आवरी  
 साँदरे धनस कैसें उठावै ॥९॥  
 मानु आनद को मेह बरस्यो नगरि  
 तरजि भामनि चलीं गलिन माँही ॥  
 प्रेम जस तीर तुव हो तुरत आतुर,  
 खली अगि मुपन मुकर झलमलाई ॥१०॥



सुरवधू ठोर ही ठोर सब जानि चढ़ि  
 प्रेम देहबल भई अति सुहाई ॥  
 हरपती बरपती फूल रघुवीर परि  
 निरपिती बदन सेती बलाई ॥१६॥  
 रूप की रासि सीरमोर राजान के  
 देखि सीये मान हीवरो सीराणू ।  
 ऐह कुंवर लाडिलो होय खु कुंवरि को  
 सुफल करि जनम बड भाग मान्यो ॥२०॥  
 सीये कैं सतति सकलप मेरे करनि  
 मात को पूत असो जनैगी ।  
 एह अद्भुत कमल सीवेह वष्य कठिन  
 सोहा दई बात कैसें बनेगी ॥२१॥  
 होह जनि हारि कहु मारि धीर न धरे,  
 ज्यो ज्यो प्रभु धनसके निकटि आवैं ।  
 आवनु आपनु पुन्य फल दान दे  
 लोग सब देव देवी मनावे ॥२२॥  
 कोहु देपी न जान्यो नही कब गहूयो  
 राम सिव चाप ऐसे चढायो ।  
 अति बिक्राल महासाल तिहुँ लोक को  
 तनक में ठोरि धरनी गीरायो ॥२३॥  
 डीगमगे धरनि सिसि तरन हैं बरसलै,  
 कमठ सिव सेसहु कलमलाये ।  
 मुरग पाताल द्रगपाल सागर क्षलकि  
 गाजि ब्रह्मबड सब डगमगायो ॥२४॥  
 नगर नम भाँहि नीसान बाजिन लगे  
 बीजे की रीति कुंवरि राम लीन्ही ।  
 जानकी आय परि प्राय करि कुंवल सू  
 लाल कूँ माल पहराए लीन्ही ॥२५॥  
 उठि गये भूप सब बदन करि करि बुरो,  
 जनकपुर राम सीए व्याह ठान्यो ।  
 व्याहि व्यारो कुंवर आय कवसल नगरि  
 सूर किसोर तिहुँ लोक जान्यो ॥२६॥

## हर्याचार्य

ये रसिक सम्प्रदाय की मूल गद्दी गलता के पीठाधिपति मधुराचार्य के शिष्य थे। सस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। पहले गीत गोविन्द के आदर्श पर कोमलकान्त पदावली में रचित 'जानकी गीत' नामक इनके ग्रंथ का उल्लेख हो चुका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में इनके कुछ फुटकर पद ही प्राप्त थे। 'पदमुक्तावली' में 'राम विवाह' शीर्षक में एक सठ काव्य भी है, तीन पद इसके अतिरिक्त हैं। प्रथम में जनकपुर में रामजेवनार, दूसरे में आराध्य युगल का रूप लावण्य और तीसरे में नखशिख वर्णन है। पूर्व प्राप्त दोनों पदों में 'हरिसहचरि' छाप दी गई थी, किन्तु इन तीन पदों में 'हरिया' 'जन हरिया' तथा 'हरिया सखी' छाप रखी गई है। 'राम विवाह' वाले प्रसंग में भी 'जन हरिया' छाप है। यह प्रसिद्ध है कि हर्याचार्य की 'रामविवाह' में विशेष निष्ठा थी। कहा जाता है कि अपने जीवन काल में इन्होंने 'रामविवाह' के अवसर पर बार बार बड़ी धूमधाम से 'रामलीला' करवाई थी। प्रस्तुत चारों रचनाएँ इनकी उक्त प्रवृत्ति की पोषक हैं। अतः उन्हें गलतागद्दी के विख्यात भृगारी रामभक्त हर्याचार्य की रचना स्वीकार करने में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। उक्त चारों छंद यहाँ दिये जा रहे हैं—

### राम सारंग

मिनि जीमत राम जनक मन्दिर विचि सुन्दर नारि जिमावतु हैं।  
 प्यारी भईया धान जुरि एके कवला सेत मुचि पावतु हैं ॥टेक॥  
 नवल-नवल मिनि नवल नागरी पुरखू सब जुरि आवतु हैं।  
 कवइन निरपि अति मन हरपत रस भरि गारी गावतु हैं ॥१॥  
 चतुरानन सिव सारद नारद जनहु के ध्यान न आवतु हैं।  
 कहै 'हरिया' त्रिया धनि जनक की हँसि-हँसि लाड लडावतु हैं ॥२॥'

अथ श्री सीताराम जी को स्वयंवर लिप्यते ॥

### राम पर जमाह

श्री गुरु चरन सरोज को जू सुमिरि नवावू सीस।  
 पहिले गुरु परसन भये जू प्रसन्न हुये जगदीस ॥  
 प्रसन्न हुए जगदीस जगत गुरु श्रीपति रघुवर राई।  
 बाल चरित बरनौ सुम तिनको पीछे म्याह बनाई ॥१॥



बहुदूरी श्री गुर चरन कवल कौ बेर-बेर सिर नाऊँ ।  
 चरित मनोहर श्री रघुवर कौ बाल केलि कौ गाऊँ ॥  
 छगन मगन च्यारौ राजवी जू जनक सुता हित दाय ।  
 किलकि-किलकि तरपरनि सौ चलत घुटखन धाय ॥  
 छगन मगन च्यारौ ही भाई जनक सुतनि हित दाई ।  
 बाल विनोद चाहि सब जननी आनन्द उर न समाई ॥  
 रतन जटित नृप सदन अजिर भधि बिहरत माल सुभाई ।  
 बाल केलि तिन की गति निरपत 'जन हरियौ' बलि जाई ॥२॥  
 च्यार कुंवर बहराईष जू च्यारौ अति सुकमार ।  
 राजिबनैन सुहावने जू बिहरै नृप मन मझार ॥  
 दोय गोर दोय नील बनजतन राजत रूप उदारा ।  
 पीत झंगूली सीस चौतनी उर मोतिन कौ हारा ॥  
 कटि तटि किंकिनि रदत मनोहर पद मूपर झुनकारा ।  
 राय आगत मैं राजकुंवर मिलि च्यारो करत बिहारा ॥३॥  
 नृप दशरथ के लाडिले जू बिहरत अवधि मझार ।  
 सग सपा लीयै जोरि के जू सबही ऐक अनिहार ॥  
 बाल केलि के ललित विभूषन फवि रही छवि असभारी ।  
 कटि सनोर पीत पट सोमित करवर कोदंड धारी ॥  
 मुर नर मुनि जन पुरवासिन कौ बिपुल सुआनन्दकारी ।  
 नृप दशरथ के कुवरन ऊपर 'जन हरियौ' बनिहारी ॥४॥  
 रघुकुल मणि च्यारौ राजई जू बिहरत सरजू तीर ।  
 कटि तटि भाष सबनि रहै जू सारथ धरै रघुबीर ॥  
 सारथ धरै रघुबीर विभाकर सोहै गुण निधि गभीरा ।  
 जन मन करषत आनन्द बरषत बिहरत सरजू तीरा ॥  
 इहि विधि बिहरत निकर सपा सिये निगमहुँ पार न पावैं ।  
 निरपि केलि कला श्री रघुवर की पुरजन मनहि सिहावैं ॥५॥  
 दशरथ मुत च्यारौ देपनै जू आए रिप अवधि निकेत ।  
 राम लपन मन मैं बसे जू बरनत श्रुति सनेत ॥  
 तिन की कीरति गुन गरवाई बरनत श्रुति सनिकेत ।  
 दई आसिपा रिपवर नृप कौ जीवे जिग सिधि हेतू ॥  
 बारे मुत रिपवर कौ देतैं सकुचे दशरथ राई ।  
 प्राननहूँ तैं अधिक पियारे तातैं दीये न जाई ॥६॥

तब बोले रियराजजू जी कीये मुनि वेद उचार ।  
 मुनहु बचन बड भूपती जू करि नोहचै निरधार ॥  
 राकस कुल कौ जीति अवधिपति ये हरि हैं भू भार ।  
 सिधि करें मम जिग कौ निहचै ऐ दोउ राजकुमार ॥  
 बल कीरनि रघुपति की भू पर ए करिहैं बिसतार ।  
 इनमे गुण सु अपार अमल सुठि कहि कोउ लहत न पार ॥७॥  
 इह मुनि कैं नृप हरपियो जू दीये सुत रिप कीहो लार ।  
 'जन हरीयो' तिन ऊपरैं जू बार्यो बारवार ॥  
 दशरथ भूप हरपि कैं रिप को दीयो कुँवर दोउ भाई ।  
 चले हैं चाप असन परि धरिकैं सोभा बरनी न जाई ॥  
 पीत बसन गज तार हार उर भूपन अग छवि छाए ।  
 सुन्दर सुप की सींव मनोहर रिप सग लगत मुहाये ॥८॥  
 रिप कैं सग भग मैं चले जू दोउ बर धीर उवार ।  
 बला अतिबला विद्या निपुन्य जू कीये दोउ राजकुमार ॥  
 ताही अवसरि नाम ताडिका आई बन करत बिहार ।  
 श्री रघुवर अस लगी राकसी कीनों धनुष टकार ॥  
 अँचि बान उर बेध्यो रघुवर सुप चली रुधिर की धार ।  
 निकसे प्राण छिनक मैं ताकै लागे मरम सुभार ॥९॥  
 देखि पराक्रम राम को जू रिप हरये बारवार ।  
 माधुरी मूरति बड हरप सौं जू लागे उर प्राण अवार ॥  
 अतुल प्रताप देखि रघुवीर को हरये रिपवर राई ।  
 मम जिग्य को ये पुरन करिहै निहचै मन मैं आई ॥  
 जगत ईस निनवे सग लागे घम्य रिप भाग निकाई ।  
 कौसलेस के कुँवरन ऊपर 'जन हरीयो' बलि जाई ॥१०॥  
 बलि आश्रम रिप कैं गये जू सुन्दर धीर उदार ।  
 रिप आरम्भ जिग्य को कीयो जू आवे ओर रिप अपार ॥  
 जिग्य मधि बैठे गव रिपवर कीनों वेद उचार ।  
 ताही छिन मिलि कैं दोउ राकस आए दुपहरी वार ॥  
 श्री रघुकुल मणि लेप निसावर कीनों कोदड कर धार ।  
 दोष बान ले साथे रघुवर बेधे भरम सुभार ॥११॥  
 एव बान लख्यो मारीच के जू डार्यो सिधु मँझारि ।  
 दूनों लख्यो हैं मुवाह के जू मरत न साई बार ॥

गद्य द्योत नीनी जस्य रत्ना वीरसुत सज्जता ।  
सात वरग ये दशरथ नन्दन हरे राजस भू भारा ॥  
गोहोत्र वृष्टि वृन्दारक नीनी पाये दुदुमि पात्रा ।  
हरो गुर मुनिवर वनवासी गरुडो रिपवर को जामा ॥१२॥

हरो है रिपवरराय जू जी भए मन माँवगो मोद ।  
भी वनुरानन मां सहे जू सो रिग भीने गोद ॥  
भीने गोदहि रिपवर जू ने नेह सावि दोउ भाई ।  
कौमनेस के कुँवर मुन्दरवर पूजे रिपवर राई ॥  
मिथुलापुर मिथुनेगुर जिग की हिा सो जया मुनाई ॥१३॥

जनक मुपम्वर ठाण्यो जू सीताजू को ब्याह ।  
कुँवरि विवाहन कारने जू कीयो नृप बहूत उदाह ॥  
गुर कुँरे रसातल भूतल के सर गुर बीर अधिकार ।  
धनुष जग गुनि जनक राज को देवन को चनि आए ॥  
देस देस के भूपति मिथुना आये जगज्जमाई ।  
भवधनु धारि अँधि के मजे सोई कुँवरि विवाह ॥ १४ ॥

किरि बीने रिगराज जू जी बलौ हो सो देवन जाय ।  
मिथुनेगुर बहु भाँति सँ जू सनमुख मिनि है आय ॥  
तुम की लपि मिथुनेगुर भूपति पूछिहै नेह गुमाई ।  
भूपन मे रघुवंस राय जम बड़ि है अधिकार ॥  
मधुर वचन गुनि मुनिवर जू के हरये दोन्यो भाई ।  
मिथुलापुर के जिय की देवन मन मे ऊजि भाई ॥ १५ ॥

मुनि के संग मिथुना बसे जू श्री अवधेस के साल ।  
पीत वरन कटि काछनी जू हाथा सर बाप रसाल ॥  
करने कनक कली सीस नीतनी भुग मद विलक रसाला ।  
नाना रंग मुहावन सुन्दर उर कुसमनि की माला ॥  
मुनिवर मन के मोद बदावन राजीव नैन बिसाला ।  
'जन हरियो' बलि सोमा ऊपर मानो मग बलत मराला ॥ १६ ॥

गौतम के आश्रम गये जू श्री रघुवर पविधारि ।  
आश्रम देवि सुहावनो जू बोले वचन विचारि ॥  
आश्रम रम्यो कौन को रिप जू कहिये विधि सुविचारी ।  
विटपनि करि अति हरित मनोहर सोहै गुमन फलमारी ॥

अति रबनीक मुहावन आश्रम सब विधि आनन्द दाई ।  
 हीन रहत भृग पछो कुल चिन हम को वही सुनाई ॥ १७ ॥  
 सब बोले रिप राजकु जी कुवरन के हितकारी ।  
 आश्रम रिप मोठम को पू थापी अहत्या नारी ॥  
 परन रति बाँधित है नित प्रनि चली गु यावों तारी ।  
 कीरति होय मुहारी भूवर उपरिहै रिप को नारी ॥  
 मुनि वर नारी उघारी रघुवर पति के सोक सिपाई ।  
 जन हरीया श्री राम वरन भजि अमलस आनन्द दाई ॥ १८ ॥  
 मिथुनापुर मुनिवर गये पू बैठे रिप बाँटिक जाय ।  
 पूजा द्रव्य विधि सो तिये कृ आये मिथुनापुर राय ॥  
 बरयो प्रणाम भूप रिपवर को पूजो रहै विविध मवनाई ।  
 राम लगन दोउ देखि जनककु पूछे रिपराम गुमाई ॥  
 बौन भूप के कुवर छोले अतिसे आनन्द दाई ।  
 विनही नाउ सगत मुहावा मुनिवर ए दोउ भाई ॥ १९ ॥  
 सब बोले रिपराम कृ श्री मन में अति गुणिदाई ।  
 गुन वर अवधिमुवान के कृ भूरति ए दोउ भाई ॥  
 प्रथम गिहारी नाम ताँदिका रघुवर वर में आई ।  
 मन शिष्य को दन प्ररत बीनी हति रागग दुपदाई ॥  
 धार मोषि रिपवर पतिनी को आण मन बोदक भाई ।  
 राम लगन हा नाम जनक कु इनमें गुन गरवाई ॥ २० ॥  
 रिपर बोले रिपराम कु श्री त्रि श्री वषा गुणाय ।  
 बनि गरामन मम्बु को कु रिपको इनको आय ॥  
 मह मुनि के हगने मिथुनेगुर दोये मट गुन पटाई ।  
 रिपवर कु श्री मेह मागि के बोले वषन गुमाई ॥  
 बार चढ़ाई रामचर कु आय बोदि श्री माई ।  
 मन आउदका कुंवरि जातकी देह इनको गरमा भाई ॥ २१ ॥  
 मर हगने रिपरामकु श्री कुंवर मरेह गुमाई ।  
 हौन के राम उपाहु श्री कु रिप बिउने दोउ भाई ॥  
 कुंवर हगने कज्जल बगने मन मे रति गुन पावो ।  
 श्री कुंवर रदर बार बगने होय अमरम बगवो ॥  
 राम कुंवर कुंवरि विनय करि रिप पावो पदे ।  
 रिपर रति कुंवर हगने के विनय कुंवर पदगदे ॥ २२ ॥

रघुकुल दीपा जिय मैं जू बैठे बड मच बिछाय ।  
 रिपवर जू की गोद मैं जू लागत परम सुहाय ॥  
 कोमल तन दोउ राजकुंवर वर सोभा बरनी न जाई ।  
 सहस किरन कौं सग ले सोमित भानी रवि जगे आई ॥  
 तिहि अवसरि दोउ कुंवरन निरख रहे नर नारि लुभाई ।  
 हरपि हरपि दोउ कुंवरन ऊपर जन हरीयो बलि जाई ॥ २३ ॥  
 देस देस के भूपत जू होने जिय मझारि ।  
 महा मुभट सख धरैं जू आये साजि सिंगारि ॥  
 करहि रोप अति देपि चाप कौं धारैं भुजा पसारी ।  
 चाप चलत नहि नैक अबनि तैं पल पचि पचि हारी ॥  
 केते गये बिमारि दाप कौं भूप सजय भुलाई ।  
 महा निलज ते आज बिहूने रहे अभिमान धराई ॥ २४ ॥  
 पच दस सहस्र मट लागि कैं जू त्याये चाप चलाय ।  
 बहु घटनि भूपित कीयो जू धर्यो है सभा मे आय ॥  
 दससिर आदि सहस्र भुज से मट कोउ न सक्यो उठाई ।  
 भव बड दाप ताप तैं सकित केते गये पलाई ।  
 भूप देखि ता महा चाप कौं केते भूप पलाय ॥  
 जन हरीया ते पुनि पुनि सोचत जैसें बिस गमाय ॥ २५ ॥  
 सोचे हैं जनक भुवाल जी लीनें नृप भाट बुलाय ।  
 सुमति विमति दोउ सुनत ही जू आये बेग चलाय ॥  
 तिहि अवसरि दोउ भाट सभा मधि मीनी भुजा उचाई ।  
 सुरगुर रसातल भूपालन सो बोने बचन मुनाई ॥  
 मुनौ सभा के भवै भूप मिनि मिथुलेसुर पन सोई ।  
 चाप चढावैं गिरजापति कौं सो कन्या बर होई ॥ २६ ॥  
 सुभट नही कोउ तुम मही जू सक्यो नही चाप चढाय ।  
 काहे कौं तुम आईयेजू जेही लाज गमाय ॥  
 सुनत ही बचन भाट को लजि कै भूप गये मुरझाई ।  
 तिहि अवसर रघुकुल के मडन हरपे दोऊ भाई ॥  
 रिपवर सहत कुंवर दोउ हरपे भूप सबै बिलपानैं ।  
 हस उदैतें मोर भये मानौं सारंग फीक फिताने ॥ २७ ॥  
 भाट बचन सुनि रोप के जू बोने हैं सपन रिसाय ।  
 रघुवसनि कौं सुनत ही जू जैसें कोउ कहत न काय ॥

मो कौ आग्या दीजै रघुवर लेहौं तुरत चढाई ।  
 छत्र क दह सम न जौ सरासन तो हो बीर कहाई ॥  
 तुम आग्या भगवान भुवनपति द्वयो ब्रह्मावत उढाई ।  
 जर जर जठर मनाक सम्भु कौ कौ अस कोदह आई ॥ २८ ॥  
 श्री रघुवर तब सपन कौ जू बरजे हैं सहज सुमाई ।  
 रिपवर आज्ञा पाइ कै जू उठे हैं रघुवर राइ ॥  
 श्री रघुवर अस जानि सपन कौ बरजे हैं सेन सुमाइ ।  
 आग्या पाय राज रिप जू की उठे हैं रघुराई ॥  
 उठे हैं रघुकुल बस बिभाकर हरपे हैं सव सरोजा ।  
 कुमद बिमन भये अस्त अवनिपति मिटि गयो सब की बोजा ॥ २९ ॥  
 कोतुग देपन राम कौ जू आये पुर के नर नारि ।  
 चढ़ि चढ़ि मन्दिर मालिया जू प्रिय डारैं भूपन वारि ॥  
 नैन निरपि दोउ कुँवर लाडिले हरपे वारों वारी ।  
 मिथुलापुर की नारि नेह लगि तन की दसा बिसारी ॥  
 चित्र समान भये नर नारी पल सौं पल नहि सावैं ।  
 मिथुलापुर जन भाग की महिमा ब्रह्मादिक नहि पावैं ॥ ३० ॥  
 छडीले कुँवर दोउ देखि कै जू हरयी सब पुर नारि ।  
 आनन्द उर न समावई जू रघुवर रूप निहारि ॥  
 रूप निरपि आनद भयो जू सब कै ज्यू सफरी सह वारी ।  
 भागिन दोऊ कुँवरन ऊपर तन मन करै सु वारी ॥  
 रूप निहारि कुँवर रघुवर की जुवती अैसे आनैं ।  
 कुँवरी कौ वर होहि सावरी जोर विधाता बानैं ॥ ३१ ॥  
 नारी मनावैं देवता जू हरिहर गणपति राय ।  
 पाप चढ़ावै राम जू जी कीज्यौ सबही सहाय ॥  
 आनि लगे पूजे नाना विधि हम जो हेत सगाई ।  
 पाप चढ़ावैं श्री रघुवर जू कीज्यौ बेग सहाई ॥  
 नारि सबै मिलि देव मनावैं बेर बेर छिर नावैं ।  
 होय मनोरथ पूरन हमरो रघुवर पाप चढ़ावैं ॥ ३२ ॥  
 सोपत पठनी जनक बी जू सपीपन सहज सुमाई ।  
 नेम पठिन भूगति सीयो जू जो जोउ बरजे पाई ॥  
 पठिन नेम सीनों बह भूपति जो जोउ बरजे जाई ।  
 ससी जोग बर कुँवर सावरी सब भूपन को राई ॥

असें पिछुताय जनक की रानी रघुवर रूप निहारो ।  
 दीरघ धनुष कुंवर अति कोमल बनी कठिन अति भारो ॥३३॥  
 चतुर सपी बोली नेह सौ जू मुनी रानी बचन मुहाय ।  
 कहाँ वारिनिधि बडो अगम अति कहाँ अगस्त मुनिराय ।  
 कहाँ वारिनिध अति बडो जू कहाँ अगस्त मुनिराय ।  
 सकति प्रताप सकल सरितापति अंचे गये सहज सुभाय ॥  
 सप्त दीप किन महा मेदनी बित रवि मडल सोई ।  
 श्यामि चराचर तेज दसों दिसि अमल प्रकासक होई ॥३४॥  
 यौही रघुवर धनुष को जू तोरि हैं लेहैं तुरत चलाई ।  
 ससय मन मे जिन करो जू होयहैं जू यह सति भाई ॥  
 सपी बचन मुनि अति सुप पापी उपज्यो आनदभारो ।  
 हरपी नारि जनक की मन सैं हरपी जनक कुमारी ॥  
 इहि विधि करत विचार जनक निय रघुवर छबिहि निहारै ।  
 निज कुलदेव मनावत रानी तन मन धन सब बारै ॥३५॥  
 कुंवरि अकि गोपने जू कर बर माता धारि ।  
 रघुवर रूप निहारि कै जू रही मन सोच विचारि ॥  
 सब सपीमन सौ कह्यो कुंवरि यो कोमल बचन उचारि ।  
 बरिहैं कुंवर साँवरो सुन्दर चाप चढावो कोउ चारी ॥  
 इहि विधि कुंवरि कह्यो जो तिन सौ अस जो भूप विहावा ।  
 राजकुंवरि वर्यो सीवरी कोउ दूधभी चाजे हरये हैं जनक भुवाला ॥३६॥  
 सब मैथुलपुरराजजू जो कह्यो रिपवर सौ जाम ।  
 अबधेमुर भूपाल वौ सीजे बेगि बुलाय ॥  
 मुनिवर कह्यो जनक सौ इहि विधि कीजे बेगि उपाई ।  
 रूप रिपवर की आग्या पाई पाती लिपी है बनाई ॥  
 स्वस्ति स्वस्ति रघुकुल के मडन श्री कोसलपुर राई ।  
 दोउ कुंवरन कौ नगि ले भूपति आवौ जान बनाई ॥३७॥  
 पत्री लिपी है सनेह की जू बोयो रूप दूत पठाय ।  
 बाल्यो दून उतावली जू अबधि पहुँची आय ॥  
 पत्री आय भूप दशरथ कौ दीनी सीम नवाई ।  
 बाँधी हरषि नेह लगि हित सौ श्री अबधेमुर राई ।  
 कौसल्यादि भात मुन हरपी पत्री जनक पठाई ।  
 हरये फिरत सकल पुरवासी राम सपन मुधि आई ॥३८॥

बाजत अवधि बघावनी जू भूपति दशरथ द्वार ।  
 हाटक मणि गण दूत की जू राणिन दीर्घ हार ॥  
 पुर के तरुन जठर नर-नारी मन अनमोद न भावै ।  
 मंगलचारु व्याह को ग्रह ग्रह बाजत अवध बघावै ॥  
 सजी बढ जान सुहावै अवधिपति सोभा बरनी न जाई ।  
 हय पय गय रथ विविधि भाति के चतुरंग सेन बनाई ॥४१॥  
 बढ गँवर रथ राजई जू सजी नृप जान सुहाई ।  
 हय दल पय दल धूमराजू लागत परम सुहाई ।  
 घुजा पताका फरहरे छवि सौ परत निसाना घाई ।  
 इहि विधि रघुकुल मदन भूपति मिथुला पहुँचे आई ॥  
 हरपे फिरत जनकपुर वासी सजहि समगल साजा ।  
 बढ मंगल यौ मिथुलापुर में बाजे मंगल बाजा ॥४२॥  
 सोहेली अवधेस के जू आये मैथुलपुर राय ।  
 गज सिंघू रथ राजई जू बहु विधि साज बनाय ॥  
 पुरजन सगि भुरजन मिलि आये दरसन हेत सुभाई ।  
 बाजे विविधि बजावाहि गायक नटी अस नृतत चाई ॥  
 सोहेले अवधेसुरजी वै श्री मिथिलापुर आये ।  
 परम उछाह सदन सोभा जुत तहा बिधि सौ पथराये ॥४३॥  
 रिपवर कौ अवधेस जू मिले हैं अति हित लाय ।  
 रिपवर दोई राजई जू मेले भूप दशरथ पाय ॥  
 पदबदे मृनिवर के भूपति बेर बेर सिर पाय ।  
 राम सपन दोउ साझिले तीनी उर सौ लाय ॥  
 दोउ कर जोरि भूप रिपवर की कीनी बहुत बढाई ।  
 नेह सगाई जनकराज की तुम किरपा सौ पाई ॥४४॥  
 मिथिलापुर मंगल भये जू हरमे सब नर नारी ।  
 योयो बगर चौहटा जू राये है सबन सुपारी ॥  
 धामीवर गच चित्र लेपना चौक पूरे सुत वारी ।  
 रगरमा सुक बेकि कोकिला चित्र हैं निकर सँवारी ॥  
 भूपति भवन जगमगे जटि सोभा बनी अस भारी ।  
 तोरण मणिगण जटित बनक के राये हैं गोपुर धारी ॥४५॥  
 तोरण चले है सलाहिले जू रघुवर राजकुमार ।  
 रतन जटित सिर सेहरा जू हीरा मोती सुबस सार ॥



पहरे कुवर केसरया जामा उर मोतीयन के हारा ।  
 अस्व आरोहन दसरथ नदन जान बनी इकसारा ॥  
 मगल कलस सीस धरि भामनि नीराजनै आई ।  
 तिहि ओसर रघुकुल मदन पर जनहरीयो बलि जाई ॥४६॥  
 कुवरन को बरे आरत्यों जू जोती जन बारोबार ।  
 भामिनि चढि चढि मालिया जू गारें मगलाचार ॥  
 जलसुत कुवरन उपरें जू सुदरि मनु बरपे जल धारा ।  
 घुन्दारक पे निरपि हरपैकें बरपत कुसम अपारा ॥  
 तोरन बांधि विपुल सोभा सौ फिरि जनवासैं आये ।  
 जनकराय बड सोधि महरत चार्यों कुवर बुलाये ॥४७॥  
 चौरी बडे हंसि लाडिले जू बैठे मडप तर जाय ।  
 धसिष्ठ मुनि विस्वामित्रजू जी सतानद बैठे हैं आय ।  
 अवधेसुर मिथलेसुर दोऊ सीने भूप बुलाई ।  
 कुवरन बावें बोर वेद विध लाइ कुंवरि पधराई ॥  
 अतुलत छवि धरि कुंवर लाडिले बैठे मडप आई ।  
 दूल्ह दुलहिन सोभा ऊपरि जनहरीयो बलि जाई ॥४८॥  
 जनकराज बड हरप जू घोये रघुवर पाय ।  
 सी जल लैं निज सीस में जू धार्यों नेह सुभाय ॥  
 फिर बोले मिथलेसुर भूपति कोमल बचन सुनाई ।  
 मैं तुम को मम कुंवरि जानकी दीनी है रघुवर राई ॥  
 जनकराज बड अमल हरप जुत कीनी बहुत बढाई ।  
 ज्यारो कुंवरि ज्यारो कुंवरन की दीनी मेथुलराई ॥४९॥  
 सीता अरपी राम की जु उरमिला अरपी सेध ।  
 श्रुतिकीरति सत्रुघन की जू माडवी भरथ बसप ॥  
 इहि विधि भूप कुंवर की करगहि कुंवरी पाणि गहायो ।  
 भव चतुरानन दुर्लभ दरसन सो बर चौरी आयो ॥  
 बरनो कहा सो ओसर को सुख भारती बरन न जाई ।  
 के जाने तिहि समय निकट जन के दोउ भूपति राई ॥५०॥  
 बसिष्ठ कहैं देयो जनक की जू धनि बड भाग विध्यात ।  
 सीता सी निज पुत्रिका जू रघुवर से जामात ॥  
 भव चतुरानन ध्यान न आवें निगमहु अगम बतायो ।  
 अकल अपार अनोह अगोचर सो बर चौरी आयो ॥

नीरस जानी लहे न मुपने तपसी तप करि हारे ।  
 जनकराज निज कर पद घोये, तोय सुसीतल धारे ॥५१॥  
 वसन गांठि रियराजजू जी दीनी है विधि सोबनाय ।  
 पाणिग्रहण कीने घरनपरजू लागत परम मुहाय ॥  
 कनक कलस बिचि राख्यो विधि सौ मुनीयन चौक पुराई ।  
 साकलिसमिध भग्या तिरुं मुनि कीनों हो मछु आई ॥  
 वेद रीति करि मुनिवर हित सौ पाणिग्रहण करवायो ।  
 जातवेद कीयो जुगत मज करि केरा कु कुंवर उठाये ॥५२॥  
 दुलहिन सग लेत भावरि जू दूलह राजकुंवार ।  
 बहु विप्रन को सग लीये जू करे मुनि वेद उधार ॥  
 अटनि क्षरोपा नवल मामिनी गावैं भगलघारा ।  
 हास्य करे नवछावरि मणिगण मुक्ता वारीवारा ॥  
 वेद रीति करि दई भावरी फिरि आसन बैठाए ।  
 भई हृषलेवी छोहन बिरिया मुनिवर जनक बुलाए ॥५३॥  
 हृषलेवी बहु विधि दियो जू श्री मेघुलपुर राय ।  
 जनक कनक नग बहु दीये जू वरनि सोकासो जाय ॥  
 भूपति निरपि कुंवर कुंवरी को आनद उर न समाई ।  
 रानी हरप न मार्वें मन में वेर वेर बलि जाई ॥  
 जनकराज गड वेदरोति करि हृषलेवा ससुझाये ।  
 परनी कुंवरि मिषिलेसुर जू की अमर पट्टप कर पाये ॥५४॥  
 भूपति बोले जीव नैं जू श्री मेघुलपुर राय ।  
 धन भोला अति सोहना जू आसन दीये हैं विधाय ॥  
 चौकी अटित रतन मणि मुक्ता धरी सब आगें आय ।  
 सारी भरी है नीर सीतल सौ मोबरन धान मुहाय ॥  
 प्यारों कुंवर सहठ अवघेसुर सोभित जान सुहाई ।  
 मिषलेसुर भाठे याहि विधि धीमन बैठे आई ॥५५॥  
 निरर नृपन को सग लीये जू परोसे निरोहितराय ।  
 बहु पक्वान सगलना जू गिनीय सोहारी जाय ॥  
 भद्र भोजि अर सेह त्रि चोपि गुरचि बहु भोजि बनाई ।  
 सब पट्टेनो त्रिरोहित पति की को अस बरान सुनाई ॥  
 जनक जोराई मोगवोर बन्धो हीरजोति सुषदासा ।  
 झिनवा दोन प्रमाद बभोदा सगरी परम मुवासा ॥

मृगदारि औदारि उरद की तूरस दारि बनाई ।  
 दही चगर्ग्या जम्प्यो सरस अति चिवरा सकर मिलाई ॥५६॥  
 मुगोरी मन भावतो जू पापर चनक पतार ।  
 दहिय बटक अरु बिन दही जू सालन अगिनत ओर ॥  
 नीबूं आब अरु बेर अयाभो बहु विधि धर्यो बनाई ।  
 अदरप रुचिर अमरकद अरई बेसन भटा मुहाई ॥  
 किसमिस बाप केनि फल पारिख विविधि भाति धरे आई ।  
 भगुत फल सहतूत सेव फल कमरप अति रुचिदाई ॥  
 जनक रत्न जटि बिजना डोरें नेह न वन्यो जाई ।  
 जनक राम के नवस नेह सौ जीमत रघुकुल राई ॥५७॥  
 दूलह रामलला तोहि गारी कहा कहै दीजे हो ।  
 दूलह राम लला तुमरो रूप निरपि के जीजे हो ॥५८॥  
 दूलह राम लला तुम जबतैं इहि पुर आये हो ।  
 दूलह राम लला हम धाम काम बिसराये हो ॥५९॥  
 दूलह राम लला ये तौ धनि पितु मात तुमारे हो ।  
 दूलह राम लला सो तो समघो भये हैं हमारे हो ॥६०॥  
 दूलह राम लला तुम तपस्या करो संभारी हो ।  
 दूलह राम लला तैं चोरी चढे हमारी हो ॥६१॥  
 दूलह राम लला तुमारे मात पिता दोढ गोरे हो ।  
 दूलह राम लला तुम सावरे रूप किसोरे हो ॥६२॥  
 दूलह राम लला एक अचरिज देखत भारी हो ।  
 दूलह राम लला तुमारे वीर और उनिहारी हो ॥६३॥  
 दूलह राम लला रानी कहा पाय तुम जाये हो ।  
 दूलह राम लला भूपन के भूप कहाये हो ॥६४॥  
 दूलह राम लला कुमकुम कुल देव मनाये हो ।  
 दूलह राम लला सब देखत चाप चढाये हो ॥६५॥  
 दूलह राम लला जाकौ सकल भूप पचि हार हो ।  
 दूलह राम लला तुम पढ घड करि डारे हो ॥६६॥  
 दूलह राम लला तुम सु तु सजधाने गारी हो ।  
 दूलह राम लला सो तो सत जनन क प्यार हो ॥६७॥  
 दूलह रामलला गारी गावैं जनक पुर नारी हो ।  
 दूलह राम लला तहां जनहरीयो बलिहारी हो ॥६८॥

जीमत रघुकुल राम जू जी त्रिया गावें गारि सुहाय ।  
 सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष बरनि न जाय ॥  
 जीमत रघुकुल राम जू जी त्रिया गावें गारि सुहाय ।  
 सारद विधि सगिरे जू जी सो सुष बरनि न जाय ॥  
 समधानें जीमत रघुकुलमणि भामनि गावत गारी ।  
 भूप कुवर सुनि अति सुष पायी उपजत आनन्द भारी ॥  
 जीवैत राम जनक के मडहै नारि गारि दै गावें ।  
 दस सत बदन निगम चतुरानन सोड पार न पावें ॥  
 भई सबड ज्योनार सपूरण अचवन जनक करायो ।  
 पनवारो श्री रामलपन को जनहरीये तहाँ पायी ॥६६॥  
 दूषा भाती पेलही जू जनक सुसदन मझारि ।  
 अति मीठी मन भावती जू गावे नूतमनारि ॥  
 पेलें कुवरी कुवर सुदर बर बाढे सुष सुख धारी ।  
 निरपत भामिन मन में बेर बेर बलिहारी ॥  
 जूषा पिलावें सुदरि बहु विधि भगलचार सुगावें ।  
 दूलह दुलहनि सोभा निरपत जुवती हरष न मावें ॥७०॥  
 दूलह दशरथ लाडिले जू बैठे नृप भुवन मझारि ।  
 मथल नवल मिनि ता गरी जू भई अति भीर समारि ॥  
 डोर छुडावे भामनि हित सौं गावें रस भरि गारी ।  
 छोडे डोरि दुलहनी दूलह पुनि पुनि हरषे नारी ॥  
 भामिनि कहै हासि करि इहि विधि सेहस डोर छुटाई ।  
 सीम डोरन चित्त चोरन रघुवर तुम पे छोरिन धाई ॥७१॥  
 छोडो हो रघुकुल के राय छोडो हो सी जन मुपदाय छोडा जी दूलह डोरनु ।  
 जो नही छूटे डोरनु अपनी सब मात बुलाय अर्पनु ।  
 लाला तात बुलाय छोडो कुवर बर डोरनु ॥७२॥  
 जो नही छुटे डोरनो अपनी सब मोत बुलाय ।  
 अपस कुल देव मनाई छोडो कुवर बर डोरनु ॥७३॥  
 जो नहीं छूटे डोरनो अपनी भुवा भैन बुलाय ।  
 दूलह हो लागो दूलहनि पाय छोडी रसिकब डोरनु ॥७४॥  
 नारि सवे मिनि हरष मुं जू गावत रस भरि गारि ।  
 उर आनद सनेह सौ जू धारि धारि पीवत धारि ॥

मिथुलापुर की नारि सबे मिलि गावत रस भरि गारो ।  
 प्रेम बचन सुनि त्रिभवन नायक ईश्वरता जु विसारी ॥  
 बोले बल बल नवल भामिनी कोमल बचन उचारी ।  
 जो नही छूटे डोर लाडिले तो बोलो महतारी ॥७५॥  
 छोडो डोरसु, लाडिले जु कर कछु बल उपजाय ।  
 डोरन चित को चोरनो पू तुम पैं छोड्यो न जाय ॥  
 पहन होय सारग लाल जू ताहि तुम लेहु बढाई ।  
 कै बोली जननी कौसल्या कै बोलौ दशरथ राई ॥  
 इहि विधि हासि करे जुवती जन गावत गारि सुहाई ।  
 डोरो हसि कै दुलहनि कर सौ छोड्यो है रघुवर राई ॥७६॥  
 अरस परस छोडे डोरनो पू रघुवर जनक कुंवारि ।  
 आनद सर न समाई जू हरयो जनक की नारि ॥  
 रघुवर बदन निहारैं रानी भागि सुफल करि पायो ।  
 निकर नारि मिनिन बिल नेह सौ कांकन डोर छुहायो ॥  
 राम लखन अर भरथ सनुघन परजे-ब्यारौ भाई ।  
 नृप दसरथ के कुवरन ऊपर जनहरीयो बलि जाई ॥७७॥  
 रघुबसी दूलह लाडिले पू दुलह प्यारी बलिहारि ।  
 हरपि हरपि लीय वारना हो मिथुलापुर की नारि ॥७८॥  
 रघुबसी दुलह लाडिले हो सोभा भारी धन उनहारि ॥  
 मजुल मूरति माधुरी हो धनि इन नैन निहारि ॥७९॥  
 रघुबसी दूलह लाडिले हो दूलह थोरा धनि परवार ।  
 धनि दशरथ धनि कौसल्या हो जाये तुम राजकुमार ॥८०॥  
 धनि रिपि बांधनि जमकू जू हो जाये तुम उनके हो भाय ॥८१॥  
 मिथुलापुर की नारि सबे मिलि सभरि बचन उचारैं ।  
 अपनो भाग सरहत भामनि रघुवर बदन निहारैं ॥  
 नेह बिबस ह्वै उक्षफि क्षरोपनि प्रेम मगन भई नारी ।  
 जनहरीया दूलह रघुवर छवि पर बेरि बेरि बलहारो ॥८३॥  
 बोले है दसरथ माडहै जू श्री मेथुलपुर राय ।  
 प्यारि पिलग नग मणि जरे जू दोने मधि बिछाय ॥  
 ब्यारो कुंवर दुलहनी प्यारौ बैठे हैं छवि सौ आई ।  
 रतन जटित सिर सेहरा मोहैं मातियन खूब सुहाई ॥

वेद उक्त विधि जनक राय जू रत्नि बड रीति बनाई ।  
 रानी सग से करि गठजोरो भावरि दीनी आई ॥८५॥  
 भूपति दोनो आवजो जू सोमा बरनी न जाय ।  
 कोटि एक दासी दाईजे जू दीये रथ अनेक सजाय ॥  
 अयुत अयुत सजि दीये सुरग बड गैवर अयुत सजाई ।  
 कोटि एक दीये दास जनक जू सेवा करन मुमाई ॥  
 रिय अह जान सहन मियुनेमुर अवधेसर पहराये ।  
 करी बहुत गनुहारि परसपर बेर बेर सिर नाये ॥८६॥  
 कँवरों गवनी सासरै जू नयन चलत हित बारि ।  
 बाल बैस की सपियन सैं जू मिलत हैं बाँह पसारि ॥  
 चेतनरूपी के सग मिनि खेलन तात भुवन चुपकारी ।  
 बालवेनि मुधि आवत मन में सो नहि जात रिसारी ॥  
 कोटिक गुप हूँ जे गुगरारि में रहे सपत्ति सपेटी ।  
 तात भुवन की बाल केलि को बिसरत नाहिन बेटी ॥८७॥  
 सीता सो मिनि मेह सो जू नैना नीर बहाय ।  
 जननी सरन सनेह की जू मो पै बरनि न जाय ॥  
 गाजा बचन गुनाय कँवरी को समझावत बहु भाई ।  
 समुदा सग की सेवा कँवरी सिपयो मेह मुमाई ॥  
 भयो उदाह जनकपुर अतिसे को अम बरनि गुमाई ।  
 रहि बिधि भूति बिजय मोद सो आवे अवधि चलाई ॥  
 हरष किरत अकबिपुर बासी मन अनुमोद न भावै ।  
 गवम नारि मिनि मगल गावे मगन बनस बचवाई ॥८८॥  
 निजरि नारि चढ़ि अटनि पर जू हरषे बारीबार ।  
 जल गुन कवचन ऊरै जू मानो बरषे जनपार ॥  
 अटनि हारोवन चढ़ि भीमिनि हरषत नृगम अगार ।  
 बिपुबन्धिना ठजि मनहुँ स्त्रोम को आई करन बिहार ॥  
 बीपी बगर चौहटी भीमनि मगनपार मु गावै ।  
 भूरा मगन गावि सब गुररि भूत भवन को आवै ॥८९॥  
 भीतर भवन सिपाईजु आरौ रावकुमार ।  
 कोमला करे कारणो इ मोयी भरि कचन मार ॥  
 बसु महिज कवि गाजा ७३ ही हरषे बारी बार ।  
 रानी हरष ॥ माने मन में बाहरी हरष अगार ।

हरपि हरपि अतहपुर रानी दुलहनि बदन निहारे ।  
 हाटक हीरा मणिगण मोती बधू भुतन परि वारै ॥८६॥  
 रिपवर को अवधेस जू जी पूजे है बिधि सब नाथ ॥  
 रानी रिपवर राज कैं जू पुनि पुनि सार्ये पाय ॥  
 श्री वीसल्या रिपवर जू सौ कहति है बचन सुनाई ।  
 विद्यानिपुन कीये कुवर दोउ त्याये दुलहनि व्याही ॥  
 पद बदे मुनिवर के रानी बेर बेर सिर नाई ।  
 हीरा मोती कनक घाल भरि पूजेहैं रिपवर राई ॥८७॥  
 काँकनढोर दुलाबहो जू श्री रग मंदिर जाय ।  
 व्यारो कुवरिन रगराज जू बदे हैं सिर नाथ ॥  
 छोडो डोर कुवर व्यारो ही श्री रगमंदिर जाय ।  
 मोतीयन चौक पुराये रानी पुनि पुनि मगल गाय ॥  
 काकन डोरि छोडि रगमंदिर भीतर भवन सिंघाये ।  
 हरप्यौ फिरत तहाँ जनहरीयो बाजत अवधि बघाये ॥८८॥  
 बाजत अवधि बघावना जू भूपति दसरथ द्वारि ।  
 घर घर मगल बघावना जू मगल गार्ये नारि ॥  
 मागध सूत भाट बंदोजन बोलत करि कै वारी ।  
 दान मान दीये भूप सधन की दीनैं कवन भारी ॥  
 मंगलवर व्याह रघुवर को सत जनन सुपदाई ।  
 मति अनुसार कथ्यौ जनहरीयो श्री गुर को सिरनाई ॥८९॥

॥ इति पौये रामायणे महा मुक्ति मारये सीताराम  
 विवाह सम्पूर्ण ॥<sup>१</sup>

### (३) राग ललित

राजत अवधेस लाल कज बदन तिलक भाल ।  
 अक्षुण्णबुज अलि विसाल अदनुत छवि छाई ॥ टेक ॥  
 नासा नग बनि सुदेस सोमिज सिरि कुटलकेस ।  
 जलज निकट निकर भधुप अवली मनु आई ॥१॥

नव धन तन दुनि विसाल मुक्ता उर ससत माव ।  
 सुत्री कटि तटि रसाल रुण झुण चलि जाई ॥२॥  
 देपत जब भूप नारि तन मन धन देत वारि ।  
 अतिसे सिसु केलि राम सुपन वरणो जाई ॥३॥<sup>१</sup>

## (४) राग स्रहो

मानकुल दीपग छत्रीले रगीले रघुनदन ।  
 ध्यान धरि निस दिवस असो कटै भव दुप फदन ॥१॥  
 चरननप अगुरिनि मिलियो दुहन की सोमा बनी ।  
 भानु प्रफुलित कवल परि उगैहैं दस रजनी बनी ॥२॥  
 पीन जान सुचार अनुपम ससत अदभुत घोवसी ।  
 कटिमूत्र कटिपट पीत कटि किकनी मन को मोहसी ॥३॥  
 बाहुबन्ध जराय के पहुँचैं रतन पौँची भली ।  
 अस्त दोय अँगुरिनि अँगूठी यौ भान की दुति दलमसी ॥४॥  
 भणिहार मुक्ताहार सुंदर स्याम अग परि राजई ।  
 मानु नवधन मैं सरस तारन की पाति सभ्राजई ॥५॥  
 बबु कडर अरन अघर सुनासिका अपीयाँ बडी ।  
 मनमथ मन मय को करत भौंहे कसी भ्रुटी चडी ॥६॥  
 यवनन मैं बुझस लपि ललित छवि मेन की सुकची जीए ।  
 अनिकन वी हलकनि शीव चलनि सुपौ वारि केसरि की कीए ॥७॥  
 सिरि मुकट अग सुवाम राजत जनकी की सुंदर ससी ।  
 मातु हरीव कैय कटि बैठा कवल की अदभुत कनी ॥८॥  
 चलि सुपय तजि कै विपै भजि ऐसे रामगुपाल की ।  
 मन बच क्रम करि प्रीतिनिदि हरीया मखी प्रतपान की ॥९॥<sup>२</sup>

## (५) धरणादास

ये अप्रदास जी व शिष्य विनोदी जी अथवा विनोद स्वामी के पोत्र शिष्य थे । अब तक इनका कोई छन्द प्रकाश में नहीं आया था । 'पदमुक्तावली' में पहली बार इनका एक पद देखने में आया है जिसमें प्रातः समय की उत्थापन आरती का वर्णन है—

१. यही, पद सख्या ६३

२. पदमुक्तावली : पद सख्या ६६ ।



### राग भैरव

आमीए श्री राम नृपति चुडामनी,  
 रिब कीपी आगम निसि बिहानी ॥टेक॥  
 सूत भाग बन्दीजन ऐ करें आसिपा ।  
 नीति अधिचल रहौ राजघ्यानी ॥टेक॥  
 केऊ सपी कर कनक क्षारी लाए सुगध,  
 कोऊ वासीद सीए सरखु पानी ।  
 केऊ सपी विवध के देत सोय सीए,  
 कोऊ अदख सीए खरी सयानी ॥१॥  
 जुग सपी छात्र लाये, कोऊ सपी धवर सीए,  
 कोऊ मिलि जुगल के बसन आनी ।  
 केऊ सपी मधुर सुर राग पधम करें,  
 सपत सुखानि सीऐ सुलप बैनी ॥२॥  
 श्री जनक नदनी जी कैँ अवननि धुनि परी,  
 जागि परि पिलग तैं द्रग पृसाती ॥  
 मानु एह कवल मुदित भए रैन के,  
 मित्र की बात सुनि फूल फुलानी ॥३॥  
 अधिवासी सबे दरस की तरस करे,  
 दुवारि ठाढ़े कहै गुन कहानी ।  
 आमीए श्री धीर रघुवीर करनामई,  
 दास दासी परे चरन आनी ॥४॥

### (४) बाल अली

इनका व्यावहारिक नाम बालकृष्ण नामक था—बालअली इनके साधन देह की सजा थी । ये अग्रदास जी की पाँचवी पीढ़ी में आते हैं । 'ध्यान मञ्जरी' की रचना स० १७२६ में हुई । अतः यही उनका उपस्थितिकाल माना जा सकता है । इनकी ८ रचनाओं का पता लगा है । उनमें 'नेह प्रकाश' तथा 'सिद्धान्त तत्व दापिका' विशेष महत्व की हैं । 'पदमुक्तावली' में इनके दो पद संकलित हैं । एक में आराध्यपुगल की प्रातःकालीन शोभा का वर्णन है और दूसरे में प्रिया प्रियतम की परस्पर आसक्ति का चित्रण है—

१. पदमुक्तावली, छन्द सख्या ६५ ।

२. वही, छन्द सख्या ८६ ।

(१) प्रातः समे रघुनन्दन की छवि देपि सषी अपने भरि नैन ।  
 आलस भरे जो भाति उनीदे बोलत हैं कछु अटपटे नैन ॥टेक॥  
 वामे अग श्री जनक नन्दनी बसन मरगजे भरे छवि अैन ।  
 नेह भरे मुसकात परसपरि बालबली हीए अति सुप दैन ॥  
 (२) भोरे ही रंग भरे दोऊ धागे ।

रग महल में श्री जनकनन्दनी रघुवर अति अनुरागे ॥ टेक॥

आलस भरे जु भाति उनीदे अरन नैन रस पागे ।

बालबली प्रभु रस बसि कीन्हे जैसे कनक सुहाने ।<sup>१</sup>

इन प्रसिद्ध रामभक्तों के अतिरिक्त उक्त संग्रह में अन्य साधकों के भी पद संकलित हैं । ये हैं—कवलानन्द (२, २५), बीठलदास (३०, ५५), गोकुलदास (५४), ब्रजपुरी (७४), विजैराम (७६), (७६), सधुनेसब (६८) और लाल गुलाम (६७, ६८) ।

नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

## (१) कवलानन्द

भक्तमाल तथा अन्य भक्त चरितों में इस नाम के किसी रामभक्त कवि का उल्लेख नहीं मिलता । नामप्रदायिक परम्पराओं में स्वामी रामानन्द के शिष्य सुरसुरानन्द के एक शिष्य कवलानन्द का नाम आता है ।<sup>२</sup> ये कवलानन्द जी की गद्दी (जमपुर) के पूर्वाचार्यों में हैं । निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पद-मुक्तावली में प्राप्त पद इन्हीं का है या कवलानन्द नामधारी किसी अन्य सत का । ये रामभक्त थे यह निम्नांकित दोनों पदों के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से माना जा सकता है—

( १ )

राग आसावरी

नौमी के दिन नौवति बाजे मुत बोलत्या जामो रो ।

मान घडी दिन बीनि गयो सब सबियन मगल गायोरो ॥टेक॥

सबै बुनाय सोघना कीनी अपे भडार सुटायो रो ।

घडीक सोधि निगम यो भाप्यो रामचन्द्र ग्रह आयो रो ॥टेक॥

कचन के बहो कलस बघाये मोतिन चीक पुराये री ।  
 दसरथ मन आनंद भयो कोइ रघुबसी ग्रह आये री ॥ २ ॥  
 घर घर की सब बधू बुलाई भगल गावति आई री ।  
 राइ आंगन बिधि डारि दुलीचो आदर करि बैठाई री ॥ ३ ॥  
 कप्यो सिंधु कागरा पडिया आगम अगम जनायो री ।  
 सोच पड़्यो सबही लका कोई राज विग्रह आयो री ॥ ४ ॥  
 दसरथ उठि भंडार पधारे साढी सुरग भगाई री ।  
 जो जाके मन हुती कामना सो ताको पहराई री ॥ ५ ॥  
 पाट पटवरया सारूना त्रिय जाके मन भावै री ।  
 कवलानन्द कहाँ लौ बरनों तीन लोक जस गावै री ॥ ६ ॥<sup>१</sup>

( २ )

## राग बिलावल

करौ कलेउ प्राप्त ही मिलि ज्यारौ मईया ॥ टेक ॥  
 दधि मेवा लाडू मोद सौं ले आई मईया ।  
 ये पीवो प्रभु कल्याण के मयि लीनो घईया ॥ १ ॥  
 बान बनिया कित घरी दे दे री मईया ।  
 तेरी सौं अगना पेनि हैं हम ज्यारी मईया ॥ टेक ॥  
 कानि दूर ताने गये सब सखा बुझईया ।  
 दोय बान पोए हुते सरजू तटि पईया ॥ १ ॥  
 रुचिर बाग बैसक बनी जगे फल बिछईया ।  
 नाना बिधि के पछी बोलिहै खनीक सुहईया ॥ २ ॥  
 नीर निकट नाहिन गये दाउ की सो ही री ।  
 कवलानन भरथ दुमाय के जोही झूठ कहाँ री ॥ ३ ॥<sup>२</sup>

## (२) बीठलदास

जाति के रैदास (चमार) होने हुए भी इनकी गणना श्री सम्प्रदाय के विशिष्ट रामभक्तों में की जाती है । ये बड़े ही विरक्त एवं स्वाभिमानों महात्मा थे । सत्संग एवं इनका सतसेवा व्रत था । उसके लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी किन्तु

१ पदमुक्तावली, छंद सख्या २ ।

२ वही, छंद सख्या २२ ।

भगवान की वृषा से उसमें कभी बाधा नहीं पड़ी। सासारिक वैभव इन्हें कभी आवृष्ट नहीं कर सका। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी घमडी सेठ को इन्होंने फटकार दिया था। पहले वह नियमित रूप से इनकी सहायता करता था किन्तु उस घटना के बाद होने वाले वार्षिक महोत्सव में उसने हाथ खींच लिया। कहा जाता है कि उत्सव के निकट आने पर स्वयं भगवान ने एक वैश्य के रूप में आकर तीन सौ अर्शफियाँ उक्त कार्य के लिए समर्पित की। सेठ ने जब इस घटना की चर्चा मुनी तो पानी पानी हो गया। उसने आकर क्षमायाचना की। नाभादास के अनुसार बीठलदास जी ने अपना शरीरत्याग आराध्य की सीला विषयक पद गाते हुए किया था।<sup>१</sup> इससे उनका कवि होना स्वतः सिद्ध है। इस नाम के किसी अन्य रामभक्त का अब तक पता नहीं चला है, अतः नीचे लिखे पद को इनकी रचना मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती—

भोजन करो सीताराम ।

सावग्राही भावग्राही प्रीतिग्राही राम ॥ टेक ॥

दधिन दिसि आनद करि सोहैं जनक सुता अभिराम ।

पवन सुत सनमुख विराजत रटत नित नौ नाम ॥१॥

प्यार विधि के अच्छे भोजन सेत रुचि सुचि स्याम ।

भेलि मिथी पटुप छीवरि मेर दाप विदाम ॥२॥

भक्ति हेत आरोग्ये प्रभु सकल पूरन काम ।

दास बीठल दरस पावैं करन परमनिधाम ॥३॥

### (३) गोकुलदास

इनके स्मृतिकाल तथा जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। रामभक्तों की परम्पराओं में भी इन नाम के किसी कवि का उल्लेख नहीं

१. आदि अंत निर्याह भक्त पद रज ब्रत जारी ।

रहतो जगत सो ऐंड सुच्छ जाने संसारो ॥

प्रभुता पति की पयति प्रगट कृत बोध प्रकासो ।

महत सभा में मान जगत जानें रंदासो ।

पद पड़त भई परलोक गति गुद गोविंदु जुग फल बिया ।

बीठलदास हरिभक्ति के ब्रह्म हाथ साइ लिया ।

—धोभक्तमाल, छप्पय सं० १७७, पृ० ८६४.

२. पदमुक्तावली, छंद संख्या ३०.

७४ : रामकाव्यधारा—अनुसधान एवं अनुचितन

मिलता । प्रस्तुत हस्तलेख मे इनका एक पद सप्रहीत है, जिसमें रामचन्द्र जी के व्यालू अथवा भोजन करने का वर्णन है—

॥ राग विहागढो ॥

रघुवर सुपनिधि करत विचारी ।

मधु मेवा पकवान सरस रम प्रेम महिन पुरखत महतारी ॥ टेव ॥

गूसा लाह उज्जल पैनी पुरी सुपपुरी पूवा सुहारी ।

धेवर पापर तप्त जनेबी मिथी सीरा सरस सवारी ॥

सूरत आव करौंदो सीवन आदो नीवू अति रुचिकारी ।

औटथी घट्यो ले आगे पीवो मेरे सान जननी जाय वारी ॥ २ ॥

अति सुगंध सरजू जल सीतल रतन जटिन भरि स्याई क्षारी ।

भोजन पाय करी प्यारे अचवन राजीव नैन मैन बनिहारी ॥ ३ ॥

बीरी देत सीमाजू कर अपने गिरी कपूरर लौंग सुपारी ।

गोकलदास आस इम ठाढो पावै जूठि रह्यो कछु वारी ॥ ४ ॥<sup>१</sup>

## (४) ब्रजपुरी

इनके सम्बन्ध मे भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है । प्रस्तुत हस्तलेख मे सप्रहीत पद से केवल इतना विदित होता है कि ये रामोपासक थे—

जीभ तेरे मुख माहि परच कछु सागै नाहि,

राम राम लेत तेरो कहा जु घटत है ।

साच झूठ आठी आम बोलत फिरै निकाम,

हरि के भजन मैं कहा आवस करत है ।

जोसो घट माहि जीव नारी कहै मेरी पीव,

मात तात बेटा बेटा आनि सपटत है ।

अतकाल भयो आय तव कोउ न करे सहाय,

कहै ब्रजपुरी सो बटाउ अल्यो जान है ॥<sup>२</sup>

## (५) बिजैराम

इनका कोई लौकिक वृत्त ज्ञात नहीं है । हस्तलेख मे सप्रहीत पद का प्रतिपाद्य है भवसागर मे ह्वते हुए जीव का अपने अशो राम को पहचान के लिए उद्बोधन—

१. पद्य मुक्तावली, छंद सख्या ५४,

२. वही, छंद सख्या ७४

देह कौं आनि जुरा जकरी सकरी पकरी सोहू राम न जान्यो ।  
 बालपनीं पोयो प्याल ही प्याल मे जोबन जोर तिया रति भान्यो ॥  
 स्याही गई सिर आये हैं सेत अचेत भयो गुर ग्यान न जान्यो ।  
 बूझत है भवसागर भाञ्ज कहै 'बिजैराम' धनी न पिछान्यो ॥४॥<sup>१</sup>

## (६) लघुकेसव

केशव नामधारी पाँच भक्तों का भक्तमालकार ने उल्लेख किया है—केशव-  
 भट्ट, केशव, केसरी, केशव जी लटेरा और केशव जी दहौती । इनमें से प्रथम तथा  
 अन्तिम कृष्ण भक्त थे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ रामभक्त । दूसरे केशव राम-  
 चन्द्रिका के रचयिता थे, तीसरे केशव (सम्भवतः) रामभक्ति शास्त्र के स्यानधारी  
 सत थे, और चौथे केशव रामानंद जी के शिष्य सुरमुरानंद की परंपरा के थे ।  
 हस्तलेख में 'लघु' शब्द प्रसिद्ध (बड़े) केशवदास से प्रस्तुत पद के रचयिता की  
 विभिन्नता दिखाने के लिए प्रयुक्त हुआ है । मेरा अनुमान है कि हस्तलेख में उद्धृत  
 पद इनमें से तीसरे या चौथे का हो सकता है । इसमें निरूपित सध्य रचयिता  
 की शृंगारी रामभक्ति के द्योतक है—

धवना न सुगयी रसना न गुन्यो, नही ध्यान धरी न नच्यी हरि आनै ।  
 भरधा न करी भरचा न करी, सुभरो नही राम हिरदै अनुरामै ॥  
 तन मन अरपि न दास भयो हरि भक्ति के हेति जग्यो नही जागे ।  
 लघु केसो कहै जम दोस कहा, नवधा मधि एक गही न अबाने ॥<sup>२</sup>

## (७) लाल गुलाम

रामभक्तों के चरितसंग्रहों तथा साम्प्रदायिक परम्पराओं में यह नाम अपरि-  
 चित हैं । हस्तलेख में संकलित पद से मात्र इतना पता चलता है कि उसका रच-  
 यिता रामोपासकों की माधुर्य धारा से सम्बद्ध है—

राग पञ्चम

आये राजरवि भग्वि सपी कुँवर मनभावतो,  
 आवते देवि हिवरी सिरानों ।  
 मेरे मनि आनि सपी बात ऐसी ठनी,  
 ये ही वर सोया के निधि ही वांनो ॥ टेक ॥

१. पद मुद्रतावली, छंद संह्या ७६

२. यही, छंद संह्या ६८

विवधि भूषन कीये मुकति माला हीये,  
 निलक की क्रान्ति बरनी न जाई ।  
 वाम कर धनक कटि माथ सोमो दीये,  
 दाहिने कर सर सोमा सुहाई ॥ १ ॥  
 ताडिका भारि सुबाहु बल जोति के,  
 अमुर सघारि जग पूर कीन्हों ।  
 चरन की रेनिका अहल्या उघारि,  
 झोवर कूल रयारि पुर गवन कीन्हों ॥ २ ॥  
 राय समझाय अब ही कहौ आय के,  
 धनक पन छाडि सीया बरही आए ।  
 आगिलै वनमि एह पुत्रि तीवर कीयो,  
 ताहि परताप अैसे कुँवर पाए ॥ ३ ॥  
 सबन के मन ही की आनि सारनवर,  
 तनक ही तानि धनु तोरि डारौ ।  
 बडे बडे भूप सावत अति महावली,  
 सिंघ ललकारि भग मान भारौ ॥ ४ ॥  
 निम कुल जुवति नर नारि आनद में,  
 सुनत एह बात भगल उचारै ।  
 लाल गुलाम अब सत की सरन गहि,  
 चरन की रति लहे प्राण वारे ॥ ५ ॥

देवि री देवि कुँवर सुन्दर दोऊ,  
 नृप के जग में आनि ठाढे ।  
 कोटि करप की होन दुति करत ही,  
 अनिहि छवि रूप मुनवत गाढे ॥ टेक ॥  
 पीत पट दामनी दमक लज्जा करत,  
 जरकसी पाष सिरि अति सुहाई ।  
 अटनि चडि आयनी नैन मधुपान करि,  
 साँवरे - गवर हिरदै बसाई ॥ १ ॥  
 एहु कुँवर लाडिलो होय जो कुँवरि को,  
 सब करे गवरि स्यों विनय भारी ।

जब ही मनि आनिहै सुफल कति जानिहै,  
 होय वर एह आनन्दकारी ॥ २ ॥  
 नग्न की नारि मन माहि कलपन करै,  
 एह कर सम ही धनव भारी ।  
 कुँवर महाराज सब अस हरि नृपन कौ  
 मुनि गहै रहै अति बलाकारी ॥ ३ ॥  
 जनक नृप देवि रघुवीर कू मन ही में,  
 कहा बपरोत मन मैं ज कोन्हों ।  
 मनही कों व्याहिहों सुजस जुग पायहों,  
 अवनिपति यों कहैं पसट कोन्हों ॥ ४ ॥  
 राम सब नृप्यन सु बोलि एह बात कह  
 धनक कोऊ तोरो एह आत दीन्हो ।  
 मनही सग जाय कैं अवनि सिर नामके,  
 अजुली के वारि ज्यों गवन कोन्हो ॥ ५ ॥  
 निमकुलवस की अवनि के नृपन की,  
 धनक सब लाज ले ग्रस्व धारो ।  
 साँवरो कुँवर सिर नाम रिपराज कौ,  
 गहे चग्न चापि धनु तोरि डारों ॥ ६ ॥  
 पुसप वरपन लगे देव दुंदमी बजे,  
 मगला सब ही मिलि गीत गावे ।  
 साल गुलाम अब सत की सरन गहि,  
 दास धरि अवधिपुर सुजस गावे ॥ ७ ॥<sup>१</sup>



## स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली

रसिक रामभक्तों के आद्याचार्य अग्रदास का आदिर्भाव स्वामी रामानंद की चौपी पीड़ी में हुआ था। ये राजस्थान में वैष्णवों के प्रथम पीठ, गलता के सरपा-पक श्रीगृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इनके आरम्भिक जीवन के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के किसी गाँव में १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। पयहारी जी के संपर्क में ये बाल्यकाल में ही आ गए थे। बड़े गुरुभाई कीन्हदास के साथ गनवा में बहुत दिनों तक निवास करके गुरु के परसोकवास के अनंतर ये अपने प्रिय शिष्य नाभादास के साथ रेवासा चले गए और वहीं अपनी गद्दी स्थापित की।<sup>१</sup>

१. रसबोध बिभुल आनंदधन अग्रस्वामि धानी बिसर ।

अक्षर यह अनुप्रास मधुरता बाल्मीकि सम ।

आसय गुरु उपाय शक्ति रसिकन की संगम ।

रंघासे जानकीवल्लभी रहसि उपासी ।

ललितरसाधय रंगमहल बसकुंज खवासी ।

आचारज रसरास पथ रसिकबर्ज रसिकन सुखर ।

रसबोध बिभुल आनंदधन अग्रस्वामि धानी बिसर ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

२. कोई देसकाल जानि कोल जू की आजा मानि,

शिष्यन समेत धो रंघासे स्वामी आए हैं ।

तहाँ रमनीय जल भूमि द्रुम सता देखि,

मंदिर बनाय लली लास पधराए हैं ।

दिनय विवेक सुम सोल दया नेह नेह,

नामा जो को देखि संत सेवा में लपाए हैं ।

नामादास ने गुरुदेव करते हुए अपना सारा जीवन यही व्यतीत किया। इसी स्थान पर आचार्यचरणों से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने अपने लोकप्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्त-माल' की रचना की थी।

नामादास ने अन्य सतों की भाँति अपने गुरु अग्रदास के भी लौकिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। 'भक्तमाल' से इतना ही विदित होता है कि वे एक उच्चकोटि के आचारनिष्ठ सत थे और अर्हनिष्ठ इष्टदेव सीताराम की आराधना में लीन रहते थे। बाटिका से उन्हें बड़ा प्रेम था। अपने रैवासा स्थित आश्रम से सलग्न भूमि में उन्होंने 'प्रसिद्ध बाग' नाम की एक फुलवारी लगा रखी थी, जिसका सारा कार्य वे अपने ही हाथों से करते थे। बाटिका में काम करते समय भी उनका नामजप अखंड रूप से चलता रहता था। आचार्य श्रीकृष्णदास पयहारी की कृपा से उन्हें अबिरल रामभक्ति का वरदान मिला था। इस प्रकार अपने जीवन का एक भी क्षण अग्रदास जी ने आराध्य भुगल के ध्यान तथा उपासना बिना नष्ट नहीं होने दिया।<sup>१</sup>

प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में अग्रदास के जीवन से सबद कुछ नए तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने आमेरनरेश मानसिंह के स्वामी जी के दर्शनार्थ रैवासा जाने की शर्चा करते हुए लिखा है कि जिस समय महाराज उस आश्रम पर पहुँचे स्वामी जी बाटिका में थे। यह समाचार पाकर मानसिंह अपने सेवकों तथा सान्निध्यियों को बाहर ठहरने की आज्ञा देकर स्वयं बाग के भीतर चले गए। इसके घोड़ी ही देर बाद स्वामी जी बाटिका में पड़े हुए सूखे पत्तों को फेंकने के लिये बाहर निकले। द्वार पर अपरिचित लोगो की भीड़ देखकर वे वही एक आम के पेड़ के नीचे बैठ गए। उधर बाटिका में बहुत देर तक अग्रदास जी के लौटने की प्रतीक्षा करने के बाद मानसिंह भी बाहर चले आए। द्वार पर आचार्यचरणों का साक्षात्कार कर वे कृतकृत्य हो गए।<sup>२</sup> रैवानरेश रघुराजसिंह ने अग्रदास और मानसिंह में गुरुशिष्य का संबंध बताया है और मानसिंह की गणना अग्रदास के अत्यंत प्रिय शिष्यों में की है।<sup>३</sup> संभवतः यह सूचना उन्हें जयपुर दरबार से

आपु सो कियो उपाय काल भृषा न बिताय,

गष्टमास सेवा की रहस्य मन साए हैं ॥ —वही, पृ० १६।

१. भक्तमाल (टी० रूपरसा), पृ० ३२८।

२. भी भक्तमाल सटीक (रूपरसा), पृ० ३२०।

३. मानसिंह बीपुर की राजा। सो अपनी सँ सकस समाजा।

अग्रदास गुरु आज्ञाकारी। रहे समीप चरनरज धारी ॥

अपने निजी स्रोतों द्वारा प्राप्त हुई होगी। इसके अतिरिक्त अग्रदास के सासारिक जीवन के सबंध में कोई वृत्त उपलब्ध नहीं है।

सांप्रदायिक साहित्य में इनके द्वारा प्रवर्तित रसिकसाधना का विराद विवरण मिलता है।<sup>१</sup> नाभादास ने अपनी शृंगारी रामभक्ति को इन्हीं का प्रसाद माना है<sup>२</sup> और सभीभावना में इनकी लोकोत्तर तन्मयता की मुक्तकठ से प्रशंसा की है।<sup>३</sup> इसी भावसिद्धि के कारण परवर्ती रसिक रामभक्तिसाहित्य में इन्हें चंद्रकला मंथी वा अवतार होने की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। रसिक-प्रकाश भक्तमाल के रचयिता युगलप्रिया जी ने 'मानस' के पुण्यवाटिकाप्रसंग में निर्दिष्ट सीता जी को पद्मप्रदर्शिका सखी से इनका तादात्म्य स्थापित किया है।<sup>४</sup> अग्रदास ने स्वयं अपनी कृतियों में 'अग्र अली' तथा 'अग्रसहचरी' छाप देकर

एक समय बस सहस्र सवारा । मानसिंह गुप्त लैं पयु धारा ।

अग्रदास बरसन के हेतू । गुरु बरसन किये मोदनिकेतू ॥

बस कबली फल गुरु तेहि बोनहो । सादर पदबंधन करि सोन्हो ॥

नाभा के पुनि अग्र के यहि विधि धरित अपार ।

मान महीपति के तथा, को कहि पावै पार ॥

—रामरसिकावली (रघुराजसिंह), पृ० ५७५-५० ।

महाराज रघुराजसिंह ने स्वामी अग्रदास को गलता की गद्दी का आचार्य बताया है। किंतु साम्प्रदायिक परंपरा के अनुसार गलतागद्दी पर श्रीकृष्णदासजी पंहारी के बाद कीलदास जी बैठे थे। ये अग्रदास के बड़े गुरुभाई थे। अग्रदास की गद्दी जयपुर के समीप ही रंथासा में स्थापित हुई थी।

१. आचारज रसरासपथ, रसिकवर्ज रसिकज सुखद ।

रसबोध विपुस आनंदधन, अग्रस्वामि धानी विसद ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

२. श्री अग्रदेव कदना करी, सियपद नेह बढ़ाया ।

'नाभा' मन आनद भो, महल टहल नित पाथ ॥

—अष्टकांतचरित (नाभादास, पत्र ४२) ।

३. श्री कृष्णदास गुडकृपा ते नित नव नेह नवीन ।

अग्र सुमति सियसहचरी जुगल रूप रस लीन ॥

वही ।

४. अग्रस्वामि श्री अग्रसहचरी जनकलली की ।

पुण्यवाटिका मिलन हेतु प्रिय भांति भली की ॥

प्रकारांतर से इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे सीताराम की माधुर्यलीलाओं के उपासक थे और व्यावहारिक रूप में राम के प्रति दास्यनिष्ठा रखते हुए भी उनकी अंतरंग साधना शृंगारी भाव की थी। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'ध्यानमंजरी' शताब्दियों से रसिकसाधकों की गीता मानी जाती है।

अग्रदास जैसे उन्वकोटि के साधक थे वैसे ही असाधारण प्रतिभासंपन्न सांप्रदायिक संगठनकर्ता भी। उत्तरी भारत में रामोपासकों की अधिकांश गहिर्यां उन्ही के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित की गई हैं। अयोध्या, चित्रकूट और मिथिला के अनेक प्रमुख पीठ इन्हीं की परंपरा से संबद्ध हैं। इनके सत्परिवार के विस्तार का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वैष्णवों के ५२ द्वारों में ११ द्वारे अकेले उन्ही के हैं। इनकी शाखा नामादास, बाल अली, देवमुरारि, पूर्ण बैराठी, दिवाकर, हनुमान हठीले, भगवन्नारायण, प्रयागदास जगी, बिंदुकाचार्य रामप्रसाद, रसिकाचार्य रामचरणदास, रसिक अली तथा रघुनाथदास जैसे तपस्वी एवं लोकसंग्रही महात्माओं से विभूषित है।<sup>१</sup>

अग्रदास की महत्ता का सबसे बड़ा कारण है रामोपासना में शृंगारिता को प्रथम देते हुए भी आदि से अंत तक सदाचारनिष्ठा के सम्पक् निर्वाह की व्यवस्था करना। क्रियाप्रधान बहिरंग पूजा को अपेक्षा ध्यानप्रधान अंतरंग व्ययवा मानसी सेवा को अधिक महत्त्व देकर उन्होंने उसे कालांतर में दूषित प्रवृत्तियों का शिकार होने से बचा लिया। शृंगारी रामभक्ति के लोकप्रचार का निषेध तथा विशिष्ट भावसंपन्न सात्विक साधका को ही उसका अधिकारी घोषित करते समय उनके मन में कदाचित् यही भावना काम कर रही थी—

रस शृंगार अनूप है तुलबे को कोउ नाहि ।  
तुलबे को कोउ नाहि सोई अधिकारी जग मैं ।  
कचन कामिनि देखि हलाहल जागत जन मैं ॥  
भावत जग के भोग रोग सम रयागेउ द्रव ।  
पिय प्यारी रससिंधु भगन निठ रहत अनदा ॥

धद्रक्ता प्रिय नाम स्याम सिय बस करि राखी ।

प्रगटि स्वामिपद सहो ध्यान रस मन मन चाखी ॥

रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

१. विशेष विवरण ॥ लिये देखिए 'रामभक्ति में रसिस्तप्रवाह' के अंतर्गत 'रामभक्ति में रसिकसाधना का विकास' तथा 'परंपरा और तिलक' शीर्षक अध्याय ।

नहीं 'अग्र' अस सत के सरि लायक जग माहि ।

रस सिंगार अनूप है तुलने को फोड़ नाहि ॥

अब तक खोज में इनके द्वारा विरचित केवल चार ग्रन्थ उपलब्ध हो सके हैं—ध्यानमजरी अथवा रामध्यानमजरी, कुडलिया अथवा हितोपदेश उपपाण-बावनी, रामाष्टयाम और रामज्योनार । इसके अतिरिक्त सांप्रदायिक ग्रन्थों में अग्रदास की दो अन्य रृतियों का भी उल्लेख मिलता है । ये हैं—अग्रसागर अथवा शृंगार-सागर तथा पदावली । इनमें से प्रथम तो अब केवल नामशेष रह गई है । बहुत खोज करने पर भी उसकी किसी प्रति का पता नहीं लग सका । किंतु दूसरी रचना का एक हस्तलेख इन पत्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है ।

तुलसी के पूर्ववर्ती रामभक्तिसाहित्य में अग्रदास की इस 'पदावली' का विशेष महत्त्व है । इसमें कुल ५१ पद संकलित हैं जिनमें एक (पद सं० १०) नाभादास का है ।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त लेखक के निजी सग्रह में अग्रदासविरचित सात पद अन्य स्रोतों से संगृहीत हैं । उन्हें लेकर अग्रदास के पदों की सम्पूर्ण संख्या ५७ हो जाती है । ये सभी 'अग्र' छाप से युक्त हैं । यह दूसरी बात है कि अपनी भावनानुसार उन्होंने किसी में दास्यनिष्ठापरक 'अग्रस्वामि' अथवा 'अग्र-दास' छाप रखी है और किसी में माधुर्यनिष्ठाव्यञ्जक 'अग्र अली' 'अग्रसहचरी' । यह उल्लेखनीय है कि 'अग्रदास' छाप 'अग्रअली' की भांति दास्य तथा शृंगारी दोनों भावों की रचनाओं में पाई जाती है । इससे 'अग्रदास' और 'अग्र अली' की अभिन्नता स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

शृंगारी रामोपासकों की परम्परागत आस्था के अनुकूल इन पदों में केवल आराध्य युगल की केशोर लीलाओं का ही वर्णन हुआ है । कवि की वृत्ति दम्पति की माधुर्यक्रीडा तथा शृंगारी चेष्टाओं के अंकन में ही विशेष रमी है । ये प्रसंग हैं—धनुषभग के पूर्व सीता की उद्विग्नता, सीता का अलौकिक रूपमाधुर्य, सीता सौभाग्य, मिथिला में प्रियाप्रियतम की हिडोललीला, अयोध्या में होलीलीला, प्रमोदधनविहार, सरयू में दम्पति का जलविहार, राम का एक पत्नीव्रत एवं प्रियापराधीनता, मुरतात वर्णन, चन्द्रकला, विमलादि सखियों द्वारा युगलविहार-दर्शन, सत्संग एवं रामभजन महिमा, अनन्यशरणागति का महत्त्व आदि । रचयिता

- 
१. 'पदावली' में संकलित नाभादास के इस पद से यह विदित होता है कि अग्रदास की परम्परा के किसी सत ने उसको वर्तमान रूप रचयिता के दिवगत होने के बाद दिया । सम्भवतः आचार्यनिष्ठा से ही उसने उनके पट्टशिष्य नाभादास की रचना को भी उसमें स्थान दे दिया ।

ने दो-तीन को छोड़ कर शेष सभी पदों के साथ रागों का स्पष्ट निर्देश कर दिया है। पदावली में उल्लिखित इन रागों की संख्या १३ है मारू, कान्हरा, टोडी, केदारा, जैतिथी, ललित, देवगंधार, बिलावल, घनाश्री, कल्याण, सारंग, मलार, और वसंत। इनके अतिरिक्त 'संगीतरागकल्पद्रुम' में संगृहीत अग्रदास के पदों में 'कपाल', 'विभास', 'विहाग', 'सिंधु' तथा होली — पाँच अन्य रागों का भी प्रयोग हुआ है। ये रचनाएँ पदावली में नहीं मिलती। इससे यह विदित होता है कि अग्रदास के पदों का बहुत पहले से संगीतज्ञों के बीच व्यापक प्रचार था। कृष्णानंद रामसागर ने संभवतः इसी लोकप्रियता के आवृष्ट होकर उन्हें 'संगीत-कल्पद्रुम' में स्थान दिया था। हो सकता है ये पद संगीतज्ञों के माध्यम से ही संकलित किए गए हों।

### अथ श्री अग्रस्वामीकृत पदावली प्रारम्भः

राग मारू

अरी हो रामा रम रही।

सात हमारे पन कियो सोरन धनुष कठोर।  
कोमल करतल साँवरो सखी मूरति मधुर किसोर ॥  
राज सभा भैसी गई ज्यो उदयन में चद्र।  
विधिना विधि सो निर्मियो अली मोहन मनको फँद ॥  
लोक वेद की साज सखी री जद्यपि दुस्तर आहि।  
रूपनिधान दति रघुनदन भीरज धीरज नाहि ॥  
भैसी मो जिय ऊजगी थाप चढ़ावो कोइ ॥  
'अग्रस्वामि' के हाथ बिकानी होनी होइ सो होइ ॥ १ ॥

मखी मोहि राम भावे।

नरपतिनिकर निरस सब लागे कोऊ दिष्टि न आवे ॥  
उदयन उदय होत ज्यो आली चकोरी चैन न पावे।  
एवे है अमृत को आवक चढ़ा तपनि बुझावे ॥

१. संगीतरामकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ६४।

२. वही, पृ० २३८।

३. वही, पृ० ५३१।

४. वही, द्वितीय भाग, १४४।

५. वही, पृ० २३६।

राजा बनराजी से लागत पोष्य नहिं दरगावे ।  
रघुनदन चन्दन द्रुम मानो अन्तर जरनि जुडावे ॥  
भावे नही पिताग्रन सजनी सारंगपानि सोहावे ।  
'अग्रस्वामि' मोहनी मन लिये चितवनचितहि चोरावे ॥ २ ॥

राग कान्हूरा

सात प्रन काहे को कियो ।

कठिन पिनाक राम कर बोलस धीर न धरत हियो ॥  
मधुर मुरति आनदकद सम नाहिन और बियो ।  
बक्र चितवनी साँवरे सखी चित बित चोरि लियो ॥  
रघुपति तजि जे रति करें धूग घुग जियनहि जियो ।  
'अग्रस्वामि' रस बस भई मैं मन मोह लियो ॥ ३ ॥

राग टोडी

देखु री नीकै रघुनन्दन ।

सीता कहति सखी अपनी सो रसिकराय सिरभौर स्याम तन ॥  
चितवत दृष्टि चलत नहिं इन उत रूपरासि मो मो मन फदन ।  
'अग्रस्वामि' सो मोह बढघो अति ज्यो चकोर चढहि अभिनदन ॥ ४ ॥  
देहरी धँसत जब जे हरी देखि मन गहि गयो उठे उर लाई ।  
अति आदर सो भरि अँकवारी प्रातनाथ पलका पधराई ॥  
आगत स्वागत बारि बारि तन बीरी मुहाथ बनाइ खलाई ।  
बार बार आलिंगन चुबन मनहुँ रक निधि पारस पाई ॥  
ध्वनान्मृत सो सीचि बिबिध भाँति जनककुँवरि रघुनाथ लड़ाई ।  
जालरध्र के निरिख 'अग्र' अति कामकेलि सुख बरन्यो न जाई ॥ ५ ॥

राग वेदारा

लाल भयो रोमांच प्रिय की आगम जान्यो ।  
अनग रौर गए दौरि अजिर मे अति आवुर हूँ अग राम पहिचान्यो ॥  
मेघागम ज्यो नृत्य कपाली नूपुरघुनि मन मान्यो ।  
सुख समाज सो मिली 'अग्र' प्रभु तन मन एकता सान्यो ॥ ६ ॥

सुख सेज पौडिये राम सीतारवन ।

राग रग रचिर सौरभ सौज बीटिका चित्र चँदवा बिबिध सुन्दर भवन ॥  
रूपसावन्य गुन कोकबिद्या कुसल बचन रचना बिदुष पिया पारस गवन ।  
जानकीजी राजीवनयनकी मैनछबि 'अग्रसहचरी' सुगम और जाने कवन ॥ ७ ॥

राग जयतिश्री

सुरतात प्रिया पति दोऊ अतिसय करि निद्रा अधीना ।  
जस्तन कर्दम चबुकी सिपातर ठामे भँवर भयो एक सीमा ॥  
दासलुब्ध को सब्द श्रवन सुनि सभ्रम राम बिलोकत बाम ।  
रही पुण्य अवसस हृदय मो साखि कसदि मारि गयो काम ॥  
प्रेमबिकल परतीति न मानत बेदेही हित पावत खेद ।  
'अग्रस्वामि' आधीन तिया के मिथ्या दुख आयो तन सेद ॥ ८ ॥

राग सवित

रजनी अल्प राम उठि बैठे सोय गई सीता आयो भोर ।  
घार घार विधुबदन बिलोकत मानो पीवत सुधा चकोर ॥  
हरे हरे चुवन चमवन उर कर सो चिबुक चाह टकटोर ।  
जागि परी जानकी तेहि छन आलसपने नयन की कोर ॥  
बहुनि अक आरोरि पिया को गौर स्याम सोमित एक जोर ।  
'अग्र' अली ऐमी छवि छोटे धिग जाको आवै उर और ॥ ९ ॥  
रघु निरख न मुल कुँवरि की

नकवेसरि अटकी लट धीकर आप सँवारी ।

गुन्दर सुहागनिधि बस पूरि रह्यो विस्वभष्य

स्वयम बिये रामचन्द्र नहि निभुवनऐसी नारी ॥

गौर स्याम मनमिराम बारि फेरि कोटि काम

जीवनफल देखि देखि 'नामो' बलिहारी ॥१०॥

राजकुँवरि पूजति मजारी ।

कहा न कीजै अपने काजि गूढ़ भाव एक बात विचारी ॥  
निचा घटत सुख हानि होत है बात बैर कोनो तमचारी ॥  
याही दोष विमारी पानी पय प्यावत राखव के प्यारी ॥  
जो पुन किये रह बह कुक्कुट ती कत भोर होय हिय हारी ॥  
निद्रा भग ममर रस समित 'अग्र' अदूषित जनकदुलारी ॥११॥

राग देवगधार

रजनी जागे भागिनी आवत मग मधुर उचरत जय गान ।  
राममगात पग घरत घरनि पर राम अपररस कोनो पान ॥  
आमग परे अँदात जानकी मुदिन भगन राखो पिय मान ।  
अस अग ऊँपाहि देत सब मर्ममु अपि बिये रतिदान ॥

१ परायणी में सङ्गित यह पद अप्रवास का न होकर उनके शिष्य 'नामादास' का है, यह 'नामो' छाप से ही स्पष्ट है ।



सुबस किये सुंदर बर रघुपति त्रिभुवन ज्वती नदिन समान ।  
सहचरि सबे बिलोकि विवस भई 'अग्र अली' बलि वारति प्रान ॥१२॥

### राग विलावल

जीति आई कामकली रागरग राती ।  
जागी निसि चारि याम बार बार जंभाती ॥  
पलटे पग धरनि धरत अघर मुष्ठा माती ।  
मडल भुज जोरि मोरि अग अग अंगराती ॥  
टूटेउ उरहार चिकुर कचुकी उलटाती ।  
अघरनि छवि कल कपोल बनी पीक पांती ॥  
नख सिख हरपात गात बानी तुतराती ।  
सीताछवि निरखि सखी 'अग्र अली' जुडाती ॥१३॥  
कीर निसा की कहति केलि ।

गुरजन सुनत सकुचित सीता भूपन चापि धून वई मेलि ॥  
हारघो व्याज बीज कह्यो मुज्यो तो बदि जानो ज्यो स्वाद ।  
सुक सन्नम मै परघो बिभापनि भूलि गयो पूरव अनुवाद ॥  
नागरि उक्ति यह उपजी सखी रीझि रही बदन निहारि ।  
'अग्र अली' कहे अघरज नाही वेदेही राजा कुंमारि ॥१४॥

### राग विलावल

एक नारि व्रत न्याम धरघो ।

अखिल भुवन अबुत नहि हरि को निरले यह रघुनाथ करघो ॥  
बनिता रतन सिरोमनि सीता सील मुजस सबही प्रचरघो ।  
ता तन मगन भये तन भयना वैसि राम नहि निकरघो ॥  
कहा भयो जो कोटिक वस्ती सुख स्वारथ एको न सरघो ।  
रूप उदार विनय लावभ्य गुन 'अग्रस्वामि' मन रह्यो भरघो ॥१५॥  
जुवती गुन जानकी पतिव्रत भाग मुहाग सुभगता सागर ।  
सत्य सौच जित क्रोध दया जुत कीरति विसद लाज मुदु आगर ॥  
एक नारी व्रत न्याइ अमित गुन रिझय राम नयना बर नागर ।  
त्रिया तिलक बिद्रूपन भूपन 'अग्र' स्वामिनी जगत उजागर ॥१६॥

### राग घनाश्री

रामरवनि गजगवनि अवनिजा चपकबरनि मीन मृग नयनी ।  
बदन इंदु अरविंदु कुंद द्विज अघर बिब बिद्रुम पिकवेनी ॥

सीता के सौंदर्य सील धृत उपमा सकल सकुचि भई गैनी ।  
धनिता बर त्रैलोक उजागर 'अग्रस्वामि' आनंद देनी ॥१७॥

### राग टोड़ी

राम सो राम सीता सो सीता ।

सिख बिरचि सारदा सेस सुक पटतर खोजत कलप त्रितीता ॥  
सुंदर सोल मुहाग अमित गुन अखिष लोक नर नारी जीता ।  
श्री 'अग्रस्वामि' स्वामिनी उजागर नेति नेति श्रुति गावत गीता ॥१८॥

### राग बान्हारा

सिया अस्नान उजटि नाते आज कीन्हो वैतक उत्तम नारी ।  
तेई सील सुंदर सौभागिन बहूत गुनन के भारी ॥  
जानकी अग तीरथ में न्हार्न बाम भई जग उजियारी ।  
धनिता श्री रघुमीरवल्लभा 'अग्र' स्वामिनी नहि कोउ सारी ॥१९॥  
जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम करत सीता जो मुमिरन ।  
रामचंद्र को ध्यान धरत मुनि बसति जानकी रामचंद्र मन ॥  
मिख बिरचि के धनुषधरन धन रघुनर के मैयिली महाधन ।  
परमहंस कुल राम भजन भर 'अग्रस्वामि' एक पत्नी को पन ॥२०॥  
माँको मोहाग जानकी तेरो रघुपति रसबस कीन्हो री ।  
तोसी नारी नहि त्रिभुवन में पिया प्रेमरस भीनो री ॥  
'अग्रस्वामि' मन बचन कर्म लोको रीस आलिंगन दीन्हो री ॥२१॥

मेरी स्वामिनी सहाय भाग अद्वितीय पटरानी ।

रघुपति को और नारि सपने नहीं सोहानी ॥

जाकी लाक्षण्य गुन रूप सील सबही लोक तानी ।

'अग्रस्वामि' भीताराम बिदित जग कहानी ॥२२॥

मेरी रानी को अविवल मुहाग ।

जाके परसि और नहि परसी रघुपति दिन दिन बाढ्यो राग ।

सीता सी मिरजी न सुपतनी बैलि अकटक लथो न दाग ।

'अग्रस्वामि' स्वामिनी अहनिम सुख बिलसत दोउ भूरि भाग ॥२३॥

सर्वोपरि मेरी स्वामिनी राघी की प्यारी ।

जाको परसि और नहि परसी अतलीना एक नारी ॥

स्वदम किये दसरथ शृपनदन नाहिन कोऊ सारी ।

वैदेही के वदन कमल पर थी 'अग्र अली' बलिहारी ॥२४॥

### राग कल्याण

वदनारविंद पर बलि बलि कियो प्यारी ।

इदु कुद बिद्रुम जपा बिब मिलि मीन मृग लीन सजन छबि हारी ॥  
नासिका कीर तिल पुप दाडिम दसन हँसनि बिगसनि कमल कहा करे सारी ।  
भाल दीपति मुकुर भौंह राजी भँवर मृकुटी सरचाप मनमथ सत हारी ॥  
चिबुक त्रिभुवन चारु सुभग सुकपोल तर आनंद कद बिधिना सँवारी ।  
राम सुखदेन मधुवेन स्वामिनी 'अग्र' जानकी नारी वर नृप दुलारी ॥२५॥

### राग सारंग

बलिहारी सीतावदन की ।

उज्जल अरुन परस्पर दीपति अधर बिबफल रदन की ॥  
वेसरि मुकुटा चपल होत मति सोभा बीरी अदन की ॥  
लोचन चारु चिते मधु बरसत राम काम दुख कदन की ॥  
सचीसहित सोभा त्रिभुवन की वारी माननी मदन की ।  
'अग्र' स्वामिनी बिसद चद्रमुख सौभग हृद सुखसदन की ॥२६॥

सभ की सोभा सिमिटि लई ।

वैदेही को वदन बिलोकत अतरभूत भई ॥  
सीताराम गजगति हस जघ कदली कटि केहरि दसन अनाद ।  
कुच नारंगी फात कसघोतहि मुख बिधु अबुज चारु ॥  
ग्रीवा कबु कपोत अधर बिद्रुम छुति नासा कीर ।  
नैनन मीन मृग बेनी अहि कौकिल गिरा गभीर ॥  
ग्रीहत भए सकुचि सब जित तित पर्वत जाय लियो ।  
कोई अरुण्य अकास अग्नि जल कोउ पाताल दियो ॥  
बलि अरु बरुन बन्हि वासव मिलि बदत भये यह बात ।  
सीतासरन गहो सब तजि के श्री 'अग्र अली' बलि जात ॥२७॥

### राग धनाश्री

भूपन भनिमय नाहिन भावत ।

सीता भीत पीय अंग परसत ऋषिपतनी की सुधि जब आवत ॥  
जम्बू नद गुहि अमित पाट सो नाना भाँति बनावत ।  
कुसुम कटाव कचुकी सारी कुमकुम कुचन सु दोष बनावत ॥  
पद्मपानि पद चित्र महावर पाँति तबोल फज्जल छबि पावत ।  
सहज सुभग वैदेही अंग अंग 'अग्रस्वामि' येहि भाँति रिझावत ॥२८॥

### राग कान्हरो

नमो जानकी जगतमनि छकमनी ।

बदन बिषु बचिर रद हास ईषद सुसदाम हृद काम की ताप समनी ।  
नमो सुक नासिका नैन मृग मीन छवि भाल बर भाग सौभाग दरसै ॥  
प्रेमपूरित बैन अलक इक उर बैन सहज अलबेलि पिय मनहि करसै ।  
नमो कठ कपोतिनी उर छडत गिनी सिंह मधि देस थोनि सोहै ॥  
जय कदली कर्म गर्व गति हरति इमु सुदुति नख चद्र उपमान को है ॥  
नमो बिसद सत कुम्भ सम भाति आभा यणुप भनि सखित विविध  
मूपनिधारी ।

ध्यालि बेनीदड अग दीपति चड सुभगता सनि रही रामप्यारी ॥  
नमो भरत सगीत गंधर्वन्या कोकनिधि सुघरघरनारि सब सोस पावै ।  
रुद्र ब्रह्मादि कर्म और वेते कहीं स्वामिनी 'अग्र' नहि पार पावै ॥२६॥

नरवर राम त्रियावर सीता ।

या जोरी की उपमा नाही धाता निरखि रह्यो भयभीता ॥  
सोब सदेह करत चतुरानन दूजे काहू सृष्टि बसाई ।  
उभय लोक परयत फिरयो वै येहि भूरति गति कहूँ न पाई ॥  
वेद बिचार कियो जब ब्रह्मा नेति नेति इनही को गावत ।  
राम इष्ट जगतपति नियता सोई 'अग्र अली' जिय भावत ॥३०॥

राग भलार (झूलन के पद)

तल्ल तमाल भरन रघुबीर जानकी कचन की लता ।  
सौदामिनि नख सग मानहु पुलकि प्रेमलता ॥  
निरखि रैसि जगूनद जैसे दोऊ सग रता ।  
थी 'अग्र अली' सीतापति सोभा को करि सकै अता ॥३१॥

राग कान्हरो

जनकपुर लागती जु सुहाई

रंगीली अतिहि सखीसी सब मिलि झूलन आई ॥  
सावन मनभावन पियप्यारी अवनी सहज सुहाई ।  
पावन कुज पुज सुख दरमत करयत मन बरपाई ॥  
कचन धर्म अद्वित डाँदी नग विविधि विचित्र बनाई ।  
रैसम डोरि कोरि बनि आई जहूँ दिसि जलज जराई ॥  
लाली भाल नाल रग शोभी लालन लाल सहाई ।  
शोभा देत सेत सुख पिय को मद मद मुगुनयाई ॥

उमगेउ रंग अनंग परस्पर मेन मल्हार जमाई ।  
 गावाहि समर रग भरि मामिनि कोकिल कंठ लजाई ॥  
 ठाकुर हमरे राम मनमोहन बंगन रूप लोनाई ।  
 ठकुराइन मिथिलेस साडिली सोल सनेह मलाई ॥  
 होढाहोढी मच्यो है हिंडोरा सोभा कहि ॥ सिराई ।  
 श्री 'अग्र अली' प्रिय दंपति झूलत जनकलली रघुराई ॥३२॥

राग बसंत

मूंदत नैन राम सीता के बदा उन चितवन नहि देत ।  
 मांगे जो बल्लभा मृगन को सारगधर सकुचात यहि हेत ॥  
 प्रिया बचन उलंघन सक नाही उत्पति हुते प्रलय हूँ जाई ।  
 दोऊ कठिन जानि रघुनदन हाँसी मिस यहि रच्यो उपाई ॥  
 जाँचै जानकी कदाधि हृद्र कुरग बेगि देउ आनी ।  
 अति आधीन जनावत तिय के 'अग्र स्वामि' एते यहू मानी ॥३३॥  
 रघुकुलबधू झरोखे झाँके राघी खेलैं होरी ।  
 भरत परस्पर सुधि नहि पेयत को प्रीतम को गोरी ॥  
 जहँ तहँ राम जानकी सनमुख लावव कहि न जाई हो ।  
 केसर कुमकुम कीच भची है बरसत धन पिचकाई हो ॥  
 नभ बिमान गन धकित रहे है सुरवनिता सब गावैं हो ।  
 पुष्प वृष्टि करि जय जय उचरैं प्रमुदित दद मचाई हो ॥  
 केलि कुलाहल कौतुक देखैं पुरवासी बढ भागी हो ।  
 सीताराम स्वरूप हृदय धरि 'अग्र अली' अनुरागी हो ॥३४॥

राग जैतथी

अबके बसंत अधिक बनि आयो ।

खेलत हुते सदैव अवधपुर यहि सुख कबहुँ न पाई हो ॥  
 और बेर ये सब हुत सखि मिलि मारति भरि पिचकारी हो ।  
 अबके खेल सरोतर सनमुख कहि न जाइ छवि न्यारीहो ॥  
 चोवा धदन अगर अरगजा नाना - रंग अवीर हो ।  
 केसर कुमकुम कीच भची मनो बरसत भादों नीर हो ॥  
 चग मुदग उपग ध्वजरी मधुरे स्वर सहनाई हो ।  
 जीतत जवाहि नायका नायक सहचरि उठति बजाई हो ॥  
 कोऊ सखी स्लाधि राम को कोऊ सीता गुन गावै हो ।  
 श्री दसरथ जनक दुहु पीढ़ी दासी गारी देखि दिवावै हो ॥

यह छवि निरखि सुमन सुर बरसत उचरत जै रघुराई हो ।  
सीताराम फागुरगराते श्री 'अग्र अली' बलिहारी हो ॥३५॥

खेलत राम रघुपुरी खचि सौं बहू भातिन सुखदाई हो ।  
इत जानकी जुवतिमडल में उत सोमित सग भाई हो ॥  
चमर छत्र लिये ध्वजा पताका रचना खचिर बनाई हो ।  
सबै खेल का सौंज सबी है जेसे निषटन जाई हो ॥  
बाजे ब्रजन लगे कुहुँ दिसि ते गावसि गारि सुहाई हो ।  
मनहुँ दुरि दुरि छुटे मदमाते मिरत परस्पर घाई हो ॥  
केसरि बारि कुमकुमा भरि भरि छुटत छिछि पिचकाई हो ।  
प्रेरित पवन मनहुँ पावस रिनु छिन बरसत झपकाई हो ॥  
बोवा बदन छलबल करि कै प्रीतम मुख लपटाई हो ।  
राजिवनैत लेत जब बदलो तब प्रिय देत दुहाई हो ।  
हा हा किये सबहि मलि छुटिहो कै सीता सिरनाई हो ।  
मृगमद मलय अबीर सुख सुखी अजिरन कीच मचाई हो ॥  
उमरि बल्यो अरगजा पनारनि बीषनि भरी बहाई हो ।  
बृन्नागर सो भरे बहबना घूम धूप नम छाई हो ॥  
सोपौ सहुरि महोदधि मानो पुरजन प्रीति कराई हो ।  
भरति भरावत कुँवरि कुँवर रस होरी कहि किलकाई हो ॥  
मनो मधवाधुनि व्यापि रही सब उठत महम मे छाई हो ।  
पल्लरोटा बीरनि में पखी मिसु के हाथ दिखाई हो ॥  
खान लगे उठि गई बिरीजी हंसि करताल बजाई हो ।  
खम खम प्रतिगिब स्याम के बहूँ तहूँ देत देखाई हो ॥  
कुसम्भज कुँवरि भरति भ्रम सो जब तब हंसि करत खेलाई हो ।  
पलटे पकरे जाइ सनुधन कज्जल आखि अँचाई हो ॥  
करत सबै भागिनि मन भायो बंदो लो लेहु छुड़ाई हो ।  
रग रंगे खेलत अँग अगन जनकसुता रघुराई हो ॥  
रोस सुमन बरसत सुर सघट देव दुन्दुभी बजाई हो ।  
जातरघ्न निरखत सुख जननी आनंदसिधु बढाई हो ॥  
तन धन प्रात बरत न्योछावरि वाजत बहुत बचाई हो ।  
बीच नियो कीसल्या रानी फगुवा मोद भराई हो ॥  
सीताराम विनोद फाग पर 'अग्र अली' बलि जाई हो ॥३६॥

राग भारु

सीताराम भी बनिहारो ।

अगभूपन निरदूपन जोरो राजत अवधविहारो ॥  
सुंदर बर रघुवीर घोर अति सोभानिधि मुकुमारी ।  
श्री 'अग्र अली' उरबसो अहर्निश सोन सरागनधारी ॥३७॥

हिंदोरने झूलत जनकदुसारी ।

ससि इक जोर निशोर रूपनिधि बिशेष भांति तन सारी ॥  
कचन खम पाटि पटुली डाँडी बिद्रुमद्युति न्यारी ।  
पद्मराग मरुवा बेलन पद्मा आठ इद्रमनि भारी ॥  
धाम निकट आराम हरित द्रुम श्रीरुत सहँ मुकुमारी ।  
गावति हैं मिलि हरपि हिंदोरा बलवठिन उनहारी ॥  
करत भँदोल सोन खचस खस जनु दामिनि छवि हारी ।  
साट लिये सजनी डरपावत नाम लेउ पिय प्यारी ॥  
नाम लियो स्वरूप सुचि बर देसी ईपु धनुषारी ।  
श्रम स्वेदबिंदु निरखि बदन पर श्री 'अग्र अली' बलिहारी ॥३८॥

देखो झूलत रापो डोल ।

जनकसुता सीने सँग सोमिठ गौर स्याम तन सोन ॥  
हीरा पद्मा लाल पिरोवा रतनसहित बेमाल ।  
श्रीरुत राम जानकी दोऊ बजै दुदुभी डोल ॥  
हँसत परसपर प्रीतम प्यारी आनंद बढ़यो सघोल ।  
श्री 'अग्र अली' मुनि सुनि सुख पावति बोलहि मीठे बोल ॥३९॥

झूलत सिया राजिवनैन ।

रतनजडित हिंडोलना ससि राम सुख के भैन ॥  
स्याम अंग पर गौर झलकत दामिनी धन गैन ।  
मैथिली रघुवीर सोभा निरखि सज्जित मेन ॥  
नाम पिय को लेहु नागरि जो सलिन मन खैन ।  
जानकी नहिं लेत मुख मो देत लोचन सैन ॥  
परस्पर झूलत झुलावत बढत मधुरे बेन ।  
अवधपुर नित केलि दपति 'अग्र' आनंद देन ॥४०॥

राग जैतश्री

झूलत राम राजिवनैन ।

जनकजा सनमुख विराजति तडित ज्यो धन गैन ॥

अतिहि झूलत मनहि फूलत रसहि छोपत मैन ।

साल के उर सागि सोभा सुख की रेखे जैन ॥

परस्पर अनुराग दोऊ बढत मधुरे बैन ।

जालरघ सो निरखि बनिता 'अग्र' उर सुख दैन ॥४१॥

जलबिहार बिहरत सीता सग सुदर वर रघुराई हो ।

प्रीयम काल सुमार सरद सुख सरजू सुभग मुहाई हो ॥

न्यारी न्यारी नाव सबनि की सीतल सौंज मराई हो ।

लेहज बोहज बिबिध भांति फल सुगंध बरन्यो नहि जाई हो ॥

एकै कोट कुंदरि रघो भई राम लक्ष्मन भरत भाई ।

भरत परस्पर कर अजुली जल मनो सीकर बरसाई हो ॥

बिमला कमला कर्कटिका मेलता साधव सेत बचाई हो ।

लोचन साल भए पमपूरित बसन अग लपटाई हो ॥

निरखत नीरकेलि नर नारी, 'अग्र अली' मनभाई हो ॥४२॥

उठे दौड अलसाने परभात ।

दसरथसुत श्री जनकनदनी सौंघे भीने भात ॥

बिमलादिक सखि चँवर दुरावहि हरपि निरखि मृदु गात ।

श्री 'अग्र अली' को श्रीरज दीजे सकल भुवन के तात ॥४३॥

बहियत कृपा लसी सीता की ।

नवधा भक्ति ज्ञान का करनो मिटि गई सक बेद गीता की ॥

पढमत बेद पुरान पुकारत करत वाद नर बपु बीता की ।

झपरो करें अरुखे सुरझै ना मिटी न एक द्वैत भीता की ॥

जाकी ओर तनक हँसि हेरति करत सहाय राम पू ताकी ।

श्री 'अग्र अली' भडु जनकनदनी पापर्मठार ताप रीता की ॥४४॥

जै जै श्री बनप्रमोद रसिकन सुखदाई ।

सरजू तीर दिव्य भूमि बेलि लता रही झूमि

पूजन प्रति भँवरा अति गूजत मनभाई ॥

कुज कुज प्रति अनूप त्रिलसत तहाँ जुगलरूप

जनकलसी रघुनन्दन मधुर मधुरताई ।

षट्रकसा बिमलादिक भागरि नवीनी अति

मधुर जत्र लीन्हे कोइ सत स्वर जमाई ॥

गावहि सब दिव्य तान सुनहि साल अति सुजान

रामरस भोजि मद मद मुखयाई ।



श्री 'अग्र अली' बिपिन राज यहि सुख तहँ नित समाज

जानत कोउ रसिक भेद जिन यह रस पाई ॥४५॥

आगे सखि पाछे सखि सखिन के मध्य आवे

अचरानि ओट राजें राजदुलारी ।

अकनि अकनि पग धरत धरनि पर होत सलित नूपुर क्षनकारी ॥

करत प्रवेश महल मे सजनी अरसपरस सुख उपजत भारी ।

दपति छवि मोपे कहि न परतु है श्री 'अग्र अली' तापर बलिहारी ॥४६॥

अथ भोजन पद

छद्मीले दोऊ आवत भोजनसाल ।

भूमत झुकत चलत मतवारे रसिक रगीले साल ॥

करत कटाक्ष परस्पर सपटत दीन्हें गलभुज भाल ।

हंसत हंसावत रस उपजावत सग सहचरी जाल ॥

प्राणप्रिया कछु कहत नवेसी हरपित होत निहाल ।

श्री 'अग्र अली' बैठे दोउ प्यारे निरखत भोग बिसाल ॥४७॥

जैवत श्री रघुबीर बने सखि सग लिये मिथिलेस सली ।

भुज अस दिये बहिषाँ छु लसैं बिहँसैं मृदु मज्जु अनग रली ॥

करि कौर सिया मुख देत पिया कहि स्वाद सराहत भाँति भली ।

रस के निधि दपति रग भरे निरखैं चहुँ ओर किसोर अली ॥

मनिमदिर में झलकैं प्रतिबिंब मनोज के मानो बिहारपली ।

अवधपुर नित्य बिहार करें सखि 'अग्र अली' जी की आस फली ॥४८॥

भले रुठो जी राम गोसाँई ।

पायो राज पाट दसरथ के यहि सीन्हो ठकुराई ॥

जाय कहीं मिथिलेस सली से निसरि जाइ गुमराई ।

श्री 'अग्र अली' के सिर पर चहिये सीरध्वज को धाई ॥४९॥

यह गोहि दीजे राघव राम ।

दासनिदास दास के अनुचर कथा अवन मुख नाम ॥

मोक्ष आदि दै चारि पदारथ मेरो कछु नहि काम ।

चरनरेनु साधुन की सिर पर वृषा करो सुखधाम ॥

सतन सो अनुराग निरतर येहि बिधि बीते जाम ।

श्री 'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधासिंधु विश्राम ॥५०॥

हम चाकर रघुनाथ कुंभर के ।

ढादस तिलक मनोहर बना कठी कठ देखि जम टरके ॥

तुमहि जाँचि जाँची नहि औरहि नहि भरोसो कह नारी नर के ।  
 दानोबद सदा प्रभु तेरो भयो गुलाम रावरे घर के ।  
 'अग्रदास' यह पदा लिखायो दसखत दसरतसुत निज करके ॥५१॥

इनके अतिरिक्त अग्रदास जी के कुछ और पद मुझे इधर खोज मे प्राप्त हुए हैं । उनमें से १४ पद राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित 'पद मुक्तावली' नामक काव्यसंग्रह ( ग्रंथांक १८८२ ) के हैं । भाषाशैली तथा वर्ण्य-विषय के विचार से इनके अग्रदास विरचित होने मे कोई सन्देह नहीं है । शेष पद 'रसिक राममत्तो द्वारा संकलित पूर्वर्चापों के पदसंग्रहों मे मिले हैं । भाषा तथा वर्णनपद्धति दोनों दृष्टियों से इनमें से अनेक की प्रामाणिकता सदिग्ध प्रतीत होती है । विभिन्न स्रोतों से संकलित इन पदों मे यत्र-तत्र सामान्य पाठ भेद के साथ कुछ एक दूसरे से बिल्कुल मिल जाते हैं—

( ५२ )

॥ राग आसावरी ॥

रामजनम आनद बघाई ।

सुरतर कामपेन चित्तमणि अवधिपुरी भानी ग्रह ग्रह आई ॥टेक॥

अतरीछ जन फिरत अवन पर मिलन परसपर हूब बघाई ॥१॥

प्रफुलित हिंदो नगरवासिन कौ बाल बृद्ध सब बात सुहाई ।

भई और माचत नर नारी बहौ विधि गिने न जाई ॥२॥

भगल बसस चौक मोतिन के द्वारन बदनवारि बघाई ॥३॥

सुत कौ बदन निहारि नारि सब बारत भूषन लेत बलाई ।

नारी नर कौसल्या रांनो धनि भाग की करत बहाई ॥४॥

दसरथ राय न्हाय भए ठाठे कनक बसन अन धन मगाई ।

परम पुनीत बिप्रपद बरित दान मान ज्यौ धन बरपाई ॥५॥

मागय मूत माट बडीजन अष्टसिद्ध मन पाछित पाई ।

दसरथ सुत हौ नित प्रनि देपौ अग्रदास के यहै मन भाई ॥६॥

( ५३ )

॥ राग गौरी ॥

माजि बघावो दसरथ राय आए हैं राजीव नैन

आए हैं मुख के अन ॥टेक॥

प्रेत भरस नोप्री उजियारी सब सज्जोस अनूर ।

भगन महुरत नशान उच्चग्रह भरनचिह्न बह भूष ॥१॥

वसिष्ठ आदि तपोधन धारी कीनौ यह निरधार ।  
 दुष्ट दलन सुपद सतन को भूमि उतारन भार ॥२॥  
 धर धर तोरन धुजा पताका मुकना बदनवारि ।  
 दूध पूत भरी नारि मुहागनि सधिया रचत दुवारि ॥३॥  
 चंदन चौक रचत आगन में दधि अह दौब बघावै ।  
 कनक धार सोपज भरि आच्छिन्न मिलि सब मंगल गावै ॥४॥  
 निरत गीत बाजिन वेद धुनि ठौर ठौर यों मनियै ।  
 लेहु लेहु प्रापति भई बानी बोल अवन नहि सुनियै ॥५॥  
 पढ़ै निसान मृदग सप धुनि जै जै सबद उचारै ।  
 करत कौतूहल कौसलबासी आनद बछारी अपारै ॥६॥  
 मागध मूत भाट बदीजन दान मान बहु पावै ।  
 वरणाश्रम जतन अति धारी पूले अग न भावै ॥७॥  
 भू देवन कौ भूमि बाज गज धेनु रतन अन वैहै ।  
 पाय लागत सतौप सुधाभिनि मुदित आसिया लैहै ॥८॥  
 सुरतव कामधेन चितामनि कौशल्या सुत जायो ।  
 अप्रदास रघुपति के आगम मन बछित फल पायो ॥९॥

( १४ )

॥ राग कन्दो ॥

जाहि भयो परसाद राम पदरज को ।  
 त्रिलोकी लागत ताहि फीकी आसन इन्द्र बैठिबो गज को ॥  
 अष्टसिद्धि नवनिधि तीन पदारथ अद पतिता अज को ।  
 मुक्त बतूर धाम निर्हिन मानत घट्यौ सुभाव कामना कष को ॥  
 दीयो हूँ नहि लेत हरी को उपज्यौ राग सहज को ।  
 चरन धूरि फल मूलि अगर प्रभु अकुस कुनिस कँवल जब धुज को ॥

( १५ )

॥ राग पलार ॥

तीज हिंडोरे झूलत रानी ।  
 सुरतिकीरति उरमला माडवी रूप सील गुन पानी ॥टेका॥  
 मच्यो हिंडोरो नाम लिवावत चतुर सपो मुसकानी ।  
 सीमाझ सकुचि रही नहि बोनति अग्र अली मन मानी ॥१॥

( ५६ )

॥ राग मलार ॥

सावन आयो हे रग हेली ॥

सावन तीज सबे सजि पेले आवी मिलो सहेली ॥टेक॥

सजल घटा उमगी चिहूँ दिस तेँ प्रफुलित है द्रुमवेली ।

हरो हरो भूमि बूद अति बरपेँ रतिपति गति सब पेली ॥१॥

बरन बरन भूखन पट पहरेँ उत्तम नारि नवेली ।

मुरति कीरति उरमला माडवी प्यारीँ लाड गहेली ॥२॥

अपनेँ अपनेँ ग्रह तेँ निकसी आनि खुरी इक सेली ।

अग्र स्वामिनी की छवि निरपठ तन मन बारदि वेली ॥३॥

( ५७ )

॥ राग मलार ॥

हिडोरे झूलत जनक दुलारी ।

सपी इक जोर किसोर रूपनिधि बिबिध भाँति तन सारी ॥टेक॥

कधन पम पाट पाटली डाडी चिद्रुम सुति न्यारी ।

पदम राग मरवा वेलनि पुनि आड इद्रमनि भारी ॥१॥

धाम निकट आराम हरित द्रुम ब्रीडत तहा मुकुमारी ।

गावत है मिलि हरपि हिडोरेँ कल कोकिल उनहारी ॥२॥

बरत भडोल लोल चचल बल धन दामिनि छबिहारी ।

साटली वेँ सजनी डरपावति नाम सेहूँ पिय प्यारी ॥३॥

नाम लीयो स्वरूप सोचि करि इप दए धनुषारी ।

धम सेत बूद निरपि बदन पर अग्र असी बलिहारी ॥४॥

( ५८ )

॥ राग माह ॥

रघुपति बेग विसव कीजे ।

सीठा सोप भये पीछे तेँ इहाँ न पानी पीजे ॥टेक॥

आनदादि योग त्रिपिउत्तम लगन बिचार ।

गूरज सोम नशिज ग्रह नीचे रिपगण कोयो निरधार ॥१॥

दिमागूर शोभिनी पीठ पुनि त्रिय पूठि के गानी ।

सम मूचिक सम गुण होत है सब सुख के अभिरामी ॥२॥

अनुत्र सेप अनुचर व्रतचानन राम सहायक राजा ।

बहा सायर कहा संकदसानन बेगो एक है यह काजा ॥३॥

अग्रस्वामि सुग्रीव विनति प्रभु बलिये एही काल ।

सीता लाभ सुणे वदि छूटे सनु जाय पयमान ॥४॥

( ५६ )

॥ राग भेरी ॥

बाजि रामजानकी क्रपाल सुद सोहें ।

निरपत सुर नर मुनिजन शिव बिरचि मोहें ॥टेक॥

श्री रामजी कैं क्रीट मुकट रतन जटित धारें ।

सीयाजू के सीस फूल कोटि चद्र वारें ॥२॥

श्री राम जी के कुडल छवि कोटि भान सोभा ।

सीयाजू कैं करनफूल श्री राम कौ मन सोभा ॥३॥

श्री रामजी कौ सोहत उर मोतिन की माला ।

चार हार रुचिर पहरेँ जनक कुवरि बाला ॥४॥

श्री रामजी कटि किंकरी रुण झुण रुण झुण बाजै ।

सीयाजू के छुद्र घटि कोटि मदन लाजै ॥५॥

श्री रामजी कर धनुषवान पीतांबर राजै ।

सीयाजू कर कमल सुरग चूनरी बिराजै ॥६॥

श्री रामजी घनस्याम अग छवि के अभिरामा ।

सीयाजू कवन गौर अग लजित सपत कामा ॥७॥

यह ही ध्यान हिरदे सौं टरत नही टारै ।

अग्र स्वामि धरन उपर कोटि काम वारै ॥८॥

( ६० )

॥ आरती ॥

आरती बारन रघुपति राया । सुरनर मुनि जन कौतिक आया ॥टेक॥

घटा निसान घन झालरि बाजै । जगमग जोति अवधपुर राजै ॥१॥

बदीजन अस द्वारे गावें । सूरज बस प्रताप बढ़ावें ॥२॥

मात कौसल्या श्री रामहि देपे । जीवनि जनम सुफल करि लेपे ।

क्रीट मुकट कर धनुष बिराजै । तीन लोक जाकी शोभा राजै ।

मोतीयन दाल भरि मईया वारै । अग्रदास जन आरती उचारें ॥३॥

( ६१ )

॥ राग कनडौ ॥

येही मुभाव परी मेरी वाली ।

अही निसा गाऊ गुन पावन राघोराय जानकी रानी ॥टेक॥

जागत सोवत सीतापति पद बान कया हिरदै नहि आनी ।  
जहो तही रट परो रसन धम मानो मति काहु की कानी ॥१॥  
अमुद अनाप पाप करि जानौ रमा खनि उबरु सुपदानी ।  
बैदेहीदल्लम की कोरति अग्र भोज पावै मन मानी ॥२॥

( ६२ )

॥ राग कनठो ॥

रामचन्द्र पद भजिबे सायक ।

अगै करन भव तिरन पोत दिढ जुग जुग मापि वेद के नायक ॥टेक॥  
चितत खरन सकल सुख करतल व्यापत नही मुरत कौ भायक ।  
सतन की रक्षा के कारण निस दिन लीर्यै रहत कर सायक ॥१॥  
गौतम धरनि गिरा जल तारे सरन भभीषन बपि ज्यौ सहायक ।  
सेवा अल्प मेर भ्रम मानत करनासिंधु अजोब्या नायक ॥२॥  
सिध बिरख सुनकादि वेणुधर सारद सेस विमल जस गायक ।  
जानकी रचन अग्र सिर सेहरी अग्रदास उर आनद दायक ॥३॥

( ६३ )

॥ राग कनठो ॥

निबही नेह जानकीवर सौ ।

येही मनोरथ मन बच मेरे अनश्रुत रहै निति सारगधर सौ ॥टेक॥  
उसकौ नही द्वारि काहुँ के नेम परो हृद दसरथ घर सौ ।  
अष्टसिद्धि नवनिष सीतापति पद काम नही मोहि ज्यारौ फल सौ ॥१॥  
प्रीत ॥ बैर असुर मुर नर सौ निधरक रह्यौ डरौ नहि डर सौ ।  
रावन अनुज बालि कौ बधू दुसह आपदा टारी पर सौ ॥२॥  
भोह पटो ससार सकल सौ अनुराग बढौ निति कस्तुरकर सौ ।  
अग्रदास की ग्रही बीनती राम राय छाही जिन कर सौ ॥३॥

( ६४ )

॥ राग सोरठ ॥

मेरे राखवै कठिन धनुष कैसे तोरयो ।

बहे बहे भूप छपत दीपन के तिनहूँ नैव न चहोरयो ॥टेक॥  
पिता पुन्य प्रम पीयो तुम्हारी बिस्वामित्र सहाई ।  
मह ही सजोग बनो मेरी जननी छारै लीयो उठाई ॥१॥  
चापत प्रीति गोद बैठारि नै भाटव बहुत बघाई ।  
अग्रदास कौसल्या गुत पर बारि फेरि बसि जाई ॥२॥

( ६५ )

॥ राग सौरठ ॥

लेत बलैया रानी रीप के लेत बलैया रानी ।  
जाकी कृपा सदे फल पायो अदभुत दुलही आनी ॥८॥  
सूरजवश हूती बहो बनिता ऐसी सुनी न देखी ।  
रूपसील सागर गुन सीवा सबही बधू बसेयी ॥९॥  
जाकी कृपा जनक से समधी अलम लाभ में पायी ।  
कर पद जोरि कहै कवसल्या कीयो मनोरथ भायो ॥१०॥  
विद्वन पुत्रि कीये सूत मेरे मौपे बरनी न जाई ।  
गाबिसुवन परि तन मन करु सोई अग्रदास निधि पाई ॥११॥

( ६६ )

॥ राग ललित ॥

गावति श्रीप्रसाद सिय प्यारी छवि छकि मत्तवारी ।  
वीण बजावति मधुरे स्वर सो मधुर ताल सुठिकारी ॥  
सुनि जागे पिय प्यारी प्रीतम आलस भरे खुमारी ।  
बिनकुल बैठे पलगा पर काहू सुधि न सम्हारी ।  
प्यारी लट छुटि सोह उरज पर जनु नागिन दुतिकारी ॥  
अग्रअली निरखति यह छवि को तन मन धन बलिहारी ॥

( ६७ )

॥ राग ललित ॥

भरि अनुराग परस्पर दोऊ अघरामृत रस पियत खिलारी ।  
दत्त नखोछत दोउ अग झलकत मनु युग द्विरद बैठि लडि भारी ॥  
कबहुँ प्रेम भरि लपटि झपटि दोउ करि विपरीत क्रिया रसकारी ।  
प्रीतम प्यारी को कह प्यारे प्यारी प्रीतम को कहि प्यारी ॥  
आशिला रुख पाय अग्रअलि यह सुख शाकति शाशरि द्वारी ॥  
जाहि न यह सुख निरख्यो नैनन जप तप योग व्यर्थ अमकारी ॥

( ६८ )

॥ राग ललित ॥

भोर भये नव रंग महल मे राजत जनक लडैती लाल ॥  
स्याम गौर अशन भुज दीन्हे कछु आलसगुत नयन विशाल ॥  
प्रेम भगन दोउ उरजि रहे हैं कनकलता जनु डार तमाल ॥  
अग्रसहचरी तन मन वारत उझकि धरोखी शाकति बाल ॥

( ६६ )

उठे दोउ अलसाने परमात ।

दसरथ सुत श्रीजनकनन्दिनी सोधे भीने गात ।

विमलादिक ससि चँवर दुरावति हरपि निरपि मृदुगात ।

अग्रअली को श्रीरज दीजे मकल भुवन के तात ॥

( ७० )

॥ राग देवगन्धार ॥

जीति आह कामकेलि रामरण राती ।

जागी निसि चारियाम चार-बार जम्हाती ॥

पल दे पद धरति धरनि अधर सुधा माती ।

मडल भुज जोरि मोरि अग अग अगुडाती ॥

हूटे उर हार चिकुर कचुकि उलटाती ।

अधरनि छत कस कपोल बनी पीक पाती ॥

नख सिख हरखात गात बानी तुतराती ।

सीता छवि निरखि-निरखि अग्रअलि जुडाती ॥

( ७१ )

दनुवन करत सिया रघुराई ।

सुन्दर सुखद रमोली दनुवन रदन धरत छवि छाई ॥

जीभी कर जल परसत शोक मुख प्रछाल अगुछाई ॥

अग्रअली उरझी चितबनि मे मन्द मन्द मुसुकाई ॥

( ७२ )

॥ मगल ॥

मगन करि शृंगार सुतन मगल मई ।

मगल पार सजाई द्रव्य मगल मई ॥

मगल कर लिये सौज खली मगल मई ।

पट्टीची हेमिनिवास जहाँ मगल मई ॥

निज-निज सखि लिये वाद्य बजावत रस मई ।

गावन सगि बहु नारि राग मंगल मई ॥

आपस मुत श्रिय प्यार जगे मगल मई ।

मखि सब भाँशरि माह विलोकति मुख मई ॥

देसत युग विनरीज रहस मगल मई ।

दिन दुखन सापगात गात सब रस मई ॥



सखि सखि सब सुखसिन्धु मगन मगल मई ।  
 बैठे दिय गलबाहि रूप मगल मई ॥  
 सखि सब रूप निहारि वारि तन मन दर्ई ।  
 पुनि दोउ को बैठाइ चौकि रतनन मई ॥  
 मगल द्रव्य दिखाई प्यारी प्रीतम नई ।  
 पुनि दोउ के शृंगार करी मगल मई ।  
 मगल भोग सगाइ शेष सखियन लई ॥  
 आरति करि पट वारि वारि मगल मई ।  
 अग अग छवि अवलोकि सखिन बलि बलि गई ॥  
 मगलमय यह ध्यान अग्र जे गावई ।  
 पिय प्यारी रस महन टहल सुख पावई ॥

( ७३ )

॥ सुगन्धा छन्द ॥

मगल आरति करि सखि राम रिसाइ के ।  
 भूषण कछुक उत्तारहि प्रभु मन पाइ के ॥  
 कोइ सखि पट पहिरावाहि दूसर छोरि के ।  
 अष्ट कमल दल मणि चौकी दुइ ओरिके ॥  
 द्वी चौकी वसु वसु सखी टहल बतुरि बडी ।  
 अष्ट कोण दल दल पर आयसु लखी खडी ॥  
 बागीशा, माधवी, प्रियाहरि, मनजीवा ।  
 नित्या, विद्या, सविद्या, बूटरूपा—सीवा ॥  
 आठो मुख्य दिगन द्वी खडी सोरह सखी ।  
 अवरनि ते लै देहि आठ कहें मन सखी ॥  
 सिय चौकी पर मुख्य आठ सोरह सखी ।  
 जस रघुबर सेवा महँ तस सिय के लखी ॥  
 विमला, उत्कर्षणी, क्रिया, योगा, प्रथी ।  
 ईशाना, ज्ञाना, सत्या, सेवा कथी ॥  
 आठ आठ जे मुख करहि मन की लखी ।  
 समय समय सब निहे अपर कोटिन सखी ।  
 परम मुख्य सखि पाँच सुशीला, लक्ष्मना ।  
 हेमा, अतिशीला, सुचारुशीला मना ॥

पाँचहूँ की आज्ञा सुसर्व सेवा सुधी ।

अर्ध देति सखि अग्र राग सिय की रुची ॥

( ७४ )

॥ कवित्त ॥

श्री प्रसाद प्यारी औ प्यारे और चारुशीला

अंगन सुगन्धमय उबटनो लगावती ।

दोउन के धुलैगाल अंगन खनि दलमलाल

मानो शशिकोटि सुधा किरण को सजावती ॥

निरखि-निरखि सुभग गात आनन्द घर में समात

कोटिन रति काम वाली दोउन पै बारती ।

कोमल कर में सुधार उबटनो लै बार-बार

दोउन सखि हाथ अग्र देति रस भावती ॥

( ७५ )

॥ उबटन ॥

सिय प्यारे को (सखिया) लगावति उबटन ।

पधराग मणि की चौकी पर दुग्ध फेन सम बिछे विद्यावन ॥

तापर स्यामा स्याम बिराजे कोटि मदन रति सुतिन सजावन ।

अति सुगन्धमय पैल नरायन तामे और मिलाय सुगन्धन ॥

धिरप कुसुम हूँ ते अति कोमल अंग-अंग सुकुमार निरखि तन ।

तै उबटन कर बहुत लगावन करन कठोर समुक्ति द्विष धरकन ॥

अति भयभीत सहमि सखि लगवति सखि अद्भुत ध्वनि बारति तन घन ।

कोइ सखि प्रीतम अंग लगावति अग्र लगावति प्यारि सुभगतन ॥

( ७६ )

उबटन करत रंगीली अविर्मा ।

दुगल अली दोउ घरन लगावति अंग विलोकति रत्निपौ ॥

दुगल दुगल सखि दोउ भुज मोड़त घर पीछन युग अविर्मा ॥

अप्रमली दोउ रसिक परस्पर मुख भीजत छलि बलियाँ ॥

( ७७ )

उबटन करत सिया रघुराई ।

छरम सुगन्धन बन्यो उबटनो लेकर घर मरसाई ॥

ओई ओई अंग लगावत प्यारो सोइ प्यारी मन भाई ॥

अप्रमली के जीवन दोऊ निरगत हग न अपाई ॥

( ७८ )

॥ कवित्त ॥

सिया अस्नान उबटवाते आज नीन्हीं बेजिज उत्तम नारो ।  
तेई सोत सुन्दर सीमागिनि बहूत गुनन बे भारी भारी ॥  
आनकि अंग तीरथ में न्हाय घाम भई जग में उजियारी ।  
बनिता थी रघुबीर बल्लभा अघस्यामिनी नहीं भोउ सारी ॥

( ७९ )

मज्जन करत रसिक मनहारी ।  
सुभग सरोवर सामे दोऊ बरिणी मग करि रिब रिब प्यारी ।  
सामिन सहित विहरत जलमाहीं बहुनिधि करत बेनि रणकारी ॥  
अजलि भरि जग लेत परस्पर अंसिया मे मारत निषकारी ।  
बल्ल क्षीन अंगन सब झलजल सति सति दोऊ रस मतभारी ।  
करि मज्जन दोउ तट पर आये अघ समय सम बसन सुपारी ॥

( ८० )

यज्ञ (सु) करत रसिक सिध प्यारो ।  
सुरतह सर मनिमय बेदी दाहिन सिध पिय नाम निहारो ।  
दाहिन इक अलि पार सिधे कर पायस से सिध पिय करधारो ।  
द्वादश आहुति युगम मन्त्रसो जात्रवेद त्रिपित किय भारो ।  
हवन बुड परिकरमा कीन्हे अघ अली के प्रान अघारो ॥

( ८१ )

॥ कवित्त ॥

दिव्य मङ्गल महा यज्ञ निय साजयुत दानदिय धुनि सली रूप आई ॥  
बिप्र तनया कही सीय रघुवर लही हरदि दधि अशत से छिटाई ॥  
धेनु भूपनदसन रत्न वासन असन अन्न बाहन अमित दीन आई ॥  
पानिध्वै अम शृंगार दूसर किये पूजि पियप्यारी सब सति सुहाई ॥

( ८२ )

॥ शृंगार कवित्त ॥

प्यारी कटि सारी जरतारी सुधारी क्षीनी प्यारे कटि धोती सुधीली झलकारी है ॥  
प्यारी बशोज पर कचुकी सुधारी क्षीनी प्यारे उर कचुक मुमोतिन की धारी है ॥  
प्यारी गले चन्द्रहार प्यारे गले मुक्तमाल अगद ओ पहुँची समुद्री नग जानी है ॥  
चन्द्रिका सिधैच पाग कानन में कर्णपुन कुण्डल अलि अघ हाथ आपने सुधारी है ॥

( ८३ )

करत कलेठ मिलि दोउ प्यारे जनकनन्दनी अवध दुलारे ॥  
बरफी मोदक तपत जलेबी साझा घेवर अति रुचीकारे ॥  
बीज पाक रसगुल्ला छुरमा मोहनमोग पूष रसदारे ॥  
पूरी कचौरी मठरी पापरि गुलिया गोझा मिसरी डारे ॥  
और अनेक भाँति के व्यंजन कनक कटोरन अग्र सुघारे ॥

( ८४ )

॥ राग मगल ॥

अग-अंग करि शृंगार सखिय सब साथ मे ।  
पूजन बलि सिय सामु प्रेम रस राग में ॥  
पूजन के सब सौज साजि नियो धाल में ।  
गावति नृत्यत चली सखिय उमंगत में ॥  
पहुँची सामु निवास अग छवि को कहै ।  
कौटिल रमा प्रकाश सिया छुनि अंग सहै ॥  
देनि सामु अति प्रेम बातसल रस भरे ।  
भरि अंजवार उठाव सेह निज हिय धरे ॥  
मस्तक को करिधान बलैया सेह के ।  
इक टक मुख छवि निरनि अपनपौ भूलिके ॥  
सामु गोद ते उतरि सीय पूजन करी ।  
पोष्य भाँति विधान प्रेमरस में भरी ॥  
सामुन दई बसोस बधू अनुदिन बढ़े ।  
प्रीतमसंग अनुराग कबहुँ छिन ना घटे ॥  
गग जमुन महि रहै जगत या ना रहै ।  
बचल रहै अहिवात सिया पिया साथ है ॥  
पूजन करि सिय सामु आइ निज महल में ।  
प्रीति करि आनिग अग्र सिय टहन में ॥

( ८५ )

रघुवर मानु महल को जात ।  
भरत लखन रिपुदहन साथ नियो और सखन के जात ॥  
बँठ मुमग मन्त्रमुग्ध माता गिर पगिया क्षमकान ॥  
मगलिन गात्र शृंगार मनोहर सगन गंग बतरात ॥

धनुष बान कर मे सुठि सोहत अग लखि मदन लजात ।  
 मातु महल के पौरी पहुँचे तुरग उत्तरि चहुँ भ्रात ॥  
 मातु समीप बैठि अनुजन युत करि प्रनाम नमि गात ।  
 गोद बिठाइ लई कौशिल्या मुख भूमत हरपात ॥  
 बालक बत करि करि के चेष्टा मातु गोद हलरात ।  
 जननी देखि देखि सुख फूलें आनन्द उर न अमात ॥  
 बहुत भाँति पकवान मिठाई निज कर कमल खिलात ।  
 करि कलेउ अम्बा प्रनाम करि सग सखन सब भ्रात ॥  
 अग्रस्वामि निज महल पघारे प्यारि सपनि भरि गात ।

( ८६ )

॥ राग ललित ॥

मुकुट उद्योन होत, दिन दिशितैं, ब्रह्म काल नहिं पावत ब्रह्म बित ।  
 आतुर अमर अगमनैं धावत रामचरन बंदत निद्रागत ॥  
 उठि आवत जो जही तही ते भोर भये हेल परसन को ।  
 भ्रामक भोर भुली ऋषि सध्या दिव वासी आये दर्शन को ॥  
 निबसत निकर असुर सुर नर मुनि कोट घोष जय घोष अपार ।  
 अग्रदास बलि पादपीठ पर बढी वेद करत कै बार ॥

( ८७ )

चचल नारि तुम्हारी कीरति दशदिशा को धावत ।  
 सुर नर असुर लोक लोकन मे रघुपति तुव यश गावत ॥  
 घर घर बार फिरति कुलटा ज्यो निकट नाहि मुचि पावत ॥  
 बिसद बिसाल जसहि विस्तारत यह अचरज मोहि आवत ।  
 पतिसत प्रण छोडे है जसपि भवही याहि मुहावत ॥  
 सतन जीवन मूरि सदाही अग्रदास जिय भावत ॥

( ८८ )

अकरन न्याय कियो यहि घाता ।  
 अति ही चतुर सृष्टि रचना को अग्र मोच समुञ्जन अति घाता ॥  
 फणिपति रघुपति को अस मुनि कै जोषे मूढ हुनावत ।  
 फूट जाय ब्रह्माण्ड खण्ड सय बहुरि करत दुम पावत ॥  
 याते उरय श्रवण बिन निरजे जगत भग डर आवे ॥  
 विमद श्रुत श्री अग्र स्वामि के कौन न घीव हुनावे ॥

( ८६ )

चौसर खेलत रसिया लाला, प्यारी सग मुख आल ।  
 सारी फल जरिदार मखमली स्याम पीत सित लाल ॥  
 पासा हीरा के अनि मुन्दर युग दल सखि कर चाल ।  
 श्री प्रसाद प्यारी दिमि चातुरि चारुशिला उत बाल ॥  
 दम्पनि टोल हूँ गहि मोटी कौतुक कर सिय लाल ।  
 चतुराई बिच चोरत खेलत दोऊ नैन बिसाल ॥  
 प्यारी हूँसि प्रीतम को हेरत कर से न पासा बाल ।  
 दगि लाल ठगवण मे रहि गये कुच बिच इन्द्र सुजाल ॥  
 भूनि गये चतुराई आपनि पीत लई सिय बाल ।  
 हारि लाल गिय अधर भूमि नई अग्र धूर्त बडे राल ॥

( ६० )

कीर निशा की कहत बेलि ।  
 गुरु जन मुनत सतुच सीता के भूषण बापि बून दइ मेलि ॥  
 दारूयो व्याम बोज कह्यो भुजो सो बदिहीं आन्यो जो स्वाद ।  
 मुख सम्भ्रम में पर्यो विभापनि भूलि गयो पूरब अनुवाद ॥  
 मागरि नारि उक्ति यह उपजी वैदेही बर राज कुमारि ।  
 अग्रजली कह अचरज नाही सखी रीति रहि बदन निहारि ॥

( ६१ )

अगत अपत रघुनाथ नाम सब राम जपत सीता को मुमिरन ।  
 रामचन्द्र को ध्यान धरत मुनि बसत आनकी रामचन्द्र मन ॥  
 शिव विरचि के धनुषधरन धन रघुवर के मैथिली महा धन ।  
 परमहंस कुल राम अवन भर अग्रस्थानि इक पत्नी को पन ॥

( ६२ )

॥ राग सनित ॥

बदनार्चन पर अनि-अनि कियो प्यारी ।  
 कृद इदु बिद्रुम तु बिम्बमिनि मीर मृगपीन मखन छवि हारी ॥  
 माधिका कीर तिम पुहुट दाहिम दसन हसन बिगसन कमल बहा करे सारी ।  
 नाव दोरत मृदुट भौह रात्रीन बर, भुदुटि भर बाप मनमय सत हारी ॥  
 बिनुष निमुवन पाठ मुभय मुकनोत तर, आनद बड बिधिना संवारी ॥  
 राम मुगन मनुबेन म्याधिनि अग्र आनकी नारि बर नृप दुनारी ।

( ६३ )

॥ राग भैरव ॥

देखु रामो मृगया भेमा को राम सभा चने जा ।  
 भरत सगन रिपुगूदन सग में सगन सोह बहू बाज ॥  
 चतुरगिनी सेना सग मीन्दे दुदुभि छति पहराज ॥  
 मगसित गुन्दर भाज मोहर सनि दुखि वाम सजाज ॥  
 धनुष धान वरम मुठि गुन्दर पटिभाषा चमचाज ॥  
 क्षपल सुरग नबावत होमि होमि गोभा बरति न जान ॥  
 अग्र नयन मर मारिा बेधा निरे जान मा मान ॥

( ६४ )

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ।  
 अवधपुरी सरयू छट रिहरैं दमरघ प्रान प्यारो ॥  
 श्रीट मुकुट मकराट कडल पीताम्बर पट बारो ॥  
 नयन विशाल मान मोनिन की सनि तुम नेक निहारो ।  
 अग अग रूप अनूप बन्धो है पित मे टरत न टारो ॥  
 माधुरि मूरति तिरगो सजनी कोटि मानु उजियारो ॥  
 जानकि नायक सब गुणदायक गुण गण रूप अपारो ॥  
 अग्रजनी प्रभु की छवि तिरगो जीवन प्राण हमारो ॥

( ६५ )

श्री राघो जी की आज सजी असवारी ।  
 दमरघ राजकुमार लाहिले सोमा न्यारी न्यारी ॥  
 राजे सुरग रग राजन के भीर गजेन्द्रन भारी ॥  
 जगमग शून जरी की सोहैं रतन जहाज अवारी ॥  
 धूम गरज सो भरत जी आये श्री रघुनाथ निहारी ।  
 होत कुलाहल सखन लाल के रिपु गूदन छवि न्यारी ॥  
 हरये देव सुमन बहु बरये जय जयकार उचारी ।  
 ब्रह्मादिक दर्शन को आये मोहत वदन निहारी ॥  
 रति ससि कोटि वदन की सोभा चन्द्रकला उजियारी ।  
 अग्रजली प्रभु की छवि निरखे चरन कमल बलिहारी ॥

( ६६ )

अत्र देखो राम जी ध्वजा पहरानी ।  
 झलकत दान फरकते नेजा गरद उड़ी अममानी ॥

लक्ष्मण वीर बालि सुत अमर हनुमान अगवान्नी ।  
 कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण त्रिभुवनपति से ठानी ॥  
 जा सागर को गर्भ करत है तापर सिला तराई ।  
 तिरिया जाति बुद्धि की ओछी उनकी करत बड़ाई ॥  
 भुव मण्डल से पकरि मगेहों ओ तपसी दोउ भाई ।  
 हनुमान से पायक उनके लक्ष्मण से बलि भाई ॥  
 जगत अग्नि मे कूदि परत हैं कोट गने नहि खाई ।  
 मेघनाद से पुत्र हमारे कुम्भकरण बलि भाई ।  
 एक बार सन्मुख होइ लरिहैं युग-युग होत बढाई ॥  
 कहति मन्दोदरि सुनु पिय रावण तोहि मम एक न भाई ।  
 राति को सपना ऐसो भयो है सोने कि लक लुटाई ॥  
 बन्दर एक लक त्रिच आयो घर घर घूम मचाई ।  
 बाग उलारि समुद्र मे डारे लका आगि लगाई ॥  
 गरबी रावण गरब न कीजै गर्वहि लक लुटाई ।  
 जाय मिलो रघुनाथ कुबर से लक बचल हो जाई ॥  
 इक लख पूत सवा लख नाटी भीत आपनी ठानी ।  
 अग्रस्वामि गढ़ लका घेरे अजहूँ न चेत्यो मानी ॥

( ६७ )

जब कर राधो जी बान धरेंगे ।  
 सग रघुनाथ भीर बनधर के कपिल कोपि चढ़ेंगे ॥  
 त्याग घटा घन झुकि अधिवारी सूरज गगन छिरेंगे ।  
 पचरग बाण राम लक्ष्मण के सागर तीर ह्वैये ॥  
 जा सागर को गर्भ करत है तापर सेतु धरेंगे ।  
 आनन्द हनुमान नील नल महाधुनि गर्ज करेंगे ॥  
 रात भवानक सपना देखी लका कोट लुटेंगे ।  
 नाम विभीषण बन्धु तुम्हारे रघुपति जाय मिलेंगे ॥  
 मेघनाद से पुत्र तुम्हारे वे नहि धीर धरेंगे ।  
 कुम्भकरण बस बन्धु तुम्हारे रण मे जूझ भरेंगे ॥  
 महिरावण से जोधा भरिहैं लका नास करेंगे ।  
 सहस्र योगिनी भगन गावैं खप्पर चारि भरेंगे ॥  
 दशशिर और भीम भुज तुम्हारे एरुहि बाण हरेंगे ।  
 जो नारद मुनि मुखे मापी भाखत राम करेंगे ॥



कहत मन्दोदरि सुनु पिय रावण रघुबर नाहि फिरैये ॥  
अग्र स्वामि को ले मिलो जानकि किहु बिधि बिघ्न टरैये ॥

( ६८ )

हे ! यान चढे रघुनन्दन आये हनुमत चवर दुरायोरी ।  
जामवन्त सुग्रीव बिभीषण अरु अंगद मन भायोरी ॥  
करत पुनीत देव सब हरये दण्डक बन प्रभु आयोरी ।  
देखि सिया दण्डक बन शोभा ऋषि बिचरै भय त्यागोरी ॥  
चरित पुनीत किये रघुनन्दन अवध निकट हरि आयोरी ।  
उतरे पुष्पक निकट सरयू के रघुपति आज्ञा पायोरी ॥  
चलत तृपित अति गये सकुच मानो मस्त जलद जल लायोरी ।  
व्याकूल अध अवध जेहि कारण उदित अरुण होइ आयोरी ॥  
होत अवध आनन्द बधाई सखियन मगल गायोरी ।  
सुख अवलोकि कोक जिहि लाजै रघुपति पुरी सुहायोरी ॥  
चर अरु अचर हर्षवत जहू तहू रघुपति कीरति गायोरी ।  
द्विजन सहित आये नृप द्वारे अग्रदास गुण गायोरी ॥

( ६९ )

सीताराम अवधपुर बासी नित वरसन उठि पावै जी ।  
रघुवर लक्ष्मण भरत सत्रुहन शोभा बरणि न जावै जी ॥  
सग सखा सरयू तट बिहरै राम लखन दोउ भाई जी ।  
सुन्दर बदन कमल दल लोचन उर वनमाल सुहाई जी ॥  
अवधपुरी नर नारी निहारे निरखि परम सुख पाई जी ।  
मातु कौसिना करत आरती अग्रदास बलिजाई जी ॥

( १०० )

(आवत) रघुनाथ अनुज सग लीन्है, खेल किये चौगाने ।  
अस्व सुगज रथपागे, बने विचित्रे वागे,  
अरुण पीत सित चवर छत्र धर बाने ॥ खेल० ॥  
राज कुमारी अति सुकुमारी झरोखन झोकति बिबिध—  
मनोरथ ठानति, करत नयन मधु पाने ॥ खेल० ॥  
कोउ बाखत जन, कोउ बाखत मन, कोउ बाखत धन  
निरखि नयन छवि, पुष्पाञ्जलि वरपाने ॥ खेल० ॥  
मगल भाजन लै नीराजन, सत्र सुखसाजन प्राण  
मिले अनु, जननि निरखि मन माने ॥ खेल० ॥

कियो प्रवेश सदन सीता के कलपवेलि तरु रग  
मोता के, अनग केलि रस रहस अग्र गुण गाने ॥ खेल० ॥

( १०१ )

करि सिकार आये रघुनन्दन सग सखन सब भ्रात ।  
पितु समीप मे जाय जुहारे सुत लखि अति हुलसात ॥  
निज कर कमल उठाय गोद धरि जूमत लखि भय गात ।  
अति दुलार से पूछत पुनि पुनि खेटक के कुसलात ॥  
कहि सुनाय खेटक की बातें सुनि सुनि पितु पुलकात ।  
पितु प्रणाम करि निज बैठक मे आय गये रसरात ॥  
रतन जडे चौकी पर बैठे बैठक मे सब साय ।  
यम सीकर मुख पर राजत जनु कमल कोप हिम पात ॥  
चहु दिसि सखासौंज सब लीन्हे सब सुन्दर सुठि गात ।  
कोठ मुख ऊपर मधुर पवन करि निरखि-निरखि बलि जात ॥  
बहु मेवा पकवान मिठाई सुरमी जस सितलात ।  
भरि भरि पारन मे सजि सजि के अन्न भेजि बहुभाति ॥  
भ्रात सखन सुत पावन लागे हँसि हँसि बहु बतरात ।  
एक-एक सखन से ब्रूझत प्यारे घर घर के सब बात ॥  
करि भोजन अबवन को करि के पानलात मुसुकात ।  
गान वाद्य होवन लागे पुनि आनन्द काहि नहि जात ॥  
पुनि प्यारी सुमरन हो आई मिलन हिये उमडात ।  
गान वाद्य को करि समाप्त पिय शीघ्र चले अकुलात ॥  
अग्र स्वामिनी से मिल के हिय अनि कीन्हीं सितलात ॥

( १०२ )

रघुनन्दन प्रभु आवैं ।  
उपवन वाग शिकार खेलि के चढे तुरग नचावैं ॥  
घोट झुकुट मकरावृत कुडल उर मणिमान सुहावैं ।  
कटि पर सट पट पीत बिराजै कर गहि बाजि उहावैं ॥  
चतुरंगी सेना सग सोहनि पचरगपुज फहरावैं ।  
बज्रत निसान भेरि सहनार्द्र गदरा गगन महँ जावैं ॥  
बदीजन गधर्व गुण गावत भावत प्रभुहि रिझावैं ।  
सुरार मुनि ब्रह्मादि देवता इन्द्र पुष्ट पारि सारै ॥

अवधपुरी कि बघूटी अटा चढ़ि निरखि परम सुख पावै ।  
मातु कौसिला करत आरती अग्र अली बलि जावै ॥

( १०३ )

॥ राग—टोडी ॥

देखुरी मीके रघुनन्दन ।

सीता कहति सखी अपनी सो रसिक राय सिर मीर स्याम तन ॥

दृष्टि चलत नहि हत उत सजनी रुप रासि सो भोमन फन्दन ।

अग्र स्वामि सो मोह बढ़यो अति ज्यो चकोर चन्दहि अभिनन्दन ॥

( १०४ )

प्रीतम मग जोहति सिय प्यारी ।

कनक महल के खिरकी पर हूवै सखियन युत निरखति मुकुमारी ॥

रहि न जात प्रीतम बिनु देखे गुणन सुमिरि पिय बिरह निधारी ।

छिन-छिन बिरह के उठत खुमारी बिकल प्राण मनु मीन बिचारी ॥

कोइ सखि कहि पिय आवत हैं येह आतुर हूवै तिहि ओर निहारी ।

तेहि छिन प्रीतम आय अग्रअलि भरि अकबार मिली सिय प्यारी ॥

( १०५ )

जेबत कुँवर रसिक रघुनन्दन रस आगरि नागरि सिय प्यारी ।

छप्पन चार छऊ रस उपरस भोग सौँज सुखकारी ॥

चितामणि चौकिन पर कोमल दुग्ध फेन सम सारी ।

तिन ऊपर रुचि जानि युगल की रचना न्यारी न्यारी ॥

पल्लव फल (रसमय) अकुर कन्दावलि मेवा मधुर सुधारी ।

चटनी निकर अचार मुरब्बा अमित भाँति तरकारी ॥

परमति परम किसोर नागरी जानि युगल रिझवारी ॥

सुरभिवन्त सीतल सरयू जल मन्त्रित मंगल शारी ।

रस भीनी बतियन बिरमावति प्यावति निजकर बारी ॥

अचल त्रिजन कमल कर सारति अति मृदु मधु बयारी ।

दम्पति एक यार निज मंदिर जेबत मोद कद मृदुमारी ॥

अग्रअली के जीवन दोऊ तृण चोरति बलिहारी ॥

( १०६ )

रसिक दोउ सयन कुँज को जात ।

भोजन करि सुचि पान सुचिचित मद मद मुमुकात ॥

आस पास सब सहचरि राजें सुमय मनोहर भात ।

पहुँचे सयन महल के भीतर सोभा बरनि न जात ।  
अति सुगन्ध चहुँदिसि मह महवत भवर झुड मढरात ।  
बैठे पलका पर दोठ प्यारे करत व्याग रस बात ।  
कोइ सखि मधुरे बीन बजावत गान करत स्वरसात ।  
पुनि दोठ मिलि अलसान लगे सखि परदा करि चहुँ कात ॥  
पौढ़ि गये जब दोठ पलका पर अग्र चरण मुहरात ॥

( १०७ )

देहरी धँसत जब जेहरी देखि मन डगि गयो उठो उरनाई ।  
अति आदर सो मगि अँकवारी प्राणनाथ पलका पधराई ॥  
आगत स्वागत बारि बारि तन बीरि सुहाय बनाइ सवाई ।  
बार बार आलिंगन चुम्बन मनहु रक निधि पारस पाई ॥  
वचनमृत सो सीचि विविध बिधि जनक कुँवरि रघुराई लड़ाई ।  
जालरघु सो निरखि अग्र अति कामकेलि मुख बरनि न धाई ॥

( १०८ )

दिवस भवि सोइ उठे सिय प्यारे ।  
उपायन के समय समुझि सखि चहुँ दिति ते जुनि सारे ॥  
मधुर स्वरन गावत सुरसावत मधुर यत्र करधारे ।  
अलसाने उठि बैठि लटपटे असमुझा दोठ धारे ॥  
अग बसन सजि सेज तरे पग पाँवडि मलमल धारे ।  
मुखमन्त्रति पटपौछि शृंगारति अलक सुधनि धुँधवारे ॥  
असन बसन भूपन मनिकारे आरति पलग सुधारे ।  
म्योछावरि तृण तोरि आरती करत मुगान उबारे ॥  
करि आरती प्रणाम अग्र दोठ दम्पति जैति उचारे ।  
उतरि पलंग ते बाहर बैठे दिव्य सिंहासन प्यारे ॥

( १०९ )

दिवस उठि सेज रहे अलसाय ।  
आरति करि पुनि उतरि पलंगते दिव्य सिंहासन आय ॥  
मनिसारी अँचबाय सखी मज निज अचल अगुछाय ।  
रतन कटोरन मेवा मोदक निज कर प्रियन पवाय ॥  
मिश्रित कद अषाढ पद मुरमित सखिसारि पिवाय ।  
अँचकावति हति हेरि बटासन सुधनि निरखि बनि घाय ॥  
अंतर पान माला उर अलखनि अग्र मुखर मुखाय ॥

( ११० )

बाग बिहार

बाग बिहार करन चये प्यारे ।

श्री गृपनन्दन जनकनन्दनी रूप गुणन में दोउ उजियारे ॥

सखियन करि शृंगार अग-अग पुनि गिय प्यारी के शृंगारे ॥

यूय यूय सखि चली सग मे ह्वै गज रथ ऊार असवारे ।

कोउससि सारपरछन किये हैं सभ्रर्चवर बोउ लिये करधारे ॥

अपर सखी लिये बहुत सौंज कर पढ़ेचे जाय बाग के द्वारे ।

सखियन युत गज रथते उतरे बागेश्वरि सुनि दौरि सिधारे ॥

यूय अनेक सग सखियन लिये पूजन के सामा करधारे ॥

पट पाँवडे दै भीतर ले गई रतन बेदिका पै बैठारे ।

धूप दीप आदिक विधि करिके सखियन युत पूजे दोउ प्यारे ।

पुनि दोउ चले बाग बिहारन कौं रोसन पर दोउ किरत सिलारे ।

कहुँ दोउ पुष्प उतारि कमल कर बाक बाक धरि न्यारे न्यारे ॥

रचि रचि भूषण विविध रंग के निज निज चतुराई बिस्तारे ।

प्यारी पहिरावनि प्यारे को प्यारे प्यारी के अंगधारे ॥

मोर हंस गुक सारि पढावत मृगी झुण्ड रस भरित अपारे ।

कुजल मधि कहुँ छूट फुहारे ग्रीष्म पावस सभ सुखसारे ॥

कुजेश्वरि फल डेर दिखाई पावत प्रेम अपार ।

फल रूपक हसि अग यखानत लपटी क्षपटि कहुँ कुनिहारे ॥

कहुँ पूजन के गैद उछारत कहुँ जसकेलि करें मतवारे ।

विविध बिहार बाग बन कुजन करि पुनि अग महल पग धारे ॥

( १११ )

हेम महल के सुभग कुँज मे प्रिया प्रेम लम्पट सुनुवारे ।

कवहुँ इकटक मुखछवि निरखत श्रमसीकर लखि करत बयारे ॥

कवहुँ निजकर अनक सवारत अघर चूमि अतिहोत सुखारे ।

कवहुँ निजकर चरण कमल सेइ मुख निरखत तामैं हँसि प्यारे ॥

निज कंगल पर राखि प्यारि पद भावक चित्रको करत बिचारे ।

निजकर कमल कठोर समुझि जिय घर घर धरकत हिय भयमारे ॥

अस न होय प्यारी के पद तल दरकि जाय लगी हाथ हमारे ।

चूमि चूमि निज नयन लगावत डरि डरि चित्रमहावर धारे ॥

रूप देखि निज दृष्टि लगन डर बारि बारि जल पियत दुलारे ।

हृदिदोष अपने पर लेके बारम्बार होत बनि हारे ॥  
 कबहुँ पुष्पविभूषन रचि-रचि पिय प्यारी अंग करत शृंगारे ।  
 प्रिया रूप मे अति असक्त हूँ होन चाहत नहि पलकहु न्यारे ॥  
 समय जानि गुरु नारिन आवन अति क्लेश युत दुरत दुखारे ।  
 प्रिया प्रेम परतन स्वामिलखि अग्र अती तन मन धन बारे ॥

( ११२ )

जय जय रघुनन्दन चन्द रमिक राज प्यारे ।  
 अग-अग छवि अनम कोटि चारि बारे ॥  
 विहरत नित सरयु तीर सग सोहैं सखिन मीर,  
 सिया अस भुजा मेलि अवध के दुखारे ।  
 कोई सखि छत्र लिये व्यजन लिये कोई,  
 युगल सखी चँबर लिये करत प्राण बारे ॥  
 सुन्दर सुकुमार गात पुष्पमाल सवुच जात,  
 परघत भयभीत हात रूप के उखारे ॥  
 नख सिख भूषण अनूप यया भोग यया रूप,  
 कोटि चन्द्र कोटि भानु निरन्तर दुति हारे ।  
 मन्द मन्द मुमुकुरात प्यारी सग करत बात,  
 देख देखि अग्र अती तन मन धन बारे ॥

( ११३ )

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर ।  
 बिपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि चमकत चहुँ ओर ॥  
 चक्राक्षर रास मण्डल रजि राग रागिणी के कलसोर ।  
 बिमला चन्द्रकलादि रंगिणी वीण मृदंग लिये करघोर ॥  
 चार्छन्मला, सुभगा हेमा लिये भुरलि मुखग किशरी जोर ।  
 चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति जेमा खरपह भरत रसबोर ॥  
 मदन कला करतात बजावति मारपी नन्दा टकोर ।  
 पियसिर सुभग सुनीति त्रिरात्रे चन्द्रिका सीता के सिर चोर ॥  
 चन्द्रहार प्यारी उर चमकत पिय उर भोजिन माल उजोर ।  
 कोटि कोटि रति काम बिमोहन नटवर देष भ्याम अक्ष मार ॥  
 रूप माधुरी कहि न परत हैं अग अग छवि के उल्लहिघोर ।  
 कर से कर दाऊ मिलि घारे नयनन सैन चलत दुहुँ ओर ॥  
 कबहुँ अथर रस पियत परसपर रस मतवारे दोठ चितबोर ॥

प्यारी हाव पियामन करपत पिय के भाव प्यारी निज ओर ।  
दोउ रससिन्धु भगन रस लम्पट अग्रजली नहि चाहत मोर ॥

( ११४ )

प्यारी तेरे नयना मदनसर बारी ।

रतनारी फारी कजरारी चन्द्र बदन पर अति छवि घारी ॥  
चितवनि बाकी तिरछी प्यारी भमहिय को घायल करि डारी ।  
मीन कमल खँजनदुनि हारी सब विधि प्राण आधार हमारी ॥  
हसनि नटनि अरु अग भरोरनि देखि देखि मे जाउ वसिहारी ।  
रूप उजागरि अग्र तियन में हौ तुम श्री मिथिलेस दुसारी ॥

( ११५ )

प्यारे मुखचन्द विलोबहु सजनी ।

क्रीट मूकुट मकरावृत कूडस नयन कमल दल अति छवि छवनी ॥  
नासामणि सु अधर पर राजन मनहुँ कमल दल शुक उदवनी ।  
कल कपोल पर अलकै छूटै चद उपर मनु बसि बहु अहिनी ॥  
कटि कछनी काछे बने आछे पग मे नूपुर अति मन हरनी ।  
मुरनि दुरनि अरु हसनि नटनि मे कोटिन काम करो निबछवनी ॥  
रूप उजागर अग्र स्वामि मेरे मम हिय क है प्राण सुजिवनी ॥

( ११६ )

आकरप्यो जहू तहँ नर नारी ।

सब सखियन मन पिय अग घारी करो मनोरथ रुचि अनुसारी ॥  
सबके रुचि लखि के सिय प्रीतम घार्यो बहुत रूप मनहारी ।  
जस जस जाहि मनोरथ रहेऊ तस तस करि सब कियो सुखारी ॥  
अस्थावर जगम जो जहू लौ आनन्द मुरछा मे नर नारी ।  
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी ॥

( ११७ )

रसिक दोऊ सरयू मूल चले ।

राम श्रमिंत हूँ सग सखिन ले दम्पति दियभुजगने ॥  
करन लगे जल केलि विविध विधि दोउ रसरग रसे ।  
प्रीतम द्विधि प्रिया पद गहिके ऐचि लेत जल तले ॥  
प्यारी कर कमलन ताडन करि जल पिय आखि मले ।  
प्रीतम के गति भूलि गये सब दोउ कर आँखि मले ॥  
काहू के कटि बसन छोडि पिय तट पर आय चले ।

बहु सखि ने अनि लाज अमित हूँ जल से नहि निकले ।  
 पुनि सिम जू पिय मे पट लेके दइ सखि हाथ तने ।  
 करि जलकेलि प्रिया प्रीतम दोउ जल से आय धले ।  
 करि शृंगार अग्र सखियन युत आय गये महले ॥

( ११८ )

श्री सरयू तट वन असोक भवि रास रच्यो श्री अवधि विहारी ।  
 चहुँ दिशि मणिमय बोट बिराजे मध्य कुब बहु न्यारी न्यारी ॥  
 ताके चहुँदिशि पादप राजें नै सम्पति युत अति रुचिकारी ।  
 ता आगे बहु लता कुञ्ज हैं जाति-जाति के न्यारी न्यारी ॥  
 ताके चहुँ दिशि कृत्तिम पादप जाति जाति मणि के छबिकारी ।  
 ताके चहुँ दिशि मोतिन झालर मध्य मे रचना बहुत प्रकारी ॥  
 मध्यभूमि बहु रंग मणिन के बेली बूटी बिबिधि प्रकारी ।  
 तापर जाजिम स्वेत पिछे हैं चन्द्रकिरनि के अति छविहारी ॥  
 तामधि सिंहासन अतिसुन्दर स्वेत मणिनमय अति सुठिकारी ।  
 तापर बैठे युगलबिहारी श्री लृपनन्दन जनक दुबारी ॥  
 गौरम्याम छवि को कवि बरणे कोटिकाम रतिदुनि सखिहारी ।  
 प्यारी के तन सुभ्र सुसारी प्यारे अग जामा झलकारी ॥  
 प्यारे उर मोतिन की माला चद्र हार सोहर उर प्यारी ।  
 कठ पोन प्यारी मल राजत पिय गल गोल गोप बिचित्र सवारी ॥  
 राहुन मे अगद सुठि सोहैं कर मे पहुँची अति दुति फारी ।  
 कर्णपूज प्यारी श्रुति शोभित पिय श्रुति कुण्डल मकरावारी ॥  
 प्यारी के शिर मणिन चन्द्रिका पिय मिर क्रीट भानुमदहारी ।  
 त्रिमलादिक सखि चहुँ दिशि सोहैं मध्य नटन लागे पिय प्यारी ॥  
 कोइ सखि घीण मुचग काहू नियो जलज तूमेरा कोइ कोइ धारी ।  
 बहुत सखी नियो बहुत यत्र है येइ येइ कर नाचत बहु नारी ॥  
 पम पम नूपुर चरनन बाजे मनुमोहनी मत्र ध्वनि फारी ।  
 गावति सब रागन रागिनि मे स्वर सुनि इन्द्र बधू मनहारी ॥  
 जन प्यारी प्रीतम मिलि गावत तायेइ तायेइ औरन प्यारी ।  
 स्वर्गसात पाताल व्यापि गयो परमानन्द बहो पीनारी ॥  
 महारास सब दिशि मे छाव्यो आकरप्यो जह उह नर नारी ।  
 सब सखियन मन पिय अगधारी करो मनोरथ रुचि अनुमारी ॥  
 सब के रुचि लखि के प्रिया प्रीतम धार्यो बहुत रूप मनहारी ।



जस जस जाहि मनोरथ रहेत तस तस करि सब किये सुखारी ॥  
अस्थावर जगम जो जहलो आनन्द मुख्या मे नरनारी ।  
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुनारी ॥

( ११६ )

रुठो जी राम गुशाइ भले भले ।  
पायो राजपाट दसरथ को गहि लीनो ठकुराई ॥  
जाय कहूँ मिथिलेस सलीखु से निकस जाय गुमराई ॥  
अग्रअली के सिर पर चहिये श्री सिरध्वज की बाई ॥

( १२० )

प्रभु जी हमको आज्ञा दीजै ।  
यज्ञ पूर भयो पुण्य तुम्हारो नृप को दर्शन कीजै ॥  
सुनहु आज मिथिला पुर तें इक आयो है परचारी ।  
सीय स्वयंवर अल्लिलनरेण्वर कौतुक ह्वै है भारी ॥  
पगति रथ ऐहैं पुनि बहु सह हूष है बडो समाज ।  
अग्र स्वामि दोउ हस्त कुँवर धर सग चले ऋषि राज ॥

( १२१ )

सखि मैं सपनो सुन्दर पायो ।  
इन्दु बदन राजिव दल लोचन गाधि सुवन सग आयो ॥  
स्याम करन तन कोटि भानु दुति सोभा सब जग छायो ।  
मोद भयो मिथिलापुर बासी मो मन अधिक सिरायो ॥  
रघुकुन कुँवर अयोध्या नायक भुजवल धनुष चढायो ।  
नृप सब सभा ठगी सी ठाढी गर्बिन गर्भ नसायो ॥  
पूरन भयो पिता प्रणमय सखि सब सदेह नसायो ।  
अग्र स्वामि अरविंद बधु उदे मिलिहैं पति मन भायो ।

( १२२ )

येरी मैं हूँगी अनुरागि चरण की ।  
अकुश कुलिश कमल ध्वज चिह्नित, अरुण वरण अप तिमिर हरण की ॥  
जो पद परमि सरस दुरलभ गति होत भई ऋषिराज घरणि की ।  
नूपुर नदन मदन सुनि सज्जित राजन जीवन रसिक जनन की ॥  
अग्र अली सोइ सुभग सरोरुह नखत कान्ति मणि माणिक बरन की ॥

( १२३ )

सौमित्रो कहे सुनहु श्यामधन हूँ जानत वेदेही को पन ।  
राजन की यह नीति वाम बहु दासन निखि नहि आवे ॥  
यह डर निहडर जानकी रघुपति रामहि हृदे बसावे ।  
रात्रिब नैन अनुज के वैन मुनि ताको यश सब जान्यो ॥  
यक पतनीव्रत लियो रीझि के अग्र भूमि परिपान्यो ॥

( १२५ )

॥ राग सारंग ॥

जब रघुपति कर धनुष उठायो ।  
पुलकत तन रोमाच गाधिमुत पुरति प्रेम भरि आयो ॥  
को बह नमित न मुक्ष भूपति कर जानकि मन तरसायो ।  
तोरेयो धाप ममा मे तिहि शिणि संशय सबै नसायो ॥  
भगन शब्द मुनि जामदग्नि मन अहकार मुवहायो ।  
तोपे अमर अवनि जनु फनिपति अग्रदाम मन भायो ॥

( १२५ )

मगल आज जनकपुर माहीं ।  
पाणिग्रहण सीता रघुपति को नरनारी सब फिरत उछाहीं ॥  
मण्डित द्वार चौहटा धीपिन दिव्य दुकूलनि घाम उछारैं ।  
अति आनुर पग लागत न अवनी कहूँ गज कहूँरथ अथ गृहारैं ॥  
सौम्य सेहरो रामचन्द्र के अगवानी करि तोरन लाये ।  
मम पुहुप मुक्ता ले गोखनि नवल बधू अजलि भरपाये ॥  
मण्डप तर बैठाय पटा दोठ वेद विहित सब कर्म कराये ।  
साखोच्चार दुहूँ कुलगुरु करि कुँवरि कुँवर को हाथ गहाये ॥  
उतरासन की ग्रन्थि परस्पर दृढ बधननि वामें अग लीन्हो ।  
आगे प्यारी पीछे प्रीतम जातवेद कल भाँवरि दोन्हो ॥  
भूरि दान दे तोषि सकल सुर दुलहिनि सग भीतर बैठाने ।  
परदा ओट समागम पहिनी अग्रदास दासी सुख जाने ॥

( १२६ )

हिम श्रुतु हर्म गर्म मनि को है ।  
कीमसार मखमल मिलमन्ह पर सिय पिय परिकर सोहै ॥  
ले कोठ बीज प्रवीण सहचरी राग तरंग उमगो है ।  
अग्र स्वामि मुखनिधि सीता पति रामि रमाय मन मोहै ॥

नील पीत वर बसन लसत तन उठत सुगन्ध झकोरे ।  
सहचरि हरपि झुलावति गावति छत्रि निरखत वृण छोरे ।  
मन्द मन्द मुसुकात छवीलो रमकत थोरे थोरे ।  
अति सुकुमारि अग्र की स्वामिनि हरपि गहति षट छोरे ।

( १३५ )

झूलत राम राजिव नैन ।  
जनकजा सनमुख बिराजति उडित ज्यो घन नैन ॥  
अतिहि झूलत मनहि फूलत रहसि तोपत नैन ।  
लाल के उर लागि शोभा निरखि करपत ऐन ॥  
परसपर अनुराग दोऊ बढत मधुरे बैन ।  
जाल रघुनि निरखि बनिना अग्र उर सुपदन ॥

( १३६ )

झूलत सिया राजिव नैन ।  
रतन जडित हिंडोलना सखि राम सुख के ऐन ॥  
स्याम अंग पर गौर झलकत दामिनी घन नैन ।  
मैथिली रघुबीर शोभा निरखि लाजत नैन ॥  
नाम पिय को लेहु नागरि सब सखिन मन चैन ।  
जानकी नहि लेत मुख सो देति लोचन सैन ॥  
परसपर झूलत झुलावत बढत मधुरे बैन ।  
अवधपुर नित केलि दम्पति अग्र आनन्द दैन ॥

( १३७ )

हिंडोलना में काई झूलो राम सिया प्यारी सुकुमारी ।  
अगर चन्दन को बनो हिंडोरा मलयागिरि को पटा ।  
रेसम डोरि पवन पुरवइया बह सावन को घटा ॥  
प्यारी झूले लाल झुलावे भली बनी सजनी ।  
उडि उडि अचरा परत भुजनि पर डरपत शशिधदनी ।  
विपिन प्रमोद लता कुजन में श्री सरयु के उटा ।  
सिय प्यारी के झूलना वे निरखति अग्र छटा ॥

( १३८ )

दसरथ सुत अरु जनकनदनी चितवनि मे चित थोरे री ।  
नान्हि नान्हि बूंद पवन पुरवैया बरपत थोरे थोरे री ।

स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली :: १२३

हरि हरि भूमि घटा झुकि आई सूर्य सेत हिलोरे री ।  
उपवन बाग विहगम बोलें दादुर मोर चकोरे री ।  
हृयदन पयदल गजदल रपदल कोटि बने चढ़ैओरे री ।  
वाजत ताल मृदग शोष डप सखन की धनघोरे री ॥  
नागरि नाम लिवावे पिय को सियजू हंसि मुख मोरे री ।  
अग्रदास हरि रूप निहारे चरण कमल बलिहारै री ॥

( १३६ )

बले दोउ ब्यारू कुज थली ।  
करि बिहार झूला के दम्पति रघुवर जनकनन्दनी ॥  
रतन जहित सिबिका अति सुन्दर तापर लाल लली ॥  
बहुँ दिसि सखियन सौंज लिये हैं नाना रंग रली ॥  
पहुँचे ब्यारी कुज सुभग जहाँ मध्य सुरतन थली ॥  
करि सम्मान सखी कुजेस्वरी आनन्द भरि उछली ॥  
बैठाई रतनन चौकी पर पूजन करि सुभली ।  
नाना विजल कनकधारन मे अन्न धरी रसली ॥

( १४० )

सखी सब गैन भोग ले आई ।  
मेवा मिथी दूध मलाई और अनेक मिठाई ॥  
मुरभीपुत बिजन बहुतेरे धारन भरी मुहाई ॥  
पान पदारथ सुचि सुगन्धमय बहु औषधन मिलाई ॥  
पावत गुष्ट पुष्ट होइ जावे रास जनित अमहाई ॥  
बपकन में भरि धरि आगे में दम्पति के मन भाई ॥  
पावन लगे रसिक दोउ प्यारे करि-करि बिजन बढाई ॥  
हंसत हँसावत मखिन पवावति वातन में बिरमाई ॥  
करि भोजन अचवन पुनि करि के पान पाइ भुमुकाई ।  
सैन आरती अग्र करी जब पोढे पलग मुहाई ॥

( १४१ )

ब्यारू करत युगल रस भीने ।  
रधि रधि बिजन सखिया परोसे बहुत प्रकार नाम को गीने ॥  
हंसि हंसि पावत हैं पिय प्यारी रूप माधुरी सखि चित दीने ।  
प्यारे निज कर कमल कवच में प्यारी भ्रूष मे देत प्रवीने ॥

तैसेहि प्यारी नोपिय मुख में घास पवावति अति मधुरीने ।  
मिसरी बहुत मुगन्ध मिले जो दूध पवावति सखि कर सीने ॥  
करि ब्यारी अँजवाय सखी सब पान पवाय मुगन्ध भरीने ।  
दे गलवाँह प्रेम रँग भीने सैनकुज सुख अग्र नवीने ॥

( १४२ )

बैठे सुखपाल लाल आवत महल मे ।  
आगे आगे भीर भारी पीछे असवारसारी तहाँ मध्य रघुवर मदन गहल में ।  
धुनि-धुनि कलियाँ मे भेज बनायो चोदा चन्दन छिरको चहल मे ।  
पौढ़े दसरथ राज फुँवर वर अग्रअली निज दामि टहल मे ॥

( १४३ )

पौढ़िये रसिक जानकी रमन ।  
सर्व ऋतु के मोग यामे महल अति मन हरन ॥  
बिबिध रचना बनी जहँ-जहँ बिधि निपुणता हैंसन ।  
सेज रचना बनत कहि नहिं मनहुँ मनसिज भवन ॥  
पिया प्यारी ताहि ऊपर केलि कर मुख सदन ।  
यहइ आसा अग्र मल्लियन सुफल फुल सनि सलन ॥

( १४४ )

मुख सेज पौढ़िये राम सीता रबन ।  
रग रग सुवचिर सौरभ सौत्र बीटिका चित्र चंदवा बिबिध सुन्दर भवन ।  
रूप सुठि गुन कीक बिद्या कुसल रचना वचन बिदुष सुपिया पारस गवन ।  
जनकजा राजीव नैन सुमैन छबि लखि अग्रसहचरि जान अपर सो कवन ॥

( १४५ )

महल मे सोवत हैं दोउ प्यारे ।  
रतन श्रद्धित पतका अति सुन्दर भयन मनहुँ तन धारे ।  
ताके ऊपर विस्तर पय के फेन लजावन हारे ॥  
तापर पौढ़े युगल बिहारी हर रिपु कला सुधारे ।  
करत केलि नानाबिधि दम्पति सखियन नैन निहारे ॥  
हँसि हँसि बातें करत परस्पर वर्पत मोद अपारे ।  
अग्र स्वामिनी स्वामी दोऊ जीवन प्राण अधारे ॥

( १४६ )

सोये सेज प्रिया प्रीतम दोउ अतिसय करि निद्रा आधीन ।  
 यक्षकर्मद कँचुकी सिया उर ठामे भँवर भयो इकलीन ॥  
 वास लुब्ध को शब्द श्रवण सुनि सभ्रम राम-विलोकित बाम ।  
 रही पुष्प अवशेष हृदै मे सायक सपदि मारि गयो काम ॥  
 प्रेम बिकल परतीत न मानत बैदेही हित पावत खेद ।  
 अग्रस्वामि आधीन प्रिया के मिथ्या दुःख आयो तन स्वेद ॥

( १४७ )

चलो सखि सो गये राज किशोर ।  
 मणिन जडित को पलग मनोहर ताके छवि अति जोर ।  
 मिलि सखियन सब चरन पलोटत रस बस पिय घनघोर ॥  
 चौकीबाली सजग होइ रहियो लागे न कहूँ दग घोर ।  
 नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी होय न जेहि पग सोर ॥  
 मुभग सेज सियराम समन लखि ललचत है मनमोर ।  
 अग्रअली दम्पति दरसन हित आवहिगी बडि भोर ॥

( १४८ )

महल बिच सोर करै जनि कोइ ।  
 कछुक रहस बस कछु आलस बस अग्रहि मैमिली सोइ ॥  
 नूपुर दाबि चलो मोरि सजनी तनक क्षनक ताँहि होइ ॥  
 पहरेदार सजग होइ रहियो आवागमन न होइ ।  
 अग्रअली के जीवन धन दोउ जगै न पलका सोइ ॥

( १४९ )

चली सब युग छवि हिय मे धरी ।  
 सोय गये सखि पिय प्यारी अब आनन्द रस मे भरी ॥  
 लाल लली गुण कहत परस्पर आनन्द सिन्धु परी ॥  
 निज-निज कुज के ओर गई सखि गूणेश्वरि सबरी ॥  
 सबसे मिलि सग पारुशिलापल अग्र गई स्वधरी ॥

( १५० )

आज राम जानकी वृपालु सुन्दर सोहैं ।  
 निरखत सुर नर वर मुनि सिव विरचि मोहैं ॥  
 राम जी के शीश क्रीट रत्न जटित धारी ।  
 सिया जी के सीस फूल कोटि चन्द्र वारी ॥

रामजी के पीताम्बर धनुषबाण राजै ।  
 सिया जी के कर कमल मुद्रिका बिराजै ।  
 रामजी के कुण्डल की काम कोटि शोभा ।  
 सियाजी के कर्णफूल राम को मन लोभा ॥  
 रामजी के उर सोहै मोतियन की माला ।  
 चार हार रुचिर पहिरि जनक कुवरि बाला ॥  
 रामजिके कटि किंकिणि झुनुक झुनुक बाजै ।  
 सियाजी के छुद्र घटि मदन मंत्र लाजै ॥  
 रामजि घनस्याम वर्ण छवि के अभिरामा ।  
 सिया गौर कनक वर्ण लाजत सत कामा ॥  
 सियाजी कि नखशिख छवि कहत नही आवै ।  
 कोटि शेष सारब धुति पारहू न पावै ॥  
 यही ध्यान हिय मे रहत टरत नहि टारयो ।  
 अग्र युगल चरण ऊपर बारि केरि डारयो ॥

( १५१ )

देखो माई नवल कुवर दशरथ को ॥  
 मणिमय जटित क्रीट अति सुन्दर गोरोचन को टीको ।  
 अम्बुज मयन नासिका सुन्दर कुण्डल शलकत नीको ॥  
 मणिमय जटित हार अति सुन्दर हीरा माणिक नीको ।  
 कलित ललित जरकसि को जामा आभूषण पुष्पन को ।  
 उर सोहै मोतियन की माला भृगु लच्छन छवि नीको ॥  
 कर कनक बाजूबध सोहै धनुष बिराजत नीको ॥  
 कटि तूणीर बाण बर राजै कमल फिरावत नीको ॥  
 अग्रदास भञ्जु दशरथ नन्दन मोहत मन सबही को

( १५२ )

॥ राग जैति श्री ॥

यह मोहि दीजै राघव राम ।  
 दासनदाम दास को अनुचर कथा अवण मुखनाम ॥  
 मोक्ष आदि है चार पदार्थ मेरो नाहिन काम ।  
 चरण रेणु साधुन की सिर पर कृपा करो सुख धाम ॥  
 सन्तनसो अनुराग निरन्तर इहि विधि बीतौ याम ।  
 अग्रदास चाहत हरि चरचा सुधासिन्धु बिश्राम ॥

( १५३ )

॥ राग विलावल ॥

सरयू सरिता राज सबन ते पुरी गिरोमणि रामपुरी ।  
 वेदन हूँ बहु भेदन गार्ह महिमा जाकी अपट घरी ॥  
 सिव विरचि सनकादिक नारद जपत व्यास जेहि घरी घरी ॥  
 नाम उचार होत अघ न्यारे जीवन दुरमति दूर टरी ॥  
 जो कोउ बसत अयोध्या माही समसर ताहि न धात करी ।  
 सूकर कूकर सबै विष्णु पद आवत जात न अटक घरी ॥  
 जगम भूमि राघो को प्यारी भुक्ति-मुक्ति जँहूँ गरी गरी ।  
 अग्र अहै को जो नहि बाछत बसत जहाँ सर्वदा हरी ॥

( १५४ )

बसो मेरे नयनन मे सियाराम ।  
 बरुपबेलि श्री जनकनन्दनी रघुनन्दन घनस्याम ॥  
 राजत रतन जडित सिंहासन जुगल जोडि अभिराम ।  
 अप्रमली निरखत यह सोभा भारत कोटिन काम ॥

( १५५ )

॥ आसावरी ॥

आहु बधावो दशरथ राय के जायो राजिव नैन ।  
 आये सुख के ऐन ॥  
 चैतमास नौमी उलिवारी यह सयोग अनूप ।  
 लगन महूरत बार ग्रह चरन चिह्न बड भूप ॥  
 बसिष्ठ आदि तपोधन धारी कीन्हो यह निरधार ।  
 दुष्टनि दलन सुखद सन्तन को भूमि उतारण भार ॥  
 धर-धर तोरण धुजा पताका मुक्ता बन्दनबार ।  
 दूध पूत भरि नारि सुहागिनि साथिये लिखती द्वार ॥  
 चन्दन चौक रचित आँगन मे दधि अरु दूब बधावे ।  
 कनक पार सीपज, भरि अक्षत मिलि सग मगल गावे ॥  
 भू देवन कहँ भूमि बाजि गज घेनु रतन रथ देहि ।  
 पाइ लाग समदात नरेस्वर मुदित आसिपा सेहि ॥  
 पणव निशान मृदग सख धुनि जै जै शब्द उचार ।  
 कोतुहल कौसलपुर बासी आनन्द बढ्यो अपार ॥



मागध सुत भाट बदीजन दान मान बड पावे ।  
वर्णाश्रम अन्त्यज जे तन धरि फूले अग न भावे ॥  
नृत्य गान वा जन्त्र वेद घुनि ठोर-ठोर यह भनिये ।  
लेहु-लेहु यह कहत नगर मे और थवन नाहि सुनिये ।  
सुरतस काम पेनु चितामणि कौसल्या सुत जायो ।  
अग्रदास रघुपति के आनन्द में वाञ्छित फल पायो ॥

( १५६ )

॥ राग आसावरी ॥

देखि द्वारा भूप दसरथ के सोभा कहत न आवेरी ॥  
मूरतिवत मुक्ति सिधि ठाढी भीतर जात लजावेरी ॥  
मनिमन अजिर अनूप देखि छबि झाँक लेउं सुत छावेरी ॥  
कोटि काम ससि कोटि भानु दुति अमित तेज तन धारेरी ।  
धूम्रबारे केस बदन पर खचल अधिक सुहावेरी ॥  
मनहु कलपतरु तेज तनक अलि मधुर सुधामद मातेरी ।  
उज्ज्वल भाल सुचटाण ऊपर श्याम सुभग तन सोहेरी ॥  
बरगो कहा विसाल नैन अति ता उपमा कहूँ नाही री ।  
इन्दु बदन पर उडुप रहैं दोउ सोल मीन की नाईरी ॥  
बगना कठ बिराजत मानहु ऊपर सुभग निकाईरी ।  
दुतिमा खद अनद जानि के घन मे देत दिखाईरी ॥  
अरुण पीत सित हारत कु धनुई श्याम सुभग कटि सोहेरी ।  
जलद घटा पर मनहुँ प्रगट भये इन्द्र धनुष मन मोहेरी ॥  
कौसल्या की कूख कलप तरु रामचन्द्र फल लागेरी ।  
पुण्य प्रमापते अगम अगोचर कौन मुहुत यह जागेरी ॥  
सकर शेष विरचि सारदा जिन्हि स्वरूप नाहि जानैरी ।  
ताके गुण अलि अग्रदास कछु मति अनुमान बखानेरी ॥

( १५७ )

॥ आसावरी ॥

प्रगट भये दशरथ के रघुवर, महामहोत्सव मंगल घर घर ॥  
देखो आजु अवधपुर सोभा, नरनारी आनद उरगोभा ।  
सुनत सवे आतुर होइ धावै, हरित दूध पधि नृपति बघावै ।

मोतियन चौक बघाओ गावें, नव तरुनी सायिया बनावें ।  
 ध्वजा पताका मंडित घर-घर, दिव्य दुकूल सुगन्ध सिंचिधर ॥  
 घर अम्बर बाजें बहु बाजें, मनहु महोदधि लहरी गाजे ।  
 विप्र वेद धुनि व्योमनि परसत, सुर सघट कुसुम्हनि अति वर्पत ।  
 भीर भूप घर अतिसै राजे, कोउ लेवे कोउ देवे काजे ।  
 भूमि बाजि गज विप्रन पाये, धेनु रतन जन बसन अघाये ।  
 याचक जन ता क्षण जो आये, दान मान वाञ्छित फल पाये ॥  
 कहत सबे धन बधन हमारे, बिरजीबो ये पुन तुम्हारे ।  
 अग्र बघाई यह नित पावे, जन्म कर्म लीला गुन गावे ।

( १५८ )

॥ राम टोडी ॥

राम जन्म आनंद बघाई ।  
 सुरतरुसुधाधेनुचिन्तामणि मिलत परस्पर दूब बघाई ।  
 प्रफुलित हृदय नगर बासिन के बाल वृद्ध सब बात सुहाई ॥  
 भई भीर नाचे नर नारी बाजे बहुत गने नहि जाई ।  
 मंगल कलस चौक मोतियन के द्वारन बदनवार बघाई ॥  
 सिमु को बदन निहारि नारि सब वारति भूषण सेत बसाई ।  
 रतन गर्भ कौशल्या रानी धन्य भाग की कर्त बहाई ।  
 दशरथ राम न्हाय भये ठाढे कनक बसन अन्न धेनु मगाई ।  
 परम पुनीत विप्र पद बंदित दान मान जनु धन बपाई ॥  
 मागध सूत भाट बंदी जन अप्टसिधि नवनिध पाई ।  
 दशरथ सुत नित प्रतिहौ देखो अग्रदास के यहै जिय भाई ॥

( १५९ )

॥ डाढी पद, राम परज ॥

तिहारो डाढी आयो हो रघुवशी यजमान ॥  
 जन्म जन्म डाढी या घर को मान सहित दे दान ॥  
 रवि अनरण्य इंदुवाकु अग रघु घुंघुमार मुखनाश ।  
 काकुथ सगर दिलीप भगीरथ गंगा अवनि प्रकाश ॥  
 हरिकीरतिसम वश विशद अति मोमति जाय न जान  
 इला सुत शारदा शेष सुर वेद पुरान बखान ॥  
 सुत जायो सुनि पंगतिरथ के मोमन रगरली ।  
 उज्ज्वीनी अज भूप द्वार को वारो सुफल फनी ॥

लक्ष्मि मन भरत सनुहन सुन्दर नाम सकल गुन सार ।  
 धीर गभीर अभेकरि मति सो अतिही गोल उदार ॥  
 मैं पाई सतति मुख ग्रन्थनि सुनहु नृपति दै कान ।  
 जन्म न देख्यो रामचन्द्र को भूत भविष वर्तमान ॥  
 वेद उधार कमठ कढ़ना कर घरणी घर त्रय नैन ।  
 हरष फरषधर, असुर विमोहन बिग वचन सुनि जैन ॥  
 श्रद्धा मय सन्त धर्म रसवारी कौसल्या सुत करिहैं ।  
 दुष्ट दमन करि बाँधि बारि निधि बिपति देव सब हरिहैं ॥  
 भू बन रेणु बुन्द वर्षा की उडुगण है निरधार ।  
 गर्बित वचन सुनत ढाढी को रघुपति गुणनि अपार ॥  
 धर्म सार श्रुतिसार सिरोमनि कान्ति अधिक तन तेज ।  
 चरण चिह्न सरवेस्वर के सब बिधि मनु रच्यो बँधेज ॥  
 ढाँढी अग्रदास दसरथ गृह याचत बारम्बार ।  
 साधु सगति कीरति तब सुत की रचो रहो दरवार ॥

( १६० )

॥ राग टोड़ी सूर फागता ॥

आज दसा दसरथ नृप की अति रानी रतन खानि कुपि खूली ।  
 सुनत मुधा वरप्यो त्रिभुवन में सत कमल श्रेणी हृद फूली ॥  
 लक्ष्मिन भरत सनुहन सुन्दर प्रगटे राम सजीवन मूली ।  
 सिध विरचि सुर मेघ बीषधर गुण गण गान शारदा भूली ॥  
 अष्ट सिद्ध नव निद्ध मुक्ति चतुर्धा अवध के द्वार द्वार अनुकूली ।  
 अग्रदास रघुनाथ जनमते मगल अवर नही कोइ तूली ॥

( १६१ )

॥ राग गौरी ॥

मृप दशरथ के पुत्र भये सुर पुर मे भजत बघाई री ।  
 घर घर मगल पार अवधपुर वन्दन बार बघाई री ॥  
 चतुर नखी मिनि सायियाँ दीन्हें विधि सो सीख भराई री ।  
 चन्दन चौक रचित आगन म रतन खरित अँगनाई री ॥  
 वृत्त कोतुक कौसलपुर बागो याचक अमर भराये री ॥  
 अवधपुरी आनन्द मयो भर बाँटत बहुत बघाई री ।  
 अग्रदास रघुवर के जनमत मन बाँटित फल पाई री ॥

( १६२ )

॥ राग आसावरी ॥

फूले फिरत अयोध्या बासी ।

सुन्दर सुत जायो कौसल्या रामचन्द्र सुख रासी ।

घर घर बन्दन माल साधिया मोतिन चौक पुराये ।

नाचत गावत देत बधाई मनु घर घर सुत जाये ॥

गली गली गज बाजि जहाँ तह हलका दिये तवेले ।

दोन बहुत यावक जन घोरे कापे जात सकेले ॥

दसरथ भूप भटार मुकर किये वदो अमर भरे ।

सकट सीलि ताही सो हमला डोये डेर घरे ॥

सत कमल सुख देन काज रवि राघव उदै कर्यो ।

मुदित देव दुन्दुभी बजावत निरवर तिमिर हर्यो ।

देत असीस नगर नारी नर चिरजीवो रघुवीर ।

अग्रदास आनन्द अखिलपुर मिटी ताप तन पीर ॥

( १६३ )

साग इन बोलन के बलि जैहों ॥

छोटे छोटे चरण धरत अति सुन्दर ठुमकि ठुमकि हलरेहो ॥

कटि किकिनि पग नूपुर बाजे मधुरे शब्द सुनैहों ।

सब बालक रघुवर छवि निरखत प्रेम प्रीति सपटेहो ॥

धुंधर धारे असक बदन पर मन्द हँसन सुख पैहों ।

जाको ध्यान धरत ब्रह्मादिक सारव गान करेहो ॥

गोदराखि पय पान करावत दसरथ लेत बुलेहो ।

यह छवि देखि मगन सुर मुनि भये रवि ससि कोटे सजैहों ।

सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक निगम नेति जस गेहों ।

अग्रदास भजु दसरथ मन्दन दिन प्रति दिन अधिकैहो ॥

( १६४ )

अखिल लोक श्री उदय भई है जनक रामपुर जाई ।

निरात्मम नन्या निमि कुल के सीता ऐसी नाई ॥

बरनव विदुष पार नहि पावत बांही रही सजाई ।

अकि चरन कमल भव नौका नाहिन आन उपाई ॥

निगम सार सामान सुजस जेहि कहत तपोधन आई ।

ब्रह्म रद अजहूँ पद आश्रित अग्रदास बलि जाई ॥

( १६५ )

ठुमुक ठुमुक चलत चाल जनक नन्दनी ।  
 मधुर बचन तोतरे त्रयताप मोचनी ॥  
 सोहत नव नील वसन मन्द हास रुचिर दसन,  
 झलकत उर माल सकल देव बदनी ।  
 बाजत पग तूपुर मनो साम बेद करत गान,  
 दुद्र घटि रुचिर नाद उर अनन्दनी ॥  
 जगत मात सखिन सग विहरत बहु करत रग,  
 अग्र अली निरखत छवि भवनिकन्दनी ॥

( १६६ )

॥ स्याल ॥

दशरथ सुत देखि देखि जनक सुता मोही ।  
 धनुष बान कोइ चढ़ावे मेरो पति सोही ।  
 सीता जू कहे पिताजी सो धनुष प्रनत जो ।  
 ऐसी धर राम साज तिमक को सजो ॥  
 सीता जू के बचन सुनत सबही मुख मोरघो ।  
 तबही तत्काल राम कठिन धनुष तोरघो ॥  
 घर घर आनन्द होत अचरज यह कियो बाल ।  
 तबही सीय पाय लाग डारी है गरे जयमाल ॥  
 जय जय जयवार होत बाजे बहु बाजा ।  
 'अग्र के स्वामी जीति आये अयोध्या के राजा ॥

( १६७ )

॥ कीर्तन ॥

प्रात समय जागी अतुरागी सोवत उठी री स्याम जू की सगिया ।  
 द्वार सँवारति उठी री दक्षिण कर बाम मुखा व कुटी भरि अँगिया ॥  
 माल मे सुहाग भारी कचुकी की छवि न्यारी ।  
 पहरे कसूँभी झारी सोहो रगबगिया ।  
 'अग्र स्वामीजी लडाई बहुत कीन्ही बडाई  
 पूनी पूली फिरै सब रैन रग रगिया ॥

( १६८ )

॥ होमी गान ॥

होली क खलार भावत सोहि जान न देही ।  
 रग भीने बागे बनि आए जाग भाव्य हमारे नयन म भरि रखूँ पगुवा लेहीं ॥

घोवा पदन और अरगजा केसर बलस नहैहों ।

'अग्र स्वामि' सो कहत स्वामिनी मित्रि तन ताप नसैहों ॥

( १६६ )

वहोनी बाना बोन निरद की लाज ।

जे तुम सहो कसोरी हित की निरणो निकमे आज ॥ टेर ॥

मैं अति दुखित दीन गुरु त्रिजवर असरन सरन तुम्हारो ।

तुमन एव भवित को नातो धोरो घणो विचारो ॥१॥

साँची बहै सुणो दुरवासा मोरी सुरत सुतंत्र नाहीं ।

मोहिं भजना ऐसे बस कीनो कीर पीजरा माही ॥२॥

मम के हित की खबर पढी जच भागो मन को भोर ।

अग्रदास साँचा हरिजन की सार भज्याँ कछु है ओर ॥३॥

## अकबर की रामनिष्ठा

राजपूताने में रसिकसाधको की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और अवध में तुलसी साहित्य के व्यापक प्रचार का प्रभाव उदारमना अकबर पर भी पड़ा। उसके द्वारा प्रचारित 'रामसीय' भाँति की स्वर्ण एवं रजस मुद्राओं से यह स्पष्ट हो जाता है। अब तक इस भाँति के तीन सिक्कों का पता चला है—दो सोने की अर्धमोहरें और एक चाँदी की अठन्नी। इनमें एक सोने की अर्धमोहर, कैबिनेट डे फ्रांस में है, दूसरी ब्रिटिश म्यूजियम में और तीसरी चाँदी की अठन्नी भारत कलामवन, काशी में संप्रतीय है। यह (तीसरी मुद्रा) डा० वामुदेवशरण अप्पवाल को लखनऊ के किसी व्यापारी से प्राप्त हुई थी। दोनों साँचों में एक ओर राम-सीता की आकृति अंकित है और दूसरी ओर उनका प्रचलन काम दिया हुआ है, जिससे पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों भाँति की मुद्रायें भिन्न काल में और दो भिन्न साँचों में ढाली गयी थी—

राय आनन्दवृष्णजी के लेख के आधार पर नीचे इसका विवरण दिया जाता है—

( १ ) सोने की दो अर्धमुहरें ( ब्रिटिश म्यूजियम और कैबिनेट डे फ्रांस ) इनमें राम प्राचीन वेश में उत्तरीय तथा धोती धारण किये हुए और सीता सहंगा, ओढ़नी और चोली पहने, अवगुठन को सम्हालती हुई दिखाई गई हैं।

इसका प्रचलनकाल ५० इलाही, परवरदीन उत्कीर्ण है। ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित अर्धमोहर में चित और 'रामसीय' नागरी अभिलेख मिट गया है किंतु 'कैबिनेट डे फ्रांस' की अर्धमुहर में यह ज्यो का त्यो बना हुआ है।

( २ ) चाँदी की अठन्नी ( भारत कलामवन, काशी )।

इसमें सीताराम अकबरकालीन वेश में दिखाये गये हैं। राम सिर पर तीन कगूरे वाला मुकुट, (जैसा अकबर के समय के ब्राह्मण देवताओं के चित्रों में प्राप्त होता है) धुटने तक जामा, दुपट्टा, जिसके दोनों छोर इधर-उधर लटक रहे हैं बाये हाथ में धनुष की कमानी की गध्य, जिसकी प्रत्यक्षा भीतर की ओर है, पीठ पर तूणीर और दाहिने हाथ में धनुष पर चढ़ा हुआ बाण धारण किये हैं।

उनकी अनुगामिनी सीता झुस्त चोली, सहंगा, ओढ़नी और हाथो में चूड़ियाँ पहने हैं। उनका बायाँ हाथ सामने उठा हुआ है और दाहिना पीछे सटकता है। उनके दोनों हाथों में फूल का गुच्छा है। रामसीता के ऊपर बीच में नागरी अक्षरों में 'रामसीय' अंकित है इसके पट की ओर ५० इलाही अमरदाद लिखा हुआ है।

इसमें यह विदित होता है, कि ये दोनों मुद्रायें, अकबर की मृत्यु के पहले एक वर्ष के भीतर, उनके द्वारा प्रचलित इलाही सम्बत् के ५० वें वर्ष के दो भिन्न महीनों में प्रचलित की गई थी।

अब यह प्रश्न उठता है कि 'रामसीय' भाँति की ये दो भिन्न-भिन्न प्रकार की मुद्रायें उनके जीवन की किस स्थिति की परिचायक हैं। थोड़े तौर से सीताराम का दापत्य जीवन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—विवाह के पश्चात् और वनगमन के पूर्व अयोध्या में व्यतीत होने वाला उनका गार्हस्थ्य जीवन चोदहवर्षीय वनवास में सीताहरण में पूर्व का जीवन और लकाविजय के पश्चात् उनके पुनर्मिलन के समय में लेकर सीता के द्वितीय वनवास के पहने तक उनका अयोध्या का राजेश्वर्यपूर्ण जीवन। इन तीनों के अन्तर्गत ही किसी अवस्था में उनकी स्थिति का अकन उपर्युक्त दोनों प्रकार की मुद्राओं में हुआ है। यह स्पष्ट ही है कि इन तीनों में प्रथम तथा तृतीय स्थिति की कौडाभूमि अयोध्या रही और मध्यवर्ती अवस्था 'वनलीला' की है।

सोने की मुहरों में दपति की जिस मुद्रा का चित्रण हुआ है वह उनके गार्हस्थ्य जीवन के अधिक भेन में है। पति के पीछे चलती हुई सीता का दाहिना हाथ कमर पर रखना और बायें हाथ से धूँधट समालना, उनके दापत्य जीवन के आरम्भिक काल की मुद्रा प्रतीत होती है। लज्जा का जो भाव इसमें व्यक्त होता है, उसकी व्याप्ति इसी अवस्था में अधिक सगुण जान पड़ती है। यह भी असम्भव नहीं कि यह उनके चित्रकूट के वन विहार की किसी स्थिति का चोत्रक हो। अतः इसे प्रथम तथा द्वितीय अवस्था के अन्तर्गत मानना उचित होगा।

भारत कलाभवन काशी की अठतीस में अंकित सीताराम की मुद्रा के विषय में मेरा यह विचार है कि इसमें उनके चित्रकूट अथवा पंचवटीवास के समय किये आये एव वन-विहार का दृश्य अंकित है। यह स्मरणीय है कि पंचवटीवास के समय यह उस स्थिति का चोत्रक नहीं माना जा सकता, जब सीता ने राम को सुवर्णमृग दिखाया था और उनकी प्रेरणा से वे उसके आगेट में प्रवृत्त हुए थे। यदि उग स्थिति में इसका सम्बन्ध होता तो सीता मृग को इंगित करती हुई दिखाई जानी, किन्तु प्रस्तुत चित्र में ऐसा कुछ लक्षित नहीं होता। सीता का, नि सकोच भाव से दोनों हाथों में फूल के गुच्छे लिये हुए पति का अनुगमन करना



धन-विहार का द्योतक हो सकता है। मेरा अनुमान है कि इस लीला का क्षेत्र माने जाने की संभावना पंचवटी से चित्रकूट की अधिक है। कारण यह है कि राम-भक्ति साहित्य में 'अहेरी' राम की मुख्य क्रीड़ा-भूमि तथा सीताराम की विहार स्थली के रूप में इसी स्थल की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। रसिकसाहित्य में चित्रकूट-वासी राम तापम नहीं, राजेश्वर्यपूर्ण और नित्यरसलीनारत चित्रित किये गये हैं। तुलसी ने भी रामचरितमानस, गीतावली और विनयपत्रिका में चित्रकूट का स्मरण दम्पति की विहार भूमि के रूप में किया है।

उनके परवर्ती रामरसिकों ने भी उसे इसी रूप में देखा है।

इस प्रकार दोनों भाँति का मुद्राओं में सीताराम की श्रृंगारी भावना प्रकट होती है। उदार अकबर को इन माधुर्यव्यञ्जक दृश्यों के सिक्कों पर उत्कीर्ण करने की प्रेरणा रामभक्ति में बढती हुई रसिकभावना से प्राप्त हुई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

राय आनन्दवृष्ण जी ने इन सिक्कों के प्रचलित करने का कारण, जीवन के अंतिम दिनों में उद्बुद्ध अकबर की रामभक्ति बताया है। इनका प्रचलन उसने जिम किसी भाव से भी प्रेरित होकर कराया हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि उसकी 'रामसीय' में निष्ठा थी और उनके 'स्वरूप प्रचार' में वह प्रजा और राजा दोनों का हित देखता था। शताब्दियों पहले से भारतीय शासकों द्वारा शिलालेखों और मूर्तियों में प्रतिष्ठित विष्णु और वृष्ण को छोड़कर यवनशासक अकबर का 'रामसीय' के नाम पर सिक्का चलाना इस देश के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। जहाँ तक इन पत्तियों के लेखक को ज्ञात है, किसी हिन्दू सम्राट ने भी शासन कार्यों में सीताराम को इतना महत्व नहीं दिया था। इससे तत्कालीन समाज पर रामभक्ति के बढते हुए प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

## तुलसीदास का गुरुधाम

गोरखामी तुलसीदास की जीवनी एवं साहित्य के अध्येताओं के लिये इधर कुछ वर्षों से तुलसी के गुरुद्वारा 'सूकरखेत' की स्थिति एक पहेली बन गई है। आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल उसे अयोध्या के निकट गोडा जिले में स्थित मानते हैं तो विद्वानों का एक विशिष्ट दल उसे एटा जिले के सोरो से अभिन्न बताता है। इस दूसरे मत के समर्थकों ने गुरु-आश्रम के साथ सोरो को तुलसी की जन्मभूमि और उसी के आस-पास उनकी समुदाय भी सिद्ध करने के लिये प्रचुर प्रमाण एकत्रित किये हैं। किन्तु जितने सुव्यवस्थित ढंग से और जैसी योजनाबद्ध पद्धति से यह सोरो-सामग्री प्रकाश में लाई जा रही है उसी अनुपात से पारखियों की दृष्टि में उसकी साधुता उत्तरोत्तर सदिग्ध होती जा रही है।

शुक्लजी ने किन प्रमाणों के आधार पर तुलसी के 'सूकरखेत' को गोडा जिले में स्थित माना या 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इसकी विस्तृत विवेचना नहीं की गई है। फिर भी इस सम्बन्ध में वहाँ जो कुछ मिलता है उससे विदित होता है कि ऐसी धारणा बनाने में अपनी जन्मभूमि बस्ती के निकटवर्ती इस स्थान से उनका व्यक्तिगत परिचय ही विशेष प्रेरक रहा है। यह दूसरी बात है कि उसकी पुष्टि के लिये उन्होंने तुलसी की भाषा-शैली तथा अन्य साहित्यिक विशेषताओं की भी ध्यानवीन की है जो अवश्य के उस भू-भाग में विरचित काव्यग्रंथों में सामान्यतया पाई जाती हैं।

तुलसी के जीवनी-साहित्य का अनुशीलन करते हुए इन पत्तियों के लेखक को अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध हुए हैं जिनसे इस विवादग्रस्त प्रश्न के समाधान में सहायता मिल सकती है। अध्ययन की मुद्रिका के लिये काल-क्रम से इनका विवेचन नीचे किया जाता है।<sup>१</sup>

इनमें प्रथम है 'दाशान्यदास' द्वारा विरचित 'तुलसी चरित' अथवा 'गोमाईं

१. बिस्फी विरयविद्यालय द्वारा आयोजित 'तुलसी विचार परिपक्व' में ३१ मई १९६० को पड़े गये निबंध का परिचक्षित रूप।

चरित' की 'सूकरखेत' विषयक सामग्री। भाषा-काव्य-संग्रह के रचयिता पं० महेशदास शुक्ल ने उक्त 'दासान्यदास' की अभिन्नता परम्परा से प्रसिद्ध तुलसी की जीवनी-लेखक बाबा वेणोमाधवदास से स्थापित की है। सयोगवश 'भाषा काव्य संग्रह' तथा 'शिर्वासिंह सरोज' में गोसाईं चरित से जो पत्तियाँ उद्धृत की गई हैं वे 'गोसाईं चरित' की इस नवोपलब्ध प्रति में ज्यों की त्यों मिल जाती हैं।

१ यह शब्द 'दासानुदास' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है 'दासों का दास'। भक्त लोग विनम्रता प्रकट करने के लिए परम्परा से अपने को दास वेणो में रखते आए हैं। गोस्वामी तुलसीदास की समकालीन रामभक्ति साहित्य में आचार्य अपदास के निम्नांकित पद में इसका प्रयोग उक्त अर्थ में ही हुआ है—

यह मोहिं बीजे राघव राम ।

दासनिदास दास के अनुचर कथा अवन मुय नाम ।

घरनरेनु साधुन के सिर पर कृपा करो सुपधाम ॥

सतन को अनुराग निरतर येहि बिधि बीते जाम ।

'अपदास' चाहत हरि घरचा सुधा-सिन्धु विभाम ॥

—अपदास की अप्रकाशित 'पदावली' से ।

'भाषा काव्य संग्रह' में महेशदास शुक्ल ने वेणोमाधवदास का परिचय देते हुए 'दास या दासानिदास' का उल्लेख उपनाम के रूप में किया है। इससे यह विदित होता है कि उन्होंने गोसाईं चरित की जो प्रति देखी थी उसमें उक्त तीनों नाम दिए हुए थे। शिर्वासिंह जी की इस ग्रन्थ का जो हस्तलेख मिला था उसमें रचयिता के रूप में वेणोमाधवदास का नाम अंकित था। उसके छर्थों में 'दास' छाप देखकर सेंगर जी ने स्वयं उनका परिचय 'सरोज' में 'दास कवि' के नाम से दिया। किन्तु प्रस्तुत हस्तलेख के लिपिकार मोहन शुक्ल को उक्त ग्रन्थ की जो प्रति मिली थी उससे वेणोमाधवदास का नाम निकल गया था केवल उनका उपनाम 'दासानिदास' रह गया था। इसका कारण सम्भवतः भवानीदास द्वारा मूल प्रति में किया गया परिवर्द्धन एवं परिष्कार था। किन्तु इन तीनों प्रतियों में गोसाईं चरित के 'मृतक प्रसंग' से जो पत्तियाँ उद्धृत की गई हैं उनका पाठ साम्य यह सिद्ध करता है कि रचयिता से नाम में साधारण भ्रांति होती हुए भी उन सब का मूल स्रोत वेणोमाधवदास द्वारा विरचित परम्परया प्रसिद्ध गोसाईं चरित ही था।

हैं। यह तथ्य प्राचीन 'गोसाईं चरित' से इसकी निस्सन्देह एकता सिद्ध करता है। उक्त प्रति मुझे सीतापुर जिले में दिक्कौलिया के तालुकदार, ठा० महेश्वरबख्श सिंह से प्राप्त हुई है। प्रतिनिधिकार हैं गोधनी गाँव के निवासी मोहन शुक्ल। वैशाख शुक्ल ७, स० १६२६ को एक प्राचीन पोथी से किसी राजा के आदेश से उन्होंने इसकी प्रतिलिपि की थी।'

इस ग्रंथ में तुलसी की अयोध्या से नीमपार ( नैमिषारण्य ) यात्रा का वर्णन करते हुए लिखा गया है—

अवधवास बहुकाल करि साहु जन्म को लीन ।  
सहसमाज निज गवन सब नीमपार को कीन ॥  
प्रथम बास रोम्हाई लपि अनादि यल कीन्हो ।  
श्री रविकुल अश्वरीक नृपति सुकृती जिय चीन्हो ॥  
दुतिय बास अष नास किय पावन सूकरखेत ।  
त्रै योन्नन जो अवध से 'दास' दरस सुप हेत ॥  
जहँ श्री गुरु मरसिष सन सुनो कथा सहि जान ।  
सो अनादि तीरथ विदित श्री गुरुदेव अस्थान ॥

यहाँ 'सूकरखेत' को गोस्वामी जी के गुरु 'नरसिंह' अथवा 'नरहरि' का निवासस्थान घोषित करने के साथ ही गुरु-मुख से उनके रामकथा सुनने का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जिसके सम्बन्ध में स्वयं तुलसी की उक्ति है—

सो मैं निज गुरु सन सुनो, कथा सो सूकरखेत ।  
समुझी नहि तस बालपन, तब अति रहेजँ अचेत ॥

इस स्थान को 'सूकरखेत' की सज्ञा किस प्रकार प्राप्त हुई, ग्रंथकार ने इसका विवरण देते हुए लिखा है—

श्री नारायण जगतपति, जगहित जगत उधार ।  
धादुगो वपु बाराह जब, आदि पुरुष अवतार ॥

१. पड़नहार सज्जन मुमति, कथा राममनि गोइ ।  
प्रति पावा सो मैं लिखा, दोस न दोजो सोइ ॥  
अग्या मानि नरेस को, सकल चरित लिखि सोइ ।  
तुलसी चरित कथा सुम, जो मुनिहै मन कोइ ॥  
शुक्रवार तिथि सत्तमी, शुक्ल पक्ष वंसाय ।  
संवत बनइस सं यकइस को, बाता संबत भाय ॥

—गोसाईं चरित, पत्र ३२४ ।

सन्द धुरधुरा ते भयो, धाधर सखि प्रवाह ।  
 देव जन्म गधर्व सब, अस्ति प्रबोधत ताहि ॥  
 भई विमानन भीर तब, सत जोजन के फेर ।  
 तब अज्ञा भई सयन कहूँ, करी पुन्ययत हेर ॥  
 चली विमानन भीर तब, श्री बाराह समेत ।  
 सरजू संगम घुघरा, तहँ बनो सूकरखेत ॥  
 प्रयोजन है अवध ते, पसका सो परमान ।  
 यास कछुक दिन करि तहाँ, चरचा येद पुरान ॥<sup>१</sup>

अयोध्या से नीमपार की इस यात्रा में सूकरखेत के पश्चात् सियाबार, लखनपुर (लखनऊ), बनहट, मत्तीहाबाद, कोटरा, बाल्मीकि आश्रम (बिठूर), सन्दीला आदि स्थानों में तुलसी के ठहरने का वृत्तान्त दिया गया है। ये सभी स्थान किसी न किसी रामभक्त अथवा रामकथा से सम्बद्ध पात्र के निवास-स्थल बताए गये हैं और वहाँ तुलसी के आगमन के अवसर पर कुछ विशेष धर्मकारी घटनाओं के घटित होने की चर्चा की गई है। 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' में इसे तुलसी की पाँचवी यात्रा (अयोध्या से नीमपार जाने और लौटने की) कहा गया है, और मार्ग में पड़ने वाले चौदह तीर्थों का उल्लेख किया गया है।<sup>२</sup> उनके साथ जिस 'सूकरखेत' का नाम आया है वह गोडा जिले का ही 'सूकरखेत' है, इसकी पुष्टि 'गोसाईं चरित एव 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' के पूर्वोक्त विवरणों से होती है। तुलसीदास से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिपादित करने वाली अनेक कथाएँ अवध प्रदेश में आज तक प्रचलित हैं।<sup>३</sup>

१ वही, पन्ना २१५-१६।

२ अयोध्या से रवनाही, सूकरखेत ( पसका ), सियाबार, लखनऊ, मडियाहूँ, मत्तीहाबाद, बिठूर कोटरा, सदीला, नीमपार, मिसरिल, रामपुर मधुरा, खैराबाद, सूकरखेत और अयोध्या।

—गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, पृ. २८ (रामचरितमानस, हरि-प्रसाद भगौरपणी, कालबादेवी रोड, बम्बई की भूमिका रूप में प्रकाशित)

३ इस यात्रा में नीमसार से लौटते समय गोस्वामी जी मिसरिल, रामपुर मधुरा, खैराबाद और सूकरखेत होते हुए अयोध्या आये थे। स्थानाभाय के कारण केवल रामपुर मधुरा ( सीतापुर ) में उनके ठहरने, वहाँ के राजा हवयराम को मानस की एक हस्तलिखित प्रति देने तथा उस स्थान पर हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित करने का स्थानीय साहित्य में सुरक्षित वृत्तान्त संक्षेप में नीचे दिया जाता है—

वेणीमाधवदास की ही भाँति गोस्वामी जी के एक अन्य समसामयिक एवं साथी काशी निवासी कृष्णदत्त मिश्र द्वारा विरचित 'गोतम चन्द्रिका' में भी तुलसी

तीरथ नैमिष विदित जहाना । ताके प्राची विद्या सुजाना ॥  
 योजन अष्ट दूरि कवि गावैं । अयधपुरी से पश्चिम पार्व ॥  
 दश योजन प्रमाण महि जाई । सरित चन्द्रभागा तटभाई ॥  
 अथ सरयू के बक्षिण आता । बसत रामपुर ग्राम सुबाता ॥  
 घोहा—तहाँ महेश्वरबल्श नृप, करत राज्य नय रूप ।

विक्रम विक्रम सुख्य बुधि, सुरपति गुह अनुह्य ॥

—महेश्वर गोगज चिकित्सा, पृ० ६८,

ग्राम रामपुर ते कछु दूरी । दिशि कीबेर्य सरित जल पूरी ॥  
 रामघाट गंडकि सरि माहीं । रमई गोड़िया हो तेहि छाहीं ॥  
 गोस्वामी थी तुलसीदास । आए तेहि पल सहित हुलासा ॥  
 घाट नाम पूछी हरपाई । रामघाट तेहि दीन्ह बताई ॥  
 नाम रमैया मोर कृपाला । यहि कृत करत वंश प्रतिपाला ॥  
 घाट पार को पुर कयु नामा । बसत रामपुर ग्राम सलामा ॥  
 को नृप हृदय राम मरनाहा । सुनि पायो तिन बड़ उतसाहा ॥

आगत भे सानग्व तहं, सुनि नृपआयो बाढ़ ।

पुत भावर सत्कार तिन, बास करायो आढ़ ॥

सेवन कीन्ह यमाविधि रूपा । भे प्रसन्न तब साधु अनूपा ॥  
 आशिय दीन्ह अचल यह राजू । काहू काल न होइ अकाजू ॥  
 रामायण निजकृत तहं थापी । पूज्यो यहि अरि सकैं न थापी ॥  
 प्रतिमा आजनेय संगवाई । भूप निकेत आपु पधराई ॥  
 भजहै राजत भूपति धामा । पूजत प्राप्त होत मन कामा ॥

—महेश्वर गो-गज-चिकित्सा पृ० १०-११ (शायमंड बुचिस्ती पंथा-  
 लय, कानपुर) सं० १६५७ वि०, ।

ग्राम रामपुर नाम, हृदयराम भूपालमणि ।

रामघाट सुलखाम, रमई गोड़िया नाम सुनि ॥

सुलसीबास कृपाल, राममक्त तन मन यचन ।

आए ग्राम सुकाल, बास कियो कछु काल तहं ॥

रामायण निजकर लिखित, वै पुनि दीन्ह असीस ।

अचल होइ नृपता सदा, सुनु तब रामपुरोस ॥

के जीवन से सम्बद्ध अनेक आँखों देखी घटनाओं का वृत्त वर्णित है।<sup>१</sup> इस ग्रन्थ की रचना तुलसी के साकेतवास के ठीक एक वर्ष पश्चात् श्रावणवृष्ण ३, स० १६८१ को हुई थी।<sup>२</sup> इसमें तुलसी की आदि शिक्षा भूमि—‘सूकरखेत’ और गुरु ‘नरहरिदास’ का जो परिचय दिया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

सरल अपर घाघरी दोऊ । सगम तीर्थराज सम सोऊ ॥

धबलि जेठ एकादसि माही । तहाँ विपुल नर-नारि नहाही ॥

बहुरि बराहपेत भोपा सधि । पूजहि बटु बराह वेदी रधि ॥

तहवा सकल लोक बिख्याता । सुपदा भक्तिमूत्र निर्माता ॥

साबिल रियि आश्रम धल पासा । जहँ तहँ सरवारिन्ह कर वासा ॥

राम प्रदत्त भूमि अधिकारी । खल दल दलन धर्म धनुषारी ॥

साबिल गोत्रज नरहरि स्वामी । ज्ञान निधान भक्तिपथगामी ॥

अथ गज गंजन नरहरी, सूकरखेत बिहाइ ।

बारन्यक सुपमा भरी, कासी पहुँचे जाई ॥ २ ॥

सात्पर्य यह कि तुलसी ने जहाँ सर्वप्रथम अपने गुरु नरहरिदास के सातिष्ठ्य में विद्याभ्यसन किया था वह स्थान सरयू घाघरा सगम पर है और ‘बाराह क्षेत्र’ अथवा ‘सूकरखेत’ नाम से अभिहित किया जाता है। पसका गाँव (सूकरखेत) में ‘शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम’ नाम से एक स्थान अब तक निर्दिष्ट किया जाता है। पसका के अतिरिक्त नन्दौर तथा उसके निकटवर्ती गावों में भी शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि गोडा जिले का दक्षिणी भाग, जिसमें सूकर खेत स्थित है, शताब्दियों से सरयू-पारीण ब्राह्मणों का मुख्य केन्द्र माना जाता रहा है।<sup>३</sup>

—महेस्वर रसमौर ग्रन्थ (रामकवि बीसतराम) सख्तनऊ प्रिंटिंग प्रेस, अवतुवर १८९८ ई० ।

१. गौतमचन्द्रिका में तुलसी का वृत्तान्त (थो विरवनाथप्रसाद मिश्र) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६० अंक १, स० २०१२, पृ० १२ ।

२. सबत सोरह सँ एकासी । तुलसी बरखी असी प्रकासी ॥  
सावन कृष्ण तीज तिथि पाई । यह गौतम चन्द्रिका बनाई ॥

वही, पृ० ३ ।

३. ‘देयर आर मोर ब्राह्मन्स इन गोंडा बैन इन एनो अवर पाट्स आय अवय एण्ड इन्डोय इन बि होस आव यूनाइटेड प्राविसेस बिद बि एक्सेप्शन आव गोरखपुर । बि वास्ट मेजारिटो आव देम बिलांग टु बि सरवरिया सब डिबीजन !’

—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, गोंडा पृ० ६७ ।

इन दोनों समसामयिक वृत्ती का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव तुलसी के परवर्ती लेखकों द्वारा निर्मित ऐतद्विषयक साहित्य पर पड़ा। महेशदत्त शुक्ल ने स० १९३० में 'भाषा-काव्य संग्रह' में वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखा—

‘ये कवि जिले गोडा में धग्घर के निकट पसका के रहने वाले थे और तुलसीदास जी के शिष्य थे। ये बड़े रामोपासक और गुरुभक्त थे। गोसाईं जी के संग ये भी फिरते थे। जो जो सिद्धताये तुलसीदास जी की इन्होंने देखी हैं वे सब अपने ग्रन्थ ‘गोसाईं चरित’ में लिखी हैं। ये स० १६६६ में हरिपुरवासी हुए।’

वेणीमाधवदास तथा ‘गोसाईं चरित’ का जो परिचय इन पक्तियों में दिया गया है वह गोसाईं चरित की पूर्वोक्त प्रति में उपलब्ध वृत्त से समर्थित है। इस ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय से सम्बन्ध में यह लिखकर कि इसमें वेणीमाधवदास ने अपने गुरु की केवल आँखों देखी सिद्धताएँ वर्णित की हैं न कि उनका सम्पूर्ण जीवन वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी गई है। छटकने वाली बात केवल इतनी है कि इसमें एक स्थान पर भवानीदास का नाम लेखक के रूप में आया है। उन्होंने इस सम्पूर्ण कथा को अपने गुरु, महात्मा रामप्रसाद से सुनी हुई बताया है।<sup>१</sup> महात्मा रामप्रसाद अयोध्या के ‘बड़ा स्थान’ के सस्थापक थे। इनका समय १७६० से स० १८६१ तक माना जाता है। मेरी धारणा है कि भवानीदास ने गुरुमुख तथा तत्कालीन अन्य सन्तों से प्राप्त अनुभूतियों का मन्त्रिवेश कर पूर्व प्रचलित ‘गोसाईं चरित’ में कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन मान किया है।<sup>२</sup> वस्तुतः रचना यह वेणीमाधवदास की ही है।

१. भाषा-काव्य-संग्रह, पृ० १३५।

२. सब गुन रहित औगुन सहित तब धरन बिड़ विस्वास है।

धरि आस संज्ञा नाम की जाँच भवानीदास है॥

—गोसाईं चरित पत्र ५

३. ताते कछुक प्रसंग सुम, सुनेउ जो सन्त प्रसाद।

सन्त सिरोमन ॥ बई, अग्या राम प्रसाद ॥ :—वही, पत्र २६।

४. डा० माताप्रसाद गुप्त ने रामचरणदास की टीका सहित १९२४ ई० नवल-किशोर प्रेस सलनऊ से प्रकाशित रामचरित मानस की भूमिका में उद्धृत जिस गोसाईं चरित का विवरण दिया है वह प्रस्तुत गोसाईं चरित का ही प्रतिरूप है।



इसके चार वर्ष पश्चात् विरचित 'सरोज' में सेंगर जी बेनीमाधवदास का परिचय देते हुए लिखते हैं—

“दास—२—बेनीमाधवदास, पसका, जिले गोडा, स० १६५५ में उ० यह महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी के शिष्य उन्ही के साथ रहे हैं और गोसाईं जी के जीवन चरित की एक पुस्तक गोसाईं चरित बनाई है। स० १६६६ में देहान्त हुआ।”

अन्यत्र उसी ग्रंथ में गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है।

“इनके जीवन चरित्र की एक पुस्तक बेनीमाधवदास कवि पसका ग्रामवासी ने जो इनके साथ-साथ रहे बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें।”

सेंगर जी के उपर्युक्त कथन से यह विदित होता है कि उन्होंने ‘गोसाईं चरित’ को स्वयं देखा था, नहीं तो वे इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को ‘हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें’ न लिखते। उन्होंने बेनीमाधवदास की रचना दोसी के नमूने के रूप में जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं ‘गोसाईं चरित’ की प्रस्तुत प्रति में वे अविकल रूप में पाई जाती हैं। इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महेशदत्त शुक्ल तथा शिवसिंह सेंगर द्वारा निर्दिष्ट ‘गोसाईं चरित’ दासान्यदास अथवा दासानुदास विरचित प्रस्तुत ग्रंथ से अभिन्न था और उनके रचयिता एक ही बेनीमाधव दास थे जो पसका अथवा सूकरखेत के निवासी और तुलसी के भ्रातावासी थे।

शिवसिंह के परवर्ती ‘मार्डन वर्निक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान’ के रच-

यह ग्रन्थ ‘श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदासजी की चरित्र’ नाम से खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के साथ १८८१ ई० में निकल चुका है। डॉ० शुभ ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि “गोसाईं चरित्र की जिस रूप में सेंगर जी ने देखा रहा उस रूप में वह बेनीमाधवदास की ही रचना रही हो और उसे भयानीदास की बनाने के लिए कुछ अवश्य फेरफार बाव में कर लिया गया हो।”

—तुलसीदास, (सं० १६५३ ई०), पृ० ४३।

१ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४३२।

२ शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४२८।

मिता मर जार्ज प्रियर्सन ने भी इसी सामग्री का आधार लेकर वेणीमाधवदास को पसका (सूकरखेत जिला गोडा) का निवासी बताया है।

“वेणीमाधवदास—पसका, जिला गोडा के १६०० ई० में उपस्थित यह गोसाईं तुलसीदास के शिष्य थे और लगातार उनके साथ रहते थे। इन्होंने उनका जीवन चरित ‘गोसाईं चरित’ नाम से लिखा था। यह १६४२ ई० में मरे।”

इतना लिखते हुए भी न जाने किस आधार पर उन्होंने सोरों को सूकरखेत का पर्याय मान लिया। यह उल्लेखनीय है कि इस स्रोत से प्राप्त सामग्री में परम्परा से गोडा के ही सूकरखेत से तुलसी का सम्बन्ध बताया जाता रहा है। पीछे अग्रेज शासकों ने भी डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के लिए सामग्री एकत्र करते समय इन्हीं स्रोतों को निरवसनीय माना।<sup>१</sup>

यह तो हुआ हिन्दी साहित्य के प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में पसका अथवा सूकरखेत की वास्तविक स्थिति और तुलसी से उसके सम्बन्ध का दिग्दर्शन। इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि उसकी तीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का रहस्य क्या है?

हम यह कह चुके हैं कि बाराह क्षेत्र अथवा सूकरखेत गोडा जिले की दक्षिणी सीमा पर सरयू घाघरा संगम पर स्थित है। इसलिये कुछ लोग इसे ‘सगम’ के नाम से भी पुकारते हैं। स्कन्दपुराण में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।<sup>२</sup>

१. भाटमं वनास्पृक्षर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान (हिन्दी अनुवाद—डा० किशोरी लाल गुप्त), पृ० १३५।

२. “वन आर दू गोडा बर्बीस हैव अट्रेन्ड सम मेयर आव लिटररी फेम। वेनीमाधोदास आव पसका वाज ए डिसाइपिल एण्ड कम्पेनियन आव तुलसी-दास हूज साइफ ही रोड इन बि फार्म आव ए पोपम, एन्टाइटिशड ‘बि गोस्वामी चरित’।”

—डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, गोडा पृ० ७५

३. दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।

तीर्थानि सरयू नद्या घर्षरोदक संगमे ॥

नियसन्ति सदा विप्र स्कन्दाद्वयगतं गया।

तस्मिन्संगमसलिले नरः स्नात्वा समाहितः।

संतर्प्य पितु देवाश्च दत्त्वा धानं स्वशक्तिः ॥

पीये भासि विशेषेण यः कुर्यात्स्नानमावृशः।

ब्राह्मण. सत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वर्णसंकरः ॥

पोष मास में इस तीर्थ में स्नान विशेष फलप्रद कहा गया है। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र का वार्षिक पर्वस्नान अब भी पोष पूर्णिमा को ही होता है।<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त 'छद्रयामल तन्त्र' के अयोध्या खंड में भी इस सगम तीर्थ का महात्म्य विस्तार से बताया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसा पुण्यक्षेत्र है जिसको वैष्णव मान में बड़ी प्रतिष्ठा है और जहाँ प्रतिवर्ष पोष मास में एक महान् पर्वस्नान होता है। इसी सगम पर सत्ययुग में भगवात ने वाराह अवतार धारणा किया था और हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया था, जिससे इसे वाराह क्षेत्र की सभा मिली।<sup>२</sup> 'गोसाईं चरित' में दिया गया सूकरखेत का वृत्तांत 'छद्रयामल तन्त्र' में उपलब्ध विवरण से पूर्णरूपेण समर्थित है।

स याति ब्रह्मण स्नान पुनरावृत्ति वर्जितम् ।

एकत सर्वतीर्थानि नाना विधि फलानि च ।

सरयू पर्यटोत्पन्न सगमस्त्वधिको भवेत् ॥

—स्कंदपुराण (बेंकटेश्वर प्रेस, १९६७ वि०) वैष्णव खंड—२, अयोध्या

महात्म्य, अध्याय ६, श्लोक ७९, ८१, ८२, ९०, ११० ।

१. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० २४६ ।

२. सगमे वतते देवि सर्वपाप प्रणाशन ।

तत्र स्नात्वा तु यत्पुण्य शृणु तत्कथयामि ते ॥

दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च ।

सरयू धर्धरे सगे तीर्थानि सति पार्वति ॥

हृत्वा वैष्णवं भस्त्रेण विष्णुलोक अजेश्वरः ।

पीठं मासि विशेषेण स्नानं बहु फलप्रबम् ॥

प्राप्नोति सकलं राज्यं दीपदानेन सुव्रते ।

यस्तु शुक्लं क्षतुर्वर्ग्या पीथे च सयतो व्रती ॥

वैष्णवो विष्णुं पूजां च कुर्वन्नरहरे कथाम् ।

गीत-वावित्र नृत्यैश्च विष्णुं सतोष कारकं ॥

सगमे विधिवद्भूत्वा स याति परमां गतिम् ।

धर्मं धर्मं तु कर्तव्यं यात्रा धर्माधर्मतत्परैः ॥

—छद्रयामल, तन्त्र, अयोध्या खंड, अध्याय २६, श्लोक ३६, ३७, ४३, ४४, ४५ ।

३. पुराकृतपुराणे देवि । पृथिव्युद्धरणं कृतम् ।

तत्र निष्पादिततीर्थं वराहेण महात्मना ॥

पुराणों में अवतारों के साथ उनकी शक्तियों के भी आविर्भाव की चर्चा यत्र-तत्र मिलती है। 'देवी भागवत' में वाराह भगवान की आदिशक्ति वाराही देवी का उल्लेख है।<sup>१</sup> गोडा जिले में 'गूकरखेत' के समीप वाराही देवी का स्थान 'उत्तरी भवानी' के नाम से अब भी एक सिद्धपीठ माना जाता है और वह वाराह भगवान की आदिशक्ति रूप में पूजी जाती हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल सप्तमी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है।

इस सम्बन्ध में एक अन्य प्रामाणिक साक्ष्य अनादि काल से रामभक्तों में प्रचलित परिक्रमा के अन्तर्गत गोडा के गूकरखेत की विशिष्ट तीर्थ के रूप में ख्याति भी है। महात्मा ब्रह्मादास (सं० १८७८-१९४९ वि०) ने रामभक्तों की तीन परिक्रमाओं का उल्लेख किया है—पचकोसी, चौदहकोसी और चौरासी-कोसी।<sup>२</sup> इनमें से प्रथम दो अयोध्या के सीमित तथा विस्तृत क्षेत्र की प्रदक्षिणायें हैं किन्तु तीसरी अर्थात् चौरासी कोस की परिक्रमा में अयोध्या के निकटवर्ती

हृत्वा दुष्टं हिरण्याक्षं पृथ्वीं स्वापनं कृतम् ।  
अथ देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भर मानसाः ॥  
समागम्य स्तुतिं चक्रुर्मन्त्रवाराहतुष्टये ।  
इति ध्रुवा तदा देवा गन्धर्वा मुनयस्तथा ॥  
तत्रैव निवसन्ति स्म समाकृत्वा विधानतः ॥

—बही, श्लोक ५६, ५७, ५८, ६३ ।

१. (क) वाराहे चैव वाराही सर्वेः सर्वाध्यासती ।  
मूल प्रकृति संभूता पञ्चीकरण मार्गतः ॥  
वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा ।  
उद्धार महीं हृत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥  
पूर्वं रूपं वराहं च रूपार स च सीतया ।  
पूजां चकार तां देवी ध्यात्वा च वरणां सतीम् ॥

—देवीभागवत, नवम् स्कन्ध, अध्याय ६, श्लोक २५, २७, ३३ ।

(ख) हिस्तिवट गडेटियर, गोडा, पृ० ३८ (परिशिष्ट) ।

२. पचर्कोस भरजाद चौदह चौरासी कोस

करत प्रदक्षिणा जो अति मन सार्ह है ।

अजय पुण्य ताको सब तोरण किये जो फल

करत पुराण मुनि जाकर बड़ाई है ॥

—जमयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८ ।

फेजाबाद, गोडा तथा बस्ती जिलो के कतिपय अन्य छोटे-छोटे तीर्थ भी आ जाते हैं। पहली दोनो परिक्रमायें क्रमशः कार्तिक शुक्ला एकादशी तथा नवमी को आरम्भ होती हैं और एक ही दिन में समाप्त हो जाती हैं। किन्तु तीसरी परिक्रमा चैत्र शुक्ला नवमी ( रामनवमी ) से लेकर पूर्णिमा तथा किसी भी दिन उठाई जा सकती है। उसका आरम्भ मनोरमा<sup>१</sup> से होता है जो अयोध्या से उत्तर गोडा जिले में मनवर नदी के उद्गम स्थल तथा उद्गतक ऋषि के पुत्र भचिवेता के आश्रम रूप में विख्यात है। इसी तीसरी परिक्रमा में सूकरखेत एक विश्राम स्थल है।<sup>२</sup> परिक्रमा समाप्त होने पर यात्री अयोध्या आकर जानकी-नवमी ( वैशाख शुक्ल ६ ) के दिन सीताकुंड में स्नान करते हैं।

महाराजा बन्नादास ने उपर्युक्त तीन परिक्रमाओं के अतिरिक्त राममत्तो में परम्परा से प्रचलित एक चौथी बृहत् परिक्रमा का भी वर्णन किया है जिसके भीतर अधिकांश रामतीर्थ आ जाते हैं। उनके शब्दों में उसका स्वरूप इस प्रकार है—

काशी से उठावै राम नाम लव लावै,  
प्रागराज में अन्हावै चित्रकूट कहँ आवई ।  
नोनपार धावै हिय अति हरपावै,  
क्षेत्र सूकर अन्हावै मनोरामा पर आवई ॥  
मिथिला को पाम नहि आनन्द समाय,  
बनसर धाराणसी पुर-कोशल चलावई ॥

१. उद्गतकमें यज्ञता पूर्व ध्याता सरस्वती ।

आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देश मुनि कारणात् ॥

पूज्यमाना मुनि गर्णवत्कलाजिन संवृते ।

मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता ॥

—महाभारत, शल्यपर्व, ३८ वां अध्याय, श्लोक २४, २५।

२. चौरासी कोस की परिक्रमा के विश्राम स्थल ये हैं—मनोरामा, भृगो ऋषि का आश्रम, गोसाईगंज, सूर्यकुंड, दराबगंज, आस्तिकाश्रम, जन्मेजय कुण्ड, अमानीगंज, मिथ केटरवा, सल्लनोपुर, पटरगा, कमियार, जम्बूतीर्थ, सूकर-खेत, उत्तरी भावनो ( बाराही देवी ), अमबही, गोकुलपुर, देढ़ी सगम, नवाबगंज, नगबा और सिकन्दरपुर ।

—विशेष विवरण के लिए देखिये—अयोध्या दिग्दर्शन, पृ० ५८-५९, (पं० रामरक्षा त्रिपाठी, एम० ए०)

बदे 'बनादास' परिक्रमा को स्वरूप यह,

रीसैं सियाराम मुख भांगे सोई पावई ॥'

यहाँ भी नीमपार (नैमिषारण्य) के पश्चात् और मनोरमा के पूर्व जिस 'क्षेत्र सूकर' अथवा 'सूकरखेत' का उल्लेख है, वह गोडा जिले का ही सूकरखेत है क्योंकि उसकी स्थिति उपर्युक्त दोनों तीर्थों—नीमपार और मनोरमा के मध्य में है। 'उभय प्रबोधक रामायण' में बनादास जी ने इसी प्रसंग में अपने तीर्थटन का वर्णन करते हुए सूकरखेत के स्थान पर उसके दूसरे नाम 'सगम' की भी चर्चा की है।<sup>१</sup> इसमें उक्त धारणा निश्चिन्त ठहरती है।

'गौतम चन्द्रिका' में एक स्थान पर कृष्णदत्त मिश्र ने तुलसी द्वारा रामतीर्थों के पर्यटन का भी उल्लेख किया है। उसमें दिए गए प्रारम्भिक तथा अंतिम यात्राक्रम से बनादास जी द्वारा प्रस्तुत परिक्रमा का स्वरूप बिल्कुल मिल जाता है।<sup>२</sup>

१ रामछटा, पृष्ठ ६६। इस सगम नाम का उल्लेख 'श्रव्यामल तत्र' और 'गौतम चन्द्रिका' दोनों ग्रंथों में हुआ है। महात्मा बनादास ने भी सूकरखेत के 'स' पर्याय की चर्चा अपने यात्रा-विवरण में की है।

२ काशी तीर्थराज चित्रकूट भोमसार लंके,  
सगम औ मनोरमा मिथिला सियाई है।

बनादास बक्सर बाराणसी पूर करै,

रीसैं सीयराम मुख भांगे तीन पाई है ॥

—उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८।

३ रामभक्ति रसमय भरी, सरि गोमती नहाइ।

शामखानि अघ हानि कर, कासी निबसे आइ ॥

तीर्थराज भरि मकर नहाहीं। कागुन चित्रकूट धलि जाहीं ॥

अवध निवास करहि मधुमाता। आइ करहि पुनि कासी वाता ॥

सागत मार्गसोपं भन भावन। कथित कृष्णगीता अति पावन ॥

रामविवाह महोत्सव जानी। तुलसी हिये भक्ति हुतसानो ॥

पुण सन कहि मोहि सग लिवार्ई। सिय भइके सुति रमा लपार्ई ॥

अवध सत मइलो निहारो। गावहि नारि मैथिली गारो ॥

बक्सर बापीं गौतमी, तुलसी मुखित नहाइ।

मुक्ति अम महिमा पढ़ी, कासी निबसे आइ ॥

—गौतम चन्द्रिका में तुलसी का वृत्तान्त, पृ० ११।

इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि सूकरखेत का नामोल्लेख तुलसी ने 'रामचरितमानस' के जिस दोहे में किया है उसकी टीका करते हुए मानस-मर्मज्ञों ने क्या विचार प्रकट किये हैं और उनकी इस स्थान की स्थिति विषयक क्या धारणा रही है। इससे यह भी प्रकट हो जायेगा कि प्राचीन काल से साधु समाज और तुलसी साहित्य के प्रेमियों ने किस सूकरखेत को मान्यता दी जाती रही है। यहाँ 'मानस' की केवल उन्ही टीकाओं से उद्धरण दिये जायेंगे जिनकी रचना सूकरखेत गम्बन्धी विवाद छिड़ने के बहुत पहले १६ वीं शताब्दी में हो चुकी थी।

रामचरितमानस के प्रथम टीकाकार महात्मा रामचरणदास ने अपनी 'रामायण टीका' यद्यपि स० १८८० में समाप्त कर ली थी किन्तु बालकांड का तिलक, जिसमें वह छंद आया है, स० १८५० में ही पूरा हो चुका था। 'रामचरितमानस बालकांड ने सातवें दोहे की टीका करते हुए वे लिखते हैं—

मूल—सो मैं निच गुह सनसुनी, क्या सो सूकरखेत।

समुझी नहीं तस बालपन, तब बति रहेउँ अचेत ॥

बोहार्य—सोई क्या हमारे गुहण को जाने कहाँ ते प्राप्त भई। सोई क्या है मैं अपने गुह ते सुन्यो है। क्या गु कहै सुष्टु पदार्थ को उत्पन्न करै ताको सूकरखेत कही। तहाँ सुष्टु पदार्थ श्री रामयज्ञ-गुण चरित सो सत्संग में गुहण ते सुन्यो है अथवा सूकरखेत कहै बाराह क्षेत्र, श्री अयोध्या के पश्चिम तीनि योजन सरपूतौर तहाँ सुनेउँ तब मेरी बाल अवस्था रहै अचेत दसा रहै।

इसके पश्चात् स० १९३२ में विरचित 'रामायण मानस प्रचारिणी टीका' में मानस के उपर्युक्त दोहे का अर्थ करते हुए जानकीदास कहते हैं—

'अब जो कोई पूछे कि भला तुम कहाँ पायो तापर कहते हैं कि पुनः यही क्या जो शंभु कीन्ह फेरि काक भुशुण्डि दीन्ह तिन्हते याज्ञवल्क्य पाये ते भरद्वाज प्रति गाये सो क्या कहूँ से हमारे गुहजी को प्राप्त भई सो हम अपने गुहजी से सुना कहाँ सुना सूकरखेत नाम बाराह क्षेत्र जो श्री अयोध्या जो से पश्चिम भाग में सरपू घाघरा को संगम है तहाँ पर अथवा सूकर नाम सुष्टु वस्तु जो करे सो को है सत सग सो सतसग क्षेत्र में अपने गुह से सुनी परन्तु समझी नहीं तस

१. संवत अष्टादस शुभग, सत्तरि अर्द्ध सप्ताह।

रामचरण ऋतुराज तिथि, पंच शुक्ल वंसाख ॥

—रामचरितमानस (सि० रामचरणदास)

२. रामायण टीका (रामचरणदास) नवलकिशोर प्रेस १८८७ ई० पृ० ६१।

जस श्री रामचरित मानस को स्वरूप है काहे ते कि तब बाल्यावस्था अति अचेत रहेउ ।<sup>१</sup>

‘मानस’ की ‘सत उन्मनी टीका’ के रचयिता ने इसी प्रसंग की व्याख्या करते हुए लिखा है—

‘तत्पश्चात् नैमिषवन के बाराह क्षेत्र नाम स्थान को साथ ही आये । तहा कुछ दिन रहे । वा वाल्मीकि अभ्यात्म इत्यादि रामायण श्रवण कियो । उनकी कृपा करि काव्य-शक्ति भई । .. बाराह क्षेत्र में, जो अयोध्या के पश्चिम ओर है ।’<sup>२</sup>

गोडा के इस झूकरखेत में पीप की पूर्णिमा को एक विशाल मेला लगता है जिसमें दूर-दूर से साधुओं के अवाड़े कल्पवास के लिये आते हैं । पसका गाँव में ही, बाराह मन्दिर<sup>३</sup> और धाघरा तट के बीच, एक पुरानी कुटी है जिसे वहाँ के लोग नरहरिदास की कुटी बतलाते हैं । इस स्थान में सीताराम लक्ष्मण विग्रह स्थापित हैं । मंदिर में पुराने बस्तो में बँधा हुआ हस्तलिखित एवं प्राचीन मुद्रित पुस्तको का छोटा-सा पुस्तकालय भी है । उसमें आनंदराम नामक किसी व्यक्ति की लिखी स० १८८४ की एक हस्तलिखित रामचरितमानस की प्रति सुरक्षित है । इस गद्दी पर अब बाबा जगदेवदास आसीन हैं । इनके गुरु स्वर्गीय बाबा ‘रामअवधदाम’ ने मुझे १८ वर्ष पूर्व अपनी परम्परा नरहरिदास के द्वितीय शिष्य रामकिशुनदास द्वारा प्रवर्तित बताई थी और अपने को नरहरिदास जी के पश्चात् उन गद्दी का आठवाँ महन्त बनाया था । सम्भव है लिखित रूप में पर पुरा सुरक्षित न रहने के कारण पूर्वाचार्यों की नामावली में दो-चार पीढ़ियाँ छूट गई हों ।

गुप्त के साथ ही गोस्वामी तुलसीदास के तथाकथित चचेरे भाई और सोरो सामग्री के मेहराब, प्रसिद्ध वृष्णभक्त कवि नंददास के भी निवासस्थान की स्थिति पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा । ‘भक्तमाल’ में वे चन्द्रहास के भाई और रामपुर नामक गाँव के रहने वाले बताए गये हैं । ‘दो सौ बावन वैष्णवों की बार्ता’ के अनुसार वे पूरव के निवासी और तुलसीदास के छोटे भाई थे । पहले वे रामानन्दीय सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और तुलसीदास के माय काशी

१ रामायण मानस प्रचारिका टीका ले० जानकीदास पृ० १२४ ।

२ सन्त उन्मनी टीका (१८८६ ई०) बालकांड पृ० २०४ ।

३ सरकारी कागजों में “कोठरी बाराह जी” का विवरण नकल खसरा आबादी गाँव पसका नम्बरो ४६७ हाता नम्बरो ६ में दिया गया है ।



राम चरित जिन कीन ताप त्रय कलिमलहारी ।  
करि पोथी पर सही आदरेउ आपु मुरारी ॥  
राखी जिसकी टेक मदन मोहन धनुषारी ।  
बालभीकि अवतार कहत जेहि सत प्रचारी ॥  
मन्ददास के हृदय नयन को खोनेउ सोई ।  
उज्ज्वल रस टपकाइ दियो जानत सब कोई ॥

मीतल जी के अनुसार इस प्रसंग में 'गुरुभ्राता' में रचयिता का तात्पर्य है 'बड़ा भाई' । यह विचारणीय है कि 'गुरु भ्राता' लोक प्रचलित 'गुरुभाई' का पर्याय है जिसका अर्थ सतीर्थ, सहृदीक्षित अथवा सहपाठी होता है, अग्रज नहीं । वार्ता-साहित्य में नन्ददाम गोस्वामी तुलसीदास के माघ काशी में निवास करने और रामानन्दीय सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की चर्चा है । मीतल जी द्वारा उद्धृत उपर्युक्त छंद में काशी के प्रसिद्ध विद्वान् 'शेष सनातन' का विद्यागुरु के रूप में

१. मेरे विचार में यहाँ 'पुरारी' पाठ होना चाहिए 'मुरारी' नहीं । गोस्वामीजी के जीवनयुक्त से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध किंवदन्ती के अनुसार, जिसका उपयोग प्रायः तुलसी के सभी जीवनीलेखकों ने किया है, भाषा में लिखे गये मानस की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देख कर काशी के संस्कृताभिमानी पंडितों ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि विश्वनाथ जी उसको सर्वधेष्ठता प्रमाणित कर दें तो हम विरोध करना छोड़ देंगे । कहते हैं गोस्वामी जी ने यह शर्त मान ली । फलतः उसी रात को 'रामचरित मानस' की एक प्रति विश्वनाथ मन्दिर में कपाट में बंद होते समय रख दी गई । प्रातः काल द्वार खुलने पर एकत्र जनसमुदाय यह देख कर स्तब्ध रह गया कि उक्त ग्रन्थ पर विश्वनाथजी की 'सही' अक्षति थी । प्रसंग में निदिष्ट 'सही' से रचयिता का आशय त्रिपुरारि शिव द्वारा की गई उक्त सही से है, 'मुरारि' से उसका कोई सम्बन्ध सञ्चित नहीं होता ।

२. अष्टछाप परिचय—श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३०२ ।

३. तुलसी के काशीवासी विद्यागुरु 'शेष सनातन' अर्द्धतः मतानुयायी थे । डा० पीताम्बरदत्त बडध्वाल ने इनकी अभिन्नता की सम्भावना शेष पंडित से व्यक्त की है जो शंकराचार्य के 'सर्व सिद्धान्त सग्रह' के टीकाकर शेष गोविन्द पिता थे । ये रामचरित मानस के विख्यात प्रशस्तक भधूसूदन सरस्वती के समसामयिक थे जिन्हें म० म० डा० गोपीनाथ कविराज ने स० १६५७ तक विद्यमान रहना स्वीकार किया है । डा० बडध्वाल का अनुमान है कि

उल्लेख भी है। ये तथ्य नन्ददास और तुलसीदास का गुरुभ्रातृत्व सर्वथा सगत ठहराते हैं। अतः सोरो-सामग्री का समर्थक कहा जाने वाला उपर्युक्त छंद स्वतः तुलसी और नन्ददास के सहपाठी होने की ही पुष्टि करता है—सगोत्री अथवा पितृव्य पुत्र होने की नहीं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत छन्द में संकेतित अन्य तथ्य भी सोरो सामग्री तथा उसकी एक प्रमुख आधारशिला 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में वर्णित घटनाओं का प्रात्याख्यायन करते हैं। प्रथम पंक्ति में जिस 'स्वगुरुभ्राता' तुलसी की पद-बदना नन्ददास ने की है उसकी 'टेक' रखने के लिए ही 'मदनमोहन' श्री कृष्ण ने 'धनुषधारी' राम का रूप धारण किया था और उसी के दिव्य उपदेश से विषयासक्त नन्ददास को भगवदासक्ति की प्रेरणा मिली थी। इसके विपरीत संवृत्त साम्प्रदायिकता के रंग में सराबोर 'वार्ता' के 'नन्ददास' पग-पग पर उपास्य के स्वरूप-भेद को लेकर तुलसी का विरोध करते और अपनी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति के द्वारा उनका पथप्रदर्शन करते दिखाए गए हैं। नन्ददास की उपर्युक्त रचना में अभिव्यक्त आत्मोल्लेखों के होते हुए भी परवर्ती भक्तों द्वारा साम्प्रदायिक महत्त्व को बढ़ाने के लिए गढ़ी गई वार्ताओं पर विश्वास कैसे किया जाय। समझ में नहीं आता कि भीतल जी ने इस छन्द को सोरो सामग्री का समर्थक कैसे मान लिया ?

'गोसाईं चरित' में नन्ददास को तुलसी का 'गुरुबन्धु' बताया गया है जो पूर्वोक्त 'गुरुभ्राता' का ही पर्याय है। किन्तु यहाँ ये सनातन नहीं कान्यकुब्ज कहे गये हैं—

कान्यकुब्ज एक विप्र नगर कनऊज द्विगवासी ।  
श्री गोसाईं गुरुबन्धु रहै श्री कृष्ण उपासी ॥  
नन्ददास मुझ नाम स्वच्छ कृत पद जग गावे ।  
और बुढुम्यी विप्र भक्ति प्रतिपच्छ न भावे ।

शेष पंडित अपने पुत्र शेष गोविन्द की वात्स्यायन्या में ही दिवंगत हो गये थे। इसलिए उनकी शिक्षा-बोक्षा आचार्य भयसूदन सरस्वती की देख-रेख में हुई (योग प्रवाह पृ० २६८-२६९)। समुपमागो भक्त गोस्वामी तुलसीदास को शारंगिक विचारधारा पर अद्वैतमत का गहरा प्रभाव इन्हीं शेषसनातन द्वारा प्राप्त शिक्षा का फल था। नन्ददास के 'भ्रमरगीत' में उद्धव द्वारा अद्वैत सिद्धान्त का निरूपण तथा भोली-भाली गोंपियों की ताकितता भी इहाँ का प्रसाद हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१. गोसाईं चरित, पृष्ठ १२।

‘गोसाईं चरित’ के प्रसंगों के उद्धारक भवानीदास ने कदाचित् प्रमादवश ‘नन्ददास प्रसंग’ में एक अन्य नन्ददास का वृत्त सन्निहित कर दिया है जिन्होंने अपने तपोबल से, भक्तमाल के अनुसार, एक मरी हुई गाय जिंदा दी थी। प्रियादास ने इनको बरेली निवासी बताया है। इतना छोड़कर उक्त प्रसंग में दिया गया समस्त वृत्त प्रसिद्ध अष्टछापी नन्ददास का ही है। ‘गोसाईं चरित’ के इन नन्ददास का आचरण तुलसी के वृष्णोपासक शुम्भधु नन्ददास के सर्वथा अनुरूप है। नन्ददास की रामावतार सम्बन्धी रचनाओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी की भाँति वे भी राम और वृष्ण में अभेद भावना रखते थे और उनकी लीला गाकर अपनी वाणी पवित्र करते थे।<sup>२</sup>

रामगुणगान के साथ ही नन्ददास द्वारा लिखे गये ‘हनुमान जी के पद’<sup>३</sup>

## १. नाभा ज्यो नन्ददास मुई यक बणिछ जित्ताई ।

—धौमत्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ४६०

भवानीदास की ही भाँति ‘गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित’ की रचयिता रानी कमल कुँवरि और तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार बंजनाय कूर्मवशी ने भी बरेली जिले के हवेली नामक ग्राम के निवासी इन्हें नन्ददास को तुलसी का भाई माना है।

## २ रामकृष्ण कहिए उठि भोर ।

ओहि अवधेश यही भ्रजजीवन धनुषधरन अरु मालनघोर ॥  
इत में अयोध्या निर्मल सरजू उतै जमुना जल करत किलोस ॥  
उत में दशरथ पुत्र कहाए इतै कहाए (धाया) नदकिशोर ॥  
उत में जानकी बाएँ विराजे इत राधे सग जुगल किशोर ॥  
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथसुत बाधा नन्द किशोर ॥

—नन्ददास ग्रन्थावली पृ० २७६-८० ।

## ३ जब कूछो हनुमान उबधि जानको सुधि लेन को ।

देखत बसमाथ अपने नाथ को सुखदेन को ॥  
अवन बदन तेज सदन पीत नयन मात हे ।  
उत्तर ते दक्षिण मानों मेरु उड्यो जात हे ॥  
जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात हे ।  
सत जोजन सिधु कूछो तो कितो एक बात हे ॥  
श्री रामचन्द्र पद प्रताप जग में जस जाको ।

‘नन्ददास’ सुरनर मुनि कौतुक भूले ताको ॥ —यही, पृ० २८५

इस सम्भावना को और बदल देते हैं कि उनके भक्त हृदय पर किसी समय रामभक्ति की छाप पड़ी थी। मेरी यह धारणा है कि ये रामानन्दीय संस्कार नन्ददास को अपने गुरु नरहरिदास तथा गुरुभाई तुलसी के दीर्घ सहवास से प्राप्त हुए थे। इनसे सोरों-सामग्री में चित्रित 'रामपुर' को खरीदकर 'श्यामपुर' बनाने वाले 'महाप्रभू के सेवक' कट्टरपथी वृष्णोपासक नन्ददास के आचरण का प्रत्यक्ष विरोध पड़ता है और यही तथ्य साम्प्रदायिक द्वेष से अनुप्राणित उक्त बातों की स्थिति स्पष्ट कर देता है। सोरो के नन्ददास, लीलापुरुषोत्तम के चरित गायक उदार, निस्पृह, भावावेशी भक्त तुलसी के गुरुबन्धु नन्ददास की अपेक्षा अत्यन्त अनुदार एवं लोकप्रपञ्चप्रस्त प्राणी प्रतीत होते हैं। उनका तुलसी से बिन्दुमार्गी बन्धुत्व प्रमाणित करने के लिए सोरो-पक्ष के समर्थको ने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे अत्यन्त एकांगी एवं भ्रामक हैं। नन्ददास की कृतियों में उपलब्ध अन्तः साध्यों से उनकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है।

सोरो के समर्थको ने अपनी उपपत्ति की पुष्टि के लिए तुलसीदास की कृतियों में प्रयुक्त भाषा की भी गवाही प्रस्तुत की है और उसमें से कुछ ऐसे शब्द, वाक्यांश, लोकोक्तियाँ तथा मुहाविरें, बूँड निकाले हैं जो, उनके अनुसार, सोरो के आसपास ही व्यवहृत होते हैं।<sup>१</sup> किन्तु डा० गोवर्धनलाल शुक्ल ने, जिनका उस प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जो वहाँ के रीति-रिवाजों तथा भाषा से भलीभाँति परिचित हैं, उनकी यह धारणा सर्वथा निर्मूल घसाई है। उन्होंने विस्तृत परीक्षा के अनन्तर तुलसी के ठेठ प्रयोगों को पूर्वी अवधी का अभिन्न अंग मानते हुए तुलसी साहित्य में निर्दिष्ट संस्कार, संगीत तथा व्यवगाय सम्बन्धी कतिपय शब्दों को सोरो में अप्रचलित तथा वहाँ के निवासियों को उनसे अपरिचित बताया है।<sup>२</sup>

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त भाषा के विकासात्मक अव्ययन से यह विदित होता है कि उनकी कृतियों में क्रमशः ठेठ अवधी (रामललानहूँ, पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि) परिष्कृत अथवा संस्कृतनिष्ठ अवधी (रामचरित मानस, रामायण

१. तोरप घर सौकर निकर, ग्राम रामपुर घास ।

सोई रामपुर श्यामपुर, कर्यो पिता नन्ददास ॥

—सूकरसेत्र माहात्म्य (कृष्णवांस) में अष्टाध्याय और अस्तम सम्प्रदाय—  
डा० दीनदयाल शुक्ल, पृ० ६०१ पर उद्धृत ।

२. तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० ७२-७५ ।

३. सोरों सामग्री पर एक दृष्टि—डा० गोवर्धनलाल शुक्ल, पृ० २७-२६ ।

प्रश्न, वरवै ) तथा ब्रजभाषा ( वैराग्य-सदीपनी, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, कवितावली और विनयपत्रिका) का प्रयोग हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असंभव नहीं होगा कि उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया वही उनकी मातृभाषा अथवा बाल्यावस्था में गृहीत भाषा थी। संयोगवश वह भाषा उसी स्थान की है जहाँ उन्होंने अति अचेतन अवस्था में गुरु के अन्तेवासी रूप में अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। उनसे द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और प्रतीक उसी क्षेत्र की भाषा से चुने गये हैं। शनै-शनै शिक्षा एवं सामाजिक सम्पर्क से ज्ञानवृद्धि होने पर प्रौढावस्था में उन्होंने उसका परिष्कार किया और उसी में मानस की रचना की। आगे चलकर साहित्यानुशीलन एवं देशाटन करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि, बल्लभ, राधावल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्णभक्तों और दरबारी कवियों ने ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस काव्य रचना की है। उन्होंने देखा कि इसी गुण के कारण वह उत्तरी भारत की एक सामान्य काव्य भाषा के रूप में समाहत हो चुकी है, अतः अपनी अधिकांश उत्तरकालीन कृतियों में उन्होंने ब्रजभाषा को ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह उल्लेखनीय है कि तुलसी ने ब्रजभाषा का ग्रहण एक परिनिष्ठित काव्यभाषा के रूप में किया था जैसे उनके अन्य समकालीन एवं परवर्ती अवध प्रदेशवासी भक्ति एवं रीति-परम्परा के कवियों ने किया था, कुछ मातृभाषा के रूप में नहीं। उनकी ब्रजभाषा में लिखी गयी रचनाओं में पूर्वी अवधी के शब्दों तथा मुहावरों का प्रचुर प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।<sup>१</sup> इसके विप-

१. (क) वैराग्य सदीपनी छ० १३, की मुखपट बोलते रहै : १४, ताहि । १६, गहेउ ३३, सहिदानु । ३६, जैसेहु कैंतेहु । ४०, हम नीके देखा कब जाई । ४५, फिरी बोलाई राम की मे कामाविक भागि ।

(ख) गीतावली—आलकांड पृ० २, असही हुसही । ४, कोलिमुडानी । १७, लेदमा । ८३, कनियां ।

अपोध्या—१८, बटोही । २०, चकचोधी लागे । २८, बरियार । ३१, बराइ । ३२, निहारिगे । ३७, देखवैया । ४०, उपही । ४६, उकठेउ । ६६, गोड । ८७, चुचुकारे । ८६, चाह ।

आरण्य—२, गर्वहि । ५, मेरवति । १७, अँचइ (भोजनोपरान्त हाथ मुँह धोकर) । किष्किधा—२, बहिवदि ।

सुन्दर—१, तरकि, लुक । १२, मोखे । २५, हुमकि, ताकि ३७, सई ।

उत्तर , धरहरिकरत । ६, बतकही । २१, सुपर । २२, कूटि ।

रीत ब्रजभाषा क्षेत्र में उत्पन्न हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में एक भी ऐसा नहीं दिखाई देता जिसने ठेठ अवधी में सफल काव्य-रचना की हो। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए तुलसी इसके अपवाद नहीं बनाये जा सकते।

तुलसी की ठेठ एवं परिष्कृत अवधी में लिखी गई कृतियों में प्रमुक्त भाषा का स्वरूप प्रायः वही है जो आज भी गोंडा जिले के पश्चिमी एवं दक्षिणी सीमान्त क्रमशः धाघरा के पुल से लेकर बस्ती जिले के पूर्वी भाग में बोली जाती है। 'सूकरखेत' इसके मध्य में स्थित है। इससे भी यही विदित होता है कि इस प्रदेश में गोस्वामी जी ने अपने वाल्यजीवन का अधिवाश व्यतीत किया था क्योंकि किसी स्थान की भाषा अपनी मौलिक प्रवृत्तियों सहित उसी अवस्था में पूर्ण-रूपेण ग्रहण की जा सकती है। इसी भाँति दीर्घकाल तक काशी और चित्रकूट में निवास करने के कारण उनकी कृतियों में क्रमशः भोजपुरी और बुन्देली के भी शब्द और मुहाविरों का स्वाभाविक रूप में आ गये हैं।

गोस्वामी जी की रचनाओं में यत्र-तत्र फारसी तथा अरबी भाषा के शब्दों का प्रयोग देखकर कुछ आलोचकों ने उन्हें उत्तर प्रदेश के पश्चिमी अंचल अर्थात् सीरों का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है।<sup>१</sup> उनकी यह दलील है कि

(ग) विलय पत्रिका—छं० ३३, खोंची। ३४, बिलगु न मानिए। ७०, खोंगिह। ७५, ऐसी हठ जैसी गाँठ परेतन की। ७६, रोटी लूगा नीके राखें। १०१, बराय। १०६, भँई। १४१, डहकत। २०४, खटाई। २१६, रिरिहा। २२६, कीर। २६१, जाउ जाउ। १५४, फोकट। १५६, अटखट, सरल, खटोला, बिहल, बटोरा।

(घ) बोहावली—छं० १५, भीठी अरु कठवत भरो। १४३, पुरखा। १६८, इगारहो। ३७७, निरावहि। ४०२, भरवर। ४२२, भट्हाये। ४६६, अगइ। ४७८, पाही खेती।

(ङ) कवितावली—मुन्दरकांड—छं० ४, निबुकि। ६, बुबुक बुबुकारी बेल ११, बाढ़ोजार।

संका काण्ड—१६, टसकत। २०, बहपट। ४६, फेरि फेरि।

उत्तर काण्ड—६, उपारि। १२, बेसाहे। १६, रिनियाँ। २२, खटाई। २४, देवैया। ४६, खुरपा खटिया। ६३, गढ़ि गुढ़ि छोखि छालि। ६७, कहाँ जाई का करो।

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी की भाषा पर सत्कालीन राजभाषा फारसी के प्रभाव की विवेचना करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के जो उदाहरण

सोरो और उसके आस-पास मुसलमानों की बस्तियाँ अधिक हैं। इन्हीं से अरबी फारसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी में मिलते हैं उतने पूर्वी हिन्दी में नहीं।<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि यदि मुसलमानों की बहुसंख्यक बस्ती और उनका सम्पर्क की तुलसी साहित्य में अरबी फारसी के शब्दों के अबाध प्रवेश का कारण मान लिया जाय तो सोरो की अपेक्षा मानस की आबिर्भावस्थिती अयोध्या और उसका गिफ्टवर्ती प्रदेश तुलसी की जन्मभूमि होने का अधिक अधिकारी है। इतिहास इसका साक्षी है कि उत्तरी भारत में दिल्ली और आगरा को छोड़कर अयोध्या ही सुलतानों के समय (१२५० ई०)<sup>२</sup> से लेकर नवाब आसफुद्दौला के शासन काल, १७७५ ई० तक लगातार पाँच सौ वर्षों तक प्रान्तीय शासन का मुख्य केन्द्र रहा है और उसी के नाम पर उक्त सरकार और सूबे को अवध की सजा दी जाती रही है।<sup>३</sup> इसके धार्मिक महत्त्व

बिधे हैं उनमें से एक है 'सोपर'। इसका शुद्ध फारसी रूप 'सिपर' है जिसका अर्थ होता है ढाल। त्रिपाठी जी का निश्चित मत है कि 'यदि सोपर' शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता तो फारसी कोष में से निकाल कर ये इस शब्द को प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।<sup>४</sup> तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५)। त्रिपाठी जी ने सोरो को तुलसी की जन्मभूमि मानते हुए भी उस क्षेत्र के कवियों की रचनाओं से ऐसे उदाहरण नहीं बिधे हैं जिनसे यह विदित होता हो कि वहाँ की बोल-चाल में ऐसे शब्द परम्परा से प्रयुक्त होते रहे हैं। किन्तु मुझे गोंडा के महाराज दत्तसिंह के शौर्य की प्रशंसा में कहा गया 'भानु कवि' का निम्नांकित दोहा मिला है जिसमें उक्त शब्द अपने प्रकृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

सिपर सिरोही सूरता, गई दत्त साध ।

आज मनोरा सारंगी, रही बितेन हाथ ॥

महाराज दत्तसिंह १६९६ में गोंडा के सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने नवाब सआदत अली खाँ की सेनाओं को परास्त कर पूर्वी अवध में एकछत्र राज्य स्थापित किया था।

—देखिए डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, गोंडा, पृ० १४६

१. तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५।

२. ए हिस्टोरिकल स्केच ऑफ़ बि फैजाबाद तहसील—कानूनी, पृ० २३।

३. वही, पृ० २।

को मिटाने के लिए मध्यकालीन मुसलमान शासक निरन्तर प्रयत्नशील रहे।<sup>१</sup> १५२८ ई० में बाबर ने रामजन्म भूमि का प्राचीन मन्दिर तोड़ कर उसके ध्वंसावशेषों से एक मस्जिद बनवाई जो अब तक विद्यमान है।<sup>२</sup> उसके परवर्ती मुसलमान बादशाहों ने इसका नाम बदल कर 'अस्तर नगर'<sup>३</sup> रखा किन्तु वह सरकारी कागज-पत्रों में ही दफन होकर रह गया। जनमानस में अयोध्या की स्मृति पूर्ववत् बनी रही और विशिष्ट पर्वों पर उसकी यात्रा कर वे मर्यादापुरुषोत्तम राम की राजधानी को थढ़ाजलि अर्पित करते रहे। इसके महन्व को नष्ट करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने जेता के ठाकुर का मन्दिर तोड़कर एक विपाल मस्जिद बनवाई जिसके खंडहर अब भी स्वर्गद्वार पर देखे जा सकते हैं। मुसलमान बादशाहों ने अयोध्या के आस-पास अपने सहर्षामियों की अनेक बस्तियाँ बसाईं और उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें देकर स्थापित्य प्रदान किया। बाराबंकी, दरियाबाद, फैजाबाद, अकबरपुर, शाहगंज, जौनपुर आदि नगर तथा अयोध्या में असंख्य कबरें और टूटी हुई मस्जिदों की मीनारे अब तक धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारों की गवाही दे रही हैं। इस प्रदेश में शताब्दियों तक प्रतिष्ठित मुसलमानी शासनकेन्द्र और उसके द्वारा प्रचारित इस्लामी रीति-रिवाजों और भाषा के दीर्घकालीन सम्पर्क से ही परवर्ती भक्त कवियों—मोहन साई, दूलनदास, बनादास, और युगलानन्दशरण ने फारसी अरबी के शब्द ही

१. अयोध्या पर चढ़ाई करने वाले सर्वप्रथम मुसलमान सेनाध्यक्ष सालार मसूद अकबरी के प्रतिनिधि सम्भव मसूद बेहानी (१०३० ई०) तथा शहाबुद्दीन घोरी के सेनाध्यक्ष मकदूमशाह खूरन घोरी (११६२ ई०) की कबरें क्रमशः बिड़हर और अयोध्या में अब तक देखी जा सकती हैं। जौनपुर में शर्की सल्तनत के संस्थापक स्वाजा जहाँ ने भी अपनी आयु का एक बहुत बड़ा भंश इसी नगर में व्यतीत किया था। उसकी मृत्यु भी यहीं हुई।
२. इसी मस्जिद को लेकर इधर कई वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों में वाद चल रहा है।
३. (क) ए हिस्टारिकल स्केच आव वि फैजाबाद सहसीत, पृ० २३।  
(ख) अयोध्या यात्रा ए मिन्ट टाउन आव अकबर एण्ड मुहम्मद शाह, सम वाप्स आव बि सेंटर बीग इन्सक्राइब्ड 'अस्तर नगर अधष'।  
—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, फैजाबाद, पृ० १७२।



नही अपनाये, रसज्ञ भाषा में वाच्य रचना भी की ।<sup>१</sup> मेरी यह धारणा है कि सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में पारसी, अरबी तथा इनकी उत्तराधिकारिणी उर्दू का जितना प्रभाव पूर्वी अक्षय्य क्षेत्र में बिगड़े गये वाच्य-प्रयोगों में मिसला है उतना पश्चिमी नहीं उसकी जगह भी अन्य उपाधा में नहीं पाया जाता । अतः हम्नामी

१. इनकी रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

अथप की भूमो पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें है तुलसी घीरा ।  
तवाक करते हैं रोम बिसबा विरवि मारव महेश गीरा ॥  
वह धड़ी अजब थी कि भिन्न धड़ी, वह बरतन बट का उगा घड़ी ।  
उसी शय में अड़के बुलब बुल उसे बँसे कोई करे बर्षा ॥  
हैरां हृष सब डेल कर बुबलत इसाही बर जहाँ ।  
न लुता मुअम्मा किसी से भी पोसीदा इसारारे निहाँ ॥  
सुना न देखा किसी ने पहले बना दिया उसने सबही बीरां ॥

—मोहन साईं (सं० १८१२ में वर्तमान) का एक गीत, मायुरी, वर्ष १४, सङ्क २, सं० ३, पृ० ३७४-६५ से उद्धृत ।

अब तो मफसोत मिटा बिल का बिलबार बीर में आया है ।  
संतों की गुह्यत में रह कर हक हादी की तिर माया है ॥

—सन्तवाणी संग्रह, भाग २, दूसमबास, पृ० ६४ ।

सतपो ॥ कैरों बिलों की बम बह बान गून के ।  
बफनी में डालो लुगी की आसिक उसी मकबूल में ॥

—पलटू साहब की शम्शावली, पृ० २३६ ।

धर्मों की अवा डेलि के चितचूर हुआ है ।  
बया दिल के अँधेरे में यह पुरनूर हुआ है ॥  
जाती था बहुत रोजों ने जातिर छराब छार ।  
मेहनत बर्षर शौक से भरपूर हुआ है ॥

—रहस्य पदावली, मुगलानन्दसरण, पृ० ५६ ।

जिगर से जलम भारी है । दसा बिरही की न्यारी है ॥  
खरे नैना उवासे हैं । लेत गहरी जसासे हैं ॥

स्रोतो से आये हुये शब्दों, लोकोक्तियों और मुहाविरों के सफल प्रयोग को ध्यान में रखते हुए भी अयोध्या और उसके निकटवर्ती 'मूकरखेत', जो तुलसी की आदि शिक्षाभूमि मान लेने में कोई अटकन नहीं दिखाई देती ।

इसी प्रसंग में तुलसी द्वारा निर्दिष्ट तत्कालीन लोक जीवन में फैली हुई बहराइच की दरगाह के चमत्कारी प्रभाव विषयक भ्रान्त धारणाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए । यह विचारणीय है कि रामकथा तथा अपने विरक्त जीवन से सम्बद्ध सीधों के अतिरिक्त तुलसी ने अपनी कृतियों में केवल इसी स्थान की चर्चा की है, जो गोडा वाले 'मूकर खेत' से कुछ ही दूरी पर स्थित है । बाल्यकाल में गुरु के सान्निध्य में पसका अथवा मूकरनेत में तथा वयस्क होने पर अयोध्या निवास करते समय उन्होंने प्रतिवर्ष जेठ के महीने में हजारों की संख्या में लोगों को नेत्रज्योति, पुन तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा से सालार मसऊद शाही के दरगाह की जियारत के लिए जाते हुए देखा होगा और उस समय उनके हृदय में जनता की अधानुमारिणी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई होगी । शुद्ध सांसारिक स्वार्थों के लिए एक नृशस आक्रामक की कथपूजा उनकी दृष्टि से भूत पूजा से भी अधिक निंदनीय थी । बहराइच की दरगाह के मेले में आनेवाले यात्रियों की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में तुलसी की इस विस्तृत जानकारी का कारण उनका उसके निकटवर्ती प्रदेश में दीर्घकाल तक निवास ही हो सकता है ।

मूकरखेत की स्थिति पर विचार करते हुए यह भूलना चाहिए कि गोडा का मूकरखेत आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है जिस रूप में उसका उल्लेख परम्परागत साहित्य में होता आया है । सोरा की तुलसी के जीवन से सम्बद्ध करने के लिए जो नए-नए प्रमाण निलय लाए जा रहे हैं वे उसे बाराहवतार का स्थान तो बना सकते हैं, क्योंकि इस गौरव के अधिकारी अनेक तीर्थ हमारे यहाँ बहुत

अधर सूखे बदन जरखी । रंगे अंगरग ज्यों हरखी ॥  
भले अंतर अलाया है । बाह्य सो रंग छाया है ॥  
हृदय की कौन लखि पावै मुहम्मद जाते बढ़ती है ।  
बना माथूक जब राखी बसा निसि बिबस चढ़ती है ॥

१. लही आँख कब आँधरे घातपूत कब ल्याय ?  
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाय ॥

हले से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं किन्तु उनके आधार पर उसे तुलसी का 'सूकरखेत' सद्ध नहीं किया जा सकता ।

अतः जब तक सस्कारमुक्त चित्त से विपदा में ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये जाते, तब तक शताब्दियों से तुलसी के गुब्बारा रूप में प्रतिष्ठित, तुलसी-प्रेमियों तथा रामभक्तों के बीच एक पुण्य क्षेत्र की भाँति समादृत और 'मानस' एवं उसके चरित नायक की जन्मभूमि अयोध्या के निकट सरयू तट पर स्थित, गोशाला के सूकरखेत का महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा ।

## रामलला नहछू : पुनर्विचार

रामलला नहछू लोकगीत शैली में लिखी गई तुलसी की एक छोटी-सी रचना है। इनकी भाषा ठेठ पूर्वी अवधी है। जानकी-मंगल तथा पार्वती-मंगल की भाँति यह भी मुडन, उपनयन, विवाह आदि मंगल अवसरों पर गाया जाने वाला एक सत्कार-गीत है। रचयिता ने इनका गान सभी प्रकार की भौतिक एवं पारमार्थिक उपलब्धियों का साधक बताया है—

जे यह नहछू गावई गाइ सुनावई हो ।

ऋद्धि मिद्धि कल्याण मुक्ति नर पावई हो ॥<sup>१</sup>

### प्रेरणा एवं आधार \*

इस ग्रन्थ के उपक्रम एवं उपसंहार से यह स्पष्ट विदित होता है कि इसकी रचना में कवि का उद्देश्य भाग्यनिक अवसरों पर स्वस्थ सामाजिक मनोरञ्जन के साथ ही उपयुक्त गीतों के माध्यम से गायकों तथा श्रोताओं का आध्यात्मिक उत्थान भी रहा है। उक्त तीनों मंगल-काव्य विशेषरूप से अशिक्षित ग्रामीण स्त्री-समाज की दृष्टि में रचकर लिखे गए हैं।<sup>२</sup> लोकभाषा का प्रयोग इसीलिए किया गया है।

१ (क) उपवीत व्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं ।

तुलसी सकल कल्याण ते नर नारि अनुबिन पावहीं ॥

—जानकीमंगल, २१६ ।

(ख) कल्याण काज उछाह व्याह सनेह सहित जो गाइहैं ।

तुलसी उभासकर प्रसाद प्रभोव मन प्रिय पाइहैं ॥

—पार्वतीमंगल, १६४

२. रामलला नहछू, २० ।

३. प्रेमपाठ पठ डोरि गोरि हर गुन मनि ।

मंगल हार रचेउ कवि मति भृगुस्तोचनि ॥

कुछ विद्वानों का विचार है कि अपने समय में नहुछू के अवसर पर गाये जाने वाले अश्लील गीतों को सुनकर उनकी प्रतिक्रिया-स्वरूप तुलसी ने इस भक्तिपूर्ण सस्कार-गीत का निर्माण किया था ।<sup>१</sup> किन्तु निम्नांकित तथ्यों के प्रकाश में यह अनुमान निराकार ठहरता है—

(१) तुलसी इस बात से पूर्णतया अवगत थे कि लोक-जीवन में जो मार्गलिक गीत प्रचलित हैं, उनमें राम तथा सीता चरित व्यापक रूप से गाया और सुना जाता है । रामचरित मानस में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

स्थाम सुरभि पय बिसद अति, करहि गुनद सब पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गायहि सुनि सुजान ॥”

रामकथा पर आधारित ये ग्रामगीत मस्कार-गीत ही रहे होंगे, कारण कि लोक-स्तर पर व्यापक रूप से वे ही प्रचलित होते हैं । स्वयं तुलसी ने ‘रामलला नहुछू’ की रचना उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके की, यह ‘रामलला नहुछू’ और उस अवसर से सम्बद्ध लोकगीतों की शब्दावली की समानता से स्वतः सिद्ध हो जाता है ।<sup>२</sup>

मृगमयनि विषुववनी रवेउ मनि मजु मजुल हार सो ।

उर घरहु जुवतो जन विलोकि तिलोक सोभा सार सो ॥

—पार्वतीमंगल, १६३-६४ ।

१. ‘श्री अयोध्याजी में किसी के नहुछू उत्सव में श्रीगोस्वामी जी प्यारे थे । वहाँ किसी भाटिन के कुछ अनुपयुक्त एवं अश्लील नहुछू गीत सुने । आप वहाँ से उठ चलने पर उद्यत हुए । जानकर लोगों ने गान बंद करा दिया । तब उस भाटिन ने समा माँगी और उपयुक्त गीत बना देने का प्रार्थना की । तब ग्रन्थकार ने इसका निर्माण किया ।’

—रामलला नहुछू (सिद्धांत तिलक), उपोद्घात, पृ० ३ ।

२. रामचरित मानस, बालकाण्ड, दो० २० ।

३. ‘के बिहल छुटकी मुँबरिया के बिहल रूप हे ।

के बिहल रतन पवारम भरि गयउ सूप हे ॥

केकड़ बिहल छुटकी मुँबरिया सोमित्रा बिहल रूप हे ।

कौसिला बिहल रतन पवारम भरि गयउ सूप हे ॥

—तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त) पृ० २०४ पर रामलला नहुछू (स० १६६५ के हस्तलेख से उद्धृत) ।

(२) मर्यादानिष्ठ काव्य-रचना के समर्थक होते हुए भी तुलसी मांगलिक अवसरो पर गये जाने वाले गीतो मे हास-परिहास के लिए छूट देने के पक्षपाती थे। जनकपुर मे रामविवाह के अवसर पर वरपक्ष के पुरुषो और स्त्रियो का नाम लेकर गाई जाने वाली गानियो मे उन्होने 'रस लिया है और उन्हे अवसरोचित मानकर अभिनदनीय ठहराया है—

‘जैवत देहि मधुर घुनि गारी। ले ले नाम पुष्प अरु नारी ॥

समय मुहावनि गारि बिराजा। हंसत राउ सुनि सहित समाजा ॥’

‘रामलला नहछू’ मे इन गानियो के एकाध नमूने रख कर वृत्तिकार ने ‘प्रकारान्तर से लोकमानस से तादात्म्य स्थापित किया है। इस प्रकार की शिथिलता आलोच्य ग्रन्थ के शृङ्गारी वर्णनो मे कई स्थलो पर, विशेष रूप से नेग-हारिनो के हावभावो के वर्णन मे, तुलसी ने जानबूझ कर बरती है, जिससे चिढ़ कर नवीन दृष्टि सम्पन्न आलोचको ने ‘रामलला नहछू’ को ‘महात्मा कहलाने वाले एक मनोरोगी कवि मनीषी की मानसिक रतिलीमा’ तक कह डाला है। साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परंपराओ से विन्ध्यन्न साहित्यिक मूल्यांकन मे इस प्रकार का दृष्टिदोष सहज संभव है।

कहने का तात्पर्य यह कि ग्राम्य भाषा एवं लोकगीत शैली में रामचरित के मांगलिक प्रसंगो का वर्णन कर तुलसीदास जहाँ एक ओर इनके माध्यम से लोक-जीवन मे व्याप्त रामनिष्ठा को सांस्कृतिक स्तर से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे, वही दूसरी ओर तथाकथित शिष्ट एवं

केई बीना छुटकी मुंदरिया केई बीना रूप ।

केई बीना रतन जडाऊ त भरिया है रूप ॥

केकई ने छुटकी मुंदरिया कोशिल्या रानी रूप ।

सुमित्रा रानी रतन जडाऊ तो भरिया है रूप ॥ —ग्राम्य साहित्य

(पं रामनरेश त्रिपाठी) पृ० २५५ ।

अन्य मुद्रित प्रतियों में यही पंक्तियाँ इस रूप में मिलती हैं—

राजन बीन्हे हायो रानिन्ह हार हो ।

भरियो रतन पवारय रूप हजार हो ॥

—तुलसी ग्रन्थावली (रामलला नहछू) छव १७, पृ० ५ ।

१. रामचरित मानस : बालकाण्ड : ३५६ ।

२. परिशोध, अंक ११, पृ० २६ ।

(१) 'नहलू' में तुलसी ने स्पष्ट रूप से सस्वार वर्णन के प्रसंग में राम को 'दूलह' और 'बर' की सजा दी है, जो किसी भी स्थिति में उपनयन के लिए अनुष्ठित ब्रह्मचारी का बोधक नहीं माना जा सकता। यह लोकप्रसिद्ध है कि यज्ञोपवीत के हेतु वेदी पर उपस्थित बालक 'बटु, ब्रह्मचारी या बरुआ'<sup>१</sup> के नाम से संबोधित होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीतों में राम के भी जनेऊ के गीत पाये जाते हैं। उनमें भी राम को बरुआ या बटु ही कहा गया है—  
दूलह या बर नहीं।

(२) 'नहलू' में कहीं भी यज्ञोपवीत मस्कार का वर्णन नहीं आया है। पर-परागत लोकाधार के अनुसार इस अवसर पर बटु का शीर-सस्कार, शरीर में हल्दी लेपन, मुगधाला तथा कुश की आमनी बगल में दबाकर पुस्तक और काठ की तस्ती लेकर अध्ययन के लिए काशी जाने को उद्यत होना,<sup>२</sup> वेदपाठ,<sup>३</sup>

१. कासी में बरुआ पुकारेले हथियाँ जनेउवा लेले ।  
है कोई कासी के ठाकुर हमके जनेउवा बिहे ।  
कासी के ठाकुर विस्वनाथ बाबा उहे उठि बोललें ।  
हम अही कासी क ठाकुर हमही जनेउवा देवों ॥

—ग्राम्य साहित्य, पृ० २४।

२. राजा दसरथ आँगना भूँजि कोसिल्या रानी भल धीरे ।  
सपकि सपकि धीरें दूनौ हाथे धीरें ।  
रापचन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जायें जनेउवा के वारन ॥

—ग्राम साहित्य, पृ० २४२।

३. बेटु न माता मोहि सतुव औ गुड भेटुवा ।  
जहाँ में कासी बनारस भेद पढ़ि अइहों ॥

—यही (जनेऊ गीत), पृ० २३६।

४. गलिया कं गलिया पडित घूमै हथवा पोषिया लिहे ।  
कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम कं जनेऊ ॥२॥  
बांसन धोतिया शुद्धत होइहैं बरुआ जेवत होइहैं  
पडित वेद पढ़ें रैं ।  
आँगन डोल घमाकें दइव अस गरजें ।  
उहे बखरिया राजा दसरथ तो राम कं जनेऊ ॥२॥  
गलिया कं गलिया नाऊ घूमै हथवा किसबतिया लिहे ।  
कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम कं जनेऊ ॥३॥

ब्राह्मण भोज, कुल के मान्य (फूफा या बहनोई) के द्वारा जनेऊ अर्पण' मृगछाला एवं पलास दंड धारण' आदि क्रिया कलापो का आयोजन होता है किन्तु 'नहछू' में इसका कहीं उल्लेख नहीं है। जिस लोकगीत शैली में इस सस्कार गीत की रचना हुई है, उसमें राम के जनेऊ के भी गीत हैं और उनमें इन सारे कृत्यों का वर्णन बड़े ही सरस ढंग से किया गया है। एक गीत में राम जनेऊ के लिए हठ करते हुए भूमि में लोटते हुए दिखाये गये हैं। महाराज दशरथ उन्हें उठाकर गोद में बैठाने हैं और सोने का जनेऊ भेंट देने का आश्वासन देकर उन्हें बह-साते हैं।<sup>१</sup> एक दूसरे गीत में आठ वर्ष की अवस्था होने पर राम को जनेऊ देने के लिए महाराज दशरथ वशिष्ठ से प्रार्थना करते-हैं—मादव बनाया जाना है, उगले नीचे राम खड़े होते हैं। वे तीदन घूप के कारण व्याकुल हो जाते हैं और माता कौशल्या को वे शीघ्र भिक्षा की तैयारी करने को कहते हैं, शास्त्रीय नियम

बाँसन धोतिया.....

गलिया के गलिया बढैया धूमै हथवा जिहे पटुलिया ।

कवन बखरिया ..

बाँसन धोतिया.....

गलिया के गलिया कुम्हरवा धूमै हथवा बरीवा लिहे ॥७॥

कवन बखरिया ..

बाँसन धोतिया.....

१. गलिया के गलिया फूफा धूमै हथवा जनेउवा लिहे ॥१॥

कवन बखरिया ..

बाँसन धोतिया.....

उहै बखरिया राजा दसरथ ती राम क जनेऊ ॥१०॥

२. पूछे कौसिला देई राजा दसरथ से बात रे ।

कैसेक होई राजा रामजी के जनेउ रे ।

हथवा पलास बडा गले मृगछाल रे ।

सोने का खड़जमा राम क जनेउ रे ।

३. राजा दसरथ अंगना मूँजि सुमित्रा रानी भल धीरे

लपकि लपकि धीरे बूनी हाथे धीरे ।

रामन्द्र बढा भुइयाँ सोठि जाय जनेउवा के धारन ॥

राजा दसरथ मारिनि मूरिन जाँघ बँठाइन ।

देवे बेटा सोने जनेउ जनेउवा बडा उत्तिम ॥—यही, पृ० २४२ ।



से क्षत्रियो का यज्ञोपवीत ग्रीष्म में होना चाहिए—लोकगीत में इसका भी निर्वाह किया गया है ।

(३) यज्ञोपवीत के गीतों की एवं उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनमें चित्रित वातावरण आद्योपाद्य गम्भीर, सात्विक और मर्यादाबद्ध रहता है । शृङ्गारिकता की वही क्षणक तक नहीं आते पाती । इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए इस अवसर के सारे नेमी नाई, माली, कुम्हार, लोहार पुरुष होते हैं किन्तु इसके विपरीत विवाह के अवसर पर आयोजित 'नहछू' में शृङ्गारिकता का पर्याप्त पुट रहता है । इसलिये उसमें पुरुष के स्थान पर स्त्री नेगहारिनी की योजना की जानी है । तुलसी के 'नहछू' में प्राप्त शृङ्गारी वर्णन उसे विवाह सरकार से धनिष्ठरूपेण सम्बद्ध सिद्ध करते हैं ।

(४) तुलसी ने अपनी अन्य कृतियों में—यहाँ तक कि रामचरित मानस में भी, यज्ञोपवीत संस्कार को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया है । मात्र एक चौपाई में कुमार होने पर चारो भाइयों को गुरु, पिता तथा माता द्वारा 'जनेऊ' प्रदान करना और उसके पश्चात् गुरु के घर जाकर राम का अल्पकाल में ही सभी विद्याओं में निष्णात हो जाना बताया गया है । उनकी किसी रचना में इस अवसर पर आयोजित 'नहछू' का निर्देश नहीं है । यह वृत्त भी उत्तरी भारत में प्रचलित 'जनेऊ' सम्बन्धी लोकगीतों के अनुकूल ही है ।

(५) तुलसी ने महाराज दशरथ द्वारा चारो भाइयों के नामकरण, चूडाकरण और यज्ञोपवीत संस्कारों का साथ साथ आयोजित होना बताया है । इसके दो कारण थे—एक था सबका प्रायः समवयस्क होना और दूसरा था आगे-पीछे करने में रानियों के बीच मनोमार्मिक उत्पन्न होने की सम्भावना । परन्तु जनकपुर से प्राप्त सूचना के अनुसार केवल राम का विवाह करने के लिए उनका बारात सजाकर ले जाना दिखाया गया है ।<sup>१</sup> यह दूसरी बात है कि राम का

१ भये कुमार जर्वाहि सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितृ माता ॥

गुरुगृह पढ़न गये रघुराई । अल्प काल बिद्या सब आई ॥

—रामचरित मानस, अल० २०२।३।४ ।

२ जनमे एक सग सब भाई । भोजन सयन केलि हरिकाई ॥

करनबेध, उपवीत बिद्याहा । सग सग सब भये उद्यहा ॥

—वही, अयो० १० । ५, ६ ।

३. महाभारत के रामोपाख्यान में केवल राम के विवाह का उल्लेख है, उसमें अनुभञ्ज तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाह की कोई धर्चा नहीं है । सम्भ-

विवाह हो जाने पर बाद में शेष तीनों भाइयों की भी उसी घर की तीन बन्ध्याओं के साथ भाँवरें पड़ गईं। इस विचार से 'राम विवाह' ने साथ ही 'रामलला-नहछू' में सम्बन्धित नहछू विषयक लोकाचार का पृथक् रूप से वर्णन संगत था किन्तु उसे एक साथ आयोजित चारों भाइयों के यज्ञोपवीत ने साथ जोड़ देना अनुचित ठहराया जाता।

इन असंगतियों के होते हुए 'नहछू' को यज्ञोपवीत के अवसर पर अनुष्ठित मानना तथ्यों की ओर से आँख मूँद लेना है।

(ख) नहछू विवाह के समय का है और मिथिला में हुआ—इस मत के पुरस्कर्ता हैं सम्पूर्ण तुलसी साहित्य ने सिद्धांततत्त्विककार अयोध्या के महात्मा श्रीकान्त शरण।

राम विवाह की ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखते हुए यह स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती कि राम का नहछू सत्कार महाराज दशरथ के अयोध्या से बारात लेकर मिथिला पहुँचने के बाद और विवाह के पूर्व मिथिला में ही हुआ होगा। परन्तु तुलसी ने 'मायन' 'नहछू' आदि कृत्यों का अयोध्या में होना और उनमें राम-सदमण की उपस्थिति दिखा कर इसकी यथार्थता पर प्रशंसा लगा दिया है। श्रीकान्तशरण जी ने अपनी धारणा की पुष्टि राम-चरित मानस में निर्दिष्ट कल्पभेद सिद्धान्त ने अनुसार रामचरित की विभिन्नता का साक्ष्य प्रस्तुत करके की है और इसी नियम के अनुसार जनकपुर में कृत्रिम अयोध्या निर्मित कर 'नहछू' का उत्सव करने की बात लिखी है।<sup>१</sup>

यत यह वाल्मीकि रामायण के पूर्ववर्ती लोक परम्परा में प्रचलित किसी भाष्यान पर आधारित है। बाद की रामकथा में वाल्मीकि रामायण के अनुसार उक्त दोनों प्रसङ्गों का समावेश हो गया किन्तु लोकमानस उसी प्राचीन धूस को संजोए रहा जो लोकगीतों में अब तक सुरक्षित है। 'राम-लला नहछू' में इसकी छाया उसी माध्यम से आई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१ 'धोरामजी ■ अवतारों एवं उनके चरितों में ऐसे भेद कल्पभेद ■ माने जाते हैं। जैसे कि गोस्वामी जी ने ही धोरामचरित मानस में परशुराम पराजय प्रसंग, धनुषभग के साथ उसी मङ्गल में लिखा है और फिर उसी चरित को अपने गीतावली रामायण में उन्होंने ही वाल्मीकीय रामायण की रीति से बारात लौटने के समय मार्ग में लिखा है, गया—'जनकसुता समेत आवत गृह परशुराम अतिभयहारी (गी० ३. ३८)। यह भेद कल्पभेद का है। किसी

श्रीकान्तशरण जी की यह उपपत्ति एक दूरारुद्ध कल्पनामात्र प्रतीत होती है। परशुराम प्रसंग के जो दो भिन्न उदाहरण उन्होंने दिये हैं, उनके उत्स राम-काव्यप्रति किसी न किसी प्राचीन ग्रन्थ में मिल जाऊँ हैं। इसीलिए तुलसी की कृतियों में लक्षित तत्सम्बन्धी भेद निराधार नहीं कहा जा सकता। किन्तु 'हृन्निम' अयोध्या वाली उनकी कल्पना वाल्मीकिरामायण की परम्परा में निर्मित परवर्ती रामायणों, संस्कृत के ललित रामकाव्यों, जैन एवं बौद्ध रामचरितों—आदि स्रोतों में से किसी के द्वारा समर्थित नहीं है।

इसकी अपेक्षा मियिलावासियों की 'लहलूगोट' में अभिव्यक्त वह धारणा कहीं अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय कही जा सकती है, जिसमें हृन्निम अयोध्या का झमेला न खड़ा कर बुले रूप में राम का नहछू जनकपुर में होना स्वीकारा गया है और नेमिहारिणों के निछावर माँगने पर राम के द्वारा उन्हें अयोध्या लौटने पर मनचाहा नेम देने का आश्वासन दिलाया गया है।<sup>१</sup>

(ग) नहछू विवाह के समय का है किन्तु हुआ है अयोध्या में ही। तुलसी ने प्रस्तुत रचना में इन दोनों बातों का स्पष्ट रूप में उल्लेख किया है। इन पक्तियों के लेखक का मत है कि रचयिता के एतद्विषयक निर्देशों को प्रवृत्त रूप में स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। वस्तुतः होनी भी नहीं चाहिए क्योंकि रचना की निर्माण-प्रक्रिया, समय, स्थल तथा प्रयोजन व सम्बन्ध में कृतिकार का ही साध्य सर्वाधिक विश्वसनीय एवं अन्तिम माना जाता है। जब तक इस

कल्प में इस रीति से लीला हुई है। यथा—

माना भौति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥

कल्पभेद हरिचरित सोहाये । भौति अनेक मुनोसह गाये ।

करिय न ससय अत उर आनी । सुनिय कथा सादर रति मानो । ?

मानस, भा० ३३/६, ७, ८ ।

इस नियम के अनुसार किसी कल्प में श्रीरामजी के 'मायन' एवं 'नहछू' आदि कृत्यों के उत्सवानव की लालसा से बारात के साथ श्री अयोध्या जी के नेगी एवं मातागण तथा निछावर लेने के लिए याचक आदि गये थे। उस कल्प में श्री जनकपुर में ही जनवास के पास हृन्निम श्री अयोध्या नगर एवं भीमहरणगह तथा मांडव आदि बने थे। वहाँ पर उक्त 'मायन' और 'नहछू' के कृत्य हुए थे।<sup>१</sup>

—रामलता नहछू ( सिद्धांत तिलक ), उपोद्घात, पृ० १, २ ।

विषय में जो मतभेद प्रदर्शित किये गये हैं, उनका मूल कारण आलोचको अथवा टीकाकारों का शुद्ध भ्रम रहा है, 'रामलला नहछू' और उसके रचयिता की शब्दावली नहीं। आलोचकों को यह ध्यान ही नहीं रहा कि वे जिस रचना की समीक्षा करने जा रहे हैं, वह लोकगीत शैली की है, अतः उसकी प्रवृत्ति एवं परम्पराओं को समझ कर तदनुकूल सिद्धान्तों के द्वारा उसका मूल्यांकन करें। ऐसा न करके उसे इतिहास एवं साहित्यशास्त्र के नियमों की कसौटी पर कसा गया। इस विवेकहीन पद्धति का अनुसरण करने से कुछ गण्यमान्य विद्वानों को तुलसी ऐसे समर्थ मर्यादानिष्ठ एवं जागृक कवि की लेखनी से निःसृत पत्तियों में स्थान-स्थान पर शिथिलता, अनेतिहासिकता, अश्लीलता, आदि दोषों की भरमार दिखाई पड़ी।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं और उनके रचना-क्रम पर विचार करते हुए 'रामलला नहछू' की विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। उनके पहले और बाद में भी अब तक उतने विस्तार से उक्त प्रश्न पर विषय तथा शैली की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है।

गुप्तजी ने 'नहछू' को विवाह के अवसर पर अयोध्या में अनुष्ठित तो स्वीकार किया है किन्तु कुछ आपत्तियों के साथ। उनका सबसे सबसे बड़ा एतराज इस बात पर है कि जब विवाह के सारे कृत्य मिथिला में हुए और उसके पूर्व राम अयोध्या आये ही नहीं तो 'नहछू' का अयोध्या में होना कैसे लिख दिया गया? इसे वे तुलसी की पहली और अक्षम्य ऐतिहासिक भूल मानते हैं। उनके इस मत का समर्थन कुछ अन्य विद्वानों ने भी किया है। 'नहछू' के अनुष्ठान स्थल के सम्बन्ध में व्याप्त सारी भ्रांतियों एवं आपत्तियों की जड़ यही ग्रन्थि है। अतः इसका विश्लेषण एवं अन्वीक्षण आवश्यक है।

लोकगीत शैली में निर्मित 'रामलला नहछू' में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव घोषित करने के पूर्व सुधी आलोचकों को यह देखना चाहिए था कि नागर साहित्य की भाँति लोकगीतों में घटनाओं के कालक्रम तथा कार्यकारण-सम्बन्ध का निर्वाह नहीं पाया जाता। लोककाव्य का उद्गम स्थान समष्टि मानस है। समाज का मन एक स्वर में बँध कर ही गीत का रूप धारण करता है—इस प्रक्रिया में विशेष का परिहार होकर सामान्य ही अवशिष्ट रह जाता है—भावों का साधारणीकरण तभी सम्भव है। लोककवि साधारणीकृत भाव को

स्वर एवं सय पदान करता है—इसीलिए जन-जन के अपने भाव और उनमें संबन्धित गीत भवने अपने भाव एवं गीत बन जाते हैं। लोकगीतों में वर्णित 'राम' और आज के देहाती 'रामदीन' के महल में तत्काल कोई अन्तर नहीं होना चाहिए वह रहता भी नहीं है। राम विवाह के समय समुराल में ही थे, लोककवि के लिए उनकी यह विशेष परिस्थिति उल्लेखनीय है, वह तो सामान्यतया समाज में विवाह के पूर्व घर पर आयोजित 'नहलू' का ही वर्णन करेगा—वर्णन लोकवाचार् सम्मत होने से वही सर्वप्राप्त और सर्वोपयोगी हो सकेगा 'नहलू' व सामाजिक अवसर पर वही आदर्श गीत की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा।

लोकगीतों में 'रामविवाह' के पूर्व अयोध्या में होने वाले इस 'नहलू' की एक बढमूल परम्परा थी। एक गीत में अवसरोचित सभी लोकवाचारे—नहलू के पूर्व घर का स्नान करता, गोश की ग्नियो को युवावा भेजना, नहलू के अवसर पर समागत स्त्रियो द्वारा न्योछावर, नाइन का नेग के लिए ठनगन करना, कौशल्या का उनको आवासन देना आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है<sup>१</sup>—

के यह पोखरा खनावा घाट बधावा रे ।  
रामा केहकर भरहि बहार राम नहवावे रे ॥  
रामा दसरथ पोखरा खनावा भी घाट बधावा रे ।  
कौसिला के भरहि बहार राम नहवावे रे ॥  
घर घर फिरहि नउनिया गोतिनी बटोरे रे ।  
आज राम जिव के नेहलू सबे कोइ आवे रे ॥

करते हुए चित्तौर की महारानी के मुक्त से सामान्य प्रामोण विद्योगिनी स्त्रियों के उद्गार व्यक्त कराये हैं—

सर्व लाग अब जेठ असाढ़ी । भइ भी कहें यह धाजनि गाढ़ी ॥  
सांठि नाहि लाग बात को पूंछा । बिनु जिय भएहु मूँज तनु छूँछा ॥  
बरसहि नैन घुँचें घर माहीं । तुम्ह बिनु कत न धाजन छाहीं ॥

—पद्मावत, ३०/३५६-१, ३, ६ ।

- १, डा० माता प्रसाद गुप्त की स० १६६५ वालो नहलू की प्रति में 'नहलू' विषयक प्रचलित लोकगीत की बहुत सी पंक्तियाँ सम्भवतः पाई जाती है। इससे भी इस माध्यता को बल मिलता है कि तुलसी को 'नहलू' रचना की प्रेरणा लोकगीतों से ही प्राप्त हुई थी।

के दीन चुटवी मुंदरिया के दीना रूप रे ।  
 के दीना रतन पदारथ भरिगा है सूप रे ॥  
 कौसिला दिहिन चुटकी मुंदरिया सुमित्रा दिहिन रूप रे ।  
 केकई दिहिन रतन पदारथ भरिगा है सूप रे ॥  
 मइवै झगरे नउनिया निछावरि घोर रे ।  
 आबु राम जिव के नेहछू मे लेबो डेर रे ॥  
 का तू झगरो नउनिया नेवछावरि घोर रे ।  
 राम बियहि घर ऐहैं में देवों करोरि रे ॥'

डॉ० माताप्रसाद गुप्त को 'रामलला नहछू' की रा० १६६५ की जो प्रति मिली है, वह वृत्ति के जीवन काल की है। उसमें उपयुक्त लोकगीत की बारह पंक्तियाँ ज्यों की त्यों मिल जाती हैं।

मिथिला में यह 'नहछूगीत' तुलसी के ही नाम से किंचित् परिवर्तन के साथ प्रचलित है। एक विशेष बात यह है कि उसमें गुप्तजी वाली प्रति की कुछ और पंक्तियाँ भी आ गई हैं। भेद केवल इतना है कि जहाँ हस्तलेख की भाषा भोजपुरी प्रभावित है वहाँ उक्त गीत मैथिली बोली में है।<sup>२</sup>

१ 'ग्राम साहित्य' में प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संप्रहीत 'नहछू' गीत में निम्नांकित पंक्तियाँ और हैं। उनमें तीसरी और अंतिम पंक्ति में 'घोर' के के स्थान पर 'घोड़' है जो डा० गुप्त की प्रति में 'घोर' हो गया है—

पातरि पातरि भगुली तो नाउनि गोरी ।

करत राम जीव के नेहछू तो घूघुट खोली ॥

पाँच पाट क' जाजिम झारि बिछाइय ।

जेकरे जहाँ मन होय तहाँ ते बंठय ॥

—ग्राम साहित्य, पृ० २५५ ।

२ चलह सबहि मिलि देखन शोभा राम क हे ।

आबु सुबिन दिन सहछू राम क हे ॥

गुपं जुष जय जायसि मगल गावसि हे ।

राम घुमावन हार चार बिसि पावसि हे ॥

नाओनी ऐली गुनगती बेगि बोलाबिय हे ।

सीताराम घुमावहु चौक ब्रिसावहु हे ॥

सोना क नहरनी भहा मत्तो नाओनि गोरिय हे ।

प्रभु जो क बखन निहारि बिहेंसि मुख केरं हे ॥

स्पष्ट है कि तुलसी ने अयोध्या में अनुष्ठित राम के इस नहछू वर्णन की लोकव्यापी परंपरा का सत्कार 'रामविवाह' की विशेष परिस्थितियों की उपेक्षा करके किया।

राम विवाह सम्बन्धी लोकगीतों में ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना का क्रम यही समाप्त नहीं होता। अयोध्या में 'नहछू' का यह वृत्त्य सम्पन्न करने के बाद महाराज दशरथ जनकपुर को बारात ले जाने की तैयारी करते हैं। हाथी, घोड़े सजाये जाते हैं, दूल्हा राम के घोड़े की सजावट विशेष प्रकार से की जाती है। बारात के प्रस्थान के समय माता कौसल्या राम की आरती उतारती हैं, जानवातिरेक से उनके नेत्रों से आँसू की बूँदे ढुलकने लगती हैं—

कोरे कलस पर दियना बरत है कोरी परैया साठी धान रे।

वैसे रामजी के माथ झलकै दाँधे मोर औ पाग रे ॥

हाथी साजिन घोड़ा साजिन साजिन सकसी बरात रे।

राम के घोड़वा सुघर के साजिन मोतिमन रची है लगाम रे ॥

साजि बरात चले राजा दसरथ चवन बिरीवा तर ठाढ़ रे।

निसरि न आवो रानी कौसल्या राम के आरती उत्तारि रे।

धीरे धीरे मैया आरती उतारें दूनों नयन डुरै आँगु रे ॥

चारों पुत्रों सहित बारात लेकर महाराज दशरथ यथासमय जनकपुर पहुँचते हैं। इसके बाद धनुष यज्ञ की तैयारी होती है। राम विश्वामित्र के आदेश से धनुष तोड़ते हैं, तब विवाह सम्पन्न होता है।

इस प्रकार रामविवाह का सम्पूर्ण घटनाक्रम वैसे ही है जैसा समाज में प्रत्येक परिवार में पुत्र-विवाह के समय आज तक होता चला आ रहा है।

घनि तोरे भागि नउनिया चरन छुयो राम क हे।

भरि मुख करत किलोल सिया थी राम क हे ॥

रामजी तोहे बसरथ सुत लछिमन जान क हे।

नउआ कहै नउनिया यहि विधि तोरा ने।

रामजी क हैत दियाह चवुन लेब घोड़ा ने ॥

कल जोरि कहै नउनिया किरपा हमरा दीय हे।

कौसल्या उर हार नाय मोहि बोय हे ॥

हार त अवधपुर एतम कतय पाबिय हे।

तुलसी कहै मुख फेरियो चलव त बेब हे ॥

लोकमानस ने उक्त 'नहलू' प्रसंग के अनिरिक्त राम के चरित में इतिहास, पुराण या नागर काव्य में स्वीकृत क्रम की अवहेलना अन्य अनेक स्थलों पर भी की है। रामचरित विषयक लोकगीत में निरूपित निम्नांकित तथ्यों से स्थिति और स्पष्ट हो जायगी—

(१) प्रसंग सीता वनवास का है। वाल्मीकि आश्रम में पुनोत्पत्ति के पश्चात् वे नार्द के हाथ अयोध्या की तीन रोचन भेजवाती हैं—पहला महाराज दशरथ, दूसरा महारानी कोशल्या और तीसरा सदमण के लिए। इसके साथ ही वे उसे यह भी साकोद कर देती हैं कि राम के वान में इसकी भनक तक न पड़े—

पहिल रोचन राजा दशरथ, दुसर कौसिला माई हो ।

तिसर रोचन लखिमन देवरा, पपियवा न जानै अधरमी न जानै हो ॥

कौन नहीं जानता कि दशरथ की मृत्यु रामवनगमन के समय ही—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार, सीतापरित्याग वाली घटना से बहुत पहले हो चुकी थी, किन्तु लोककवि न शाही मुखरिख होता है न इतिहास का प्रोफेसर। उसके सामने तो माता, पिता, सास, समुर से सम्पन्न एक भरे-पूरे परिवार का चित्र है—एक दशरथ मर गये तो क्या हुआ ? ग्राम बंधुओं व दशरथ लाखों की सख्या में जीवित हैं, लोककवि की सीता उन्हीं के पास रोचन भेजकर वधू का कर्त्तव्य पालन करते हुए वृत्तार्थ होती है क्योंकि पौत्रजन्म का सम्वाद पाकर जितने प्रसन्न सास-समुर होंगे, उतना और कोई नहीं। पुत्रवती वधू के लिए अपने सास-समुर की प्रसन्नता सर्वाधिक मूल्यवान है। लोककवि पति के द्वारा अवहेलित सीता को इस सीमाव्य से वचित रखना सहन नहीं कर सकता।

(२) राम के उत्तरकालीन चरित से ही सम्बद्ध एक दूसरे गीत में राम की परधाम यात्रा के पूर्व सीता ने महाराज दशरथ से पति के दुर्व्यवहार की शिकायत की। समुर ने सभा में बैठे हुए राम से इसका कारण पुछवाया, राम को बात लग गई। यह सामान्य घटना ही उनके लोकांतरण का कारण बनी—

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर ।

सखिया सोने वे गुपेलिया पछोरी में मोतिया हनोरी ॥

जब हम परली राम घर राजा दशरथ घर ।

जरि बरि भइउं है कोइलिया त जरि के भसम भइउं ॥

सभवा बैठे है रामचन्द्र पुछाइन राजा दशरथ ।

पुता बवन मितल दुख दिहेउ सखिन सग रोने ॥



हंस के धनुष उठाइन जिहंस के पैठिन ।

सीता अब गुप्त सोवळ महलिया गुप्त होइ जावे ॥'

सास-सगुर से भरे-पूरे संयुक्त परिवार में पति के अत्याचारों से प्राण समुद्र ही दिला सकता है। सोकगीत की सीता ने पारिवारिक मर्यादा की रक्षा के लिए दिग्भंग दशरथ को पुनश्चजीवित कर लिया। कवि, चाहे वह शिष्ट भापा का हो या भद्रे भापा का, स्वयंभू होता है। वह इतिहास का निर्माता होता है, अनुगामी नहीं—लोकगीतो के ये दृष्टान्त इसके प्रमाण हैं।

इन तथ्यों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी द्वारा वर्णित 'नहछू' विवाह के अवसर का है और यह संस्कार अयोध्या में निष्पादित हुआ।

### प्राक्षेप और समाधान :

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'नहछू' की एक और ऐतिहासिक भूल बताई है और वह है कौशल्या की 'जेठि' अथवा महाराज दशरथ की ज्येष्ठा भ्रातृवधू का उल्लेख—

कौशल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।

नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो ॥'

आपत्ति का कारण है रामकथा के किसी स्रोत में दशरथ के बड़े भाई के उल्लेख का अभाव। फिर जेठानी के अस्तित्व का आधार ही क्या ?

कहना न होगा कि इस प्रसंग में कवि के अभिप्रेत अर्थ के ग्रहण में आलोचक की असफलता का कारण परम्परागत लोकरीतिओं की अनभिज्ञता है। 'जेठि' या 'जेठानी' गाँवों में आज भी केवल सगे ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री नहीं कही जाती बल्कि पूरे कुल या गोत्र में, दूर के नाते से भी, जो जेठे भाई लगते हैं उनकी स्त्री की समा जेठानी होती है। मुझ विवाहादि भागलिक अवसरों पर उन्हें यथोचित प्रतिष्ठा दी जाती है और उनके द्वारा लोकाचार सम्पन्न कराये जाते हैं—यहाँ तक कि लड़के के विवाह में यदि अपने वंश में उसका कोई जेठा भाई नहीं होता तो छुनरी छोड़ने के लिए 'भसुर' का कार्य आयु में बड़े फुफेरे और ममेरे भाई करते हैं। इस अर्थ में रघुवशियों में दशरथ से आयु में बड़े भाइयों की स्त्रियाँ कौशल्या की जेठानी थीं। उन्हीं के आदेश से ये चौक पर पुन का

नहछू कराने के लिए बैठी थीं। 'रामचरित मानस' में केकई-कोष के प्रसंग की निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त 'जठेरी' शब्द से यह स्पष्ट विदित होता है कि केकई को समझाने के लिए एकत्रित स्त्रियों में उनकी जेठानियाँ भी थी—

विप्रवधू, कुलमान्य जठेरी । जे प्रियपरम केकई बेरी ॥

इसी प्रकार डा० गुप्त ने 'नहछू' में दो स्थलों पर जो प्रबन्ध दोष दिखाये हैं, वे भी वस्तुतः प्रबन्ध दोष न होकर लोकाचार के सूक्ष्म तत्त्वों का आशय हृदयगम करने में विद्वान् समीक्षक की अक्षमताजन्य मिथ्या प्रतीति मान हैं।

यह प्रसंग नाइनि की 'नहछू' के अवसर पर उपस्थिति से सम्बन्धित है। डा० गुप्त का कहना है कि जब नहछू के आरम्भ में ही नाइनि मौजूद बताई गई है और उसे गारी गाते दिखाया है तो थोड़ी ही देर के बाद उसके बुलाये जाने का उल्लेख करने का क्या औचित्य है? गुप्तजी की धारणा है कि उक्त प्रसंग से यह पता चलता है कि कवि को यह स्मरण ही नहीं रह गया कि वह पीछे राज-प्रामाद में नाइन की उपस्थिति दिखा चुका है, इसलिए उसने लोकाचार सम्पन्न करने के लिए आवश्यकतानुसार नाइन के पुनः बुलाने की बात लिख दी।

किन्तु पूरे प्रसंग को दृष्टि में रखकर प्रवृत्त पक्तियों की समीक्षा करने पर कवि द्वारा निर्धारित घटना क्रम की योजना सर्वथा निर्दोष ठहराती है। इसमें उस स्थिति का चित्रण है जब 'नहछू' में सम्मिलित होने के लिए अन्य नेगहारियों के साथ नाइनि घर से आई है और आनन्द विमोर होकर अन्य मागलिक गीतों के साथ रानियों को गाली गाती हैं। इसके बाद नहछू कराने के लिए कौशिल्या राम को गोदी में लेकर बैठाती हैं। तब अपनी विशिष्ट भूमिका के लिए उसकी बुलाहट होती है क्योंकि उस उत्सव का प्रधान कृत्य, नाखून काटना, उसी के हाथों सम्पन्न होना है। प्रश्न यह उठता है कि अभी थोड़ी ही देर पहले जो गा बजा रही थी वह क्षण भर में ही कहाँ लुप्त हो गई? जिससे उसकी खोज करानी पड़ी। निम्नांकित पक्तियाँ इसका रहस्य खोल देती हैं—

नाइनि अति गुनखानि ती बेगि बोलाई हो ।

करि सिंगार अति लोन तो बिहँसति आई हो ॥

जनक जुनिन सो लमति नहरनी लिहे कर हो ।

आनन्द हिय न समाइ देखि रामहि बर हो ॥

१. नैन बिसाल नउनिया भी चमकावइ हो ।

देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो ॥

कानन बनक तरीबन बेसरि सोहइ हो ।  
गजमुक्ता कर हार कठ मनि मोहइ हो ॥  
कर ककन कटि किकिनि नूपुर बाजइ हो ।  
रानि के दीन्ही सारी अधिक विराजई हो ॥<sup>१</sup>

बात यह थी कि नाइनि आरम्भ में घर से अपनी स्थिति के अनुकूल न्यूनतम सामान्य आभूषण एवं कपड़े पहन कर आई थी किन्तु सामन्तीय परंपरा अनुसार युवराज राम के नहछू सस्कार के उपलक्ष्य में उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिरावन के रूप में दिये गये थे जिन्हें धारण करके ही उसे नहछू कराना था। अतः भीड़-भाड़ से हटकर वह कपड़े बदलने महल के किसी एकान्त कक्ष में चली गई। इसमें स्वभावतः कुछ देरी लगी होगी—विशेष रूप से गहनों के पहनने में। तब तक कौशल्या जी पुत्र को गोद में लेकर चौक पर आ बैठी—संभवतः उसे शीघ्र बुलाने के लिए लोग व्यग्र हो गये। हुआ सब कुछ स्वाभाविक रूप से ही, केवल समझने में फेर था। बुलाने के पीछे दूसरा सशक्त तर्क यह है कि ऐसे विशिष्ट अवसरों पर नेगहारों, नेगहारिनों की विशेष रूप से मनुहार की जाती है। वे उस समय साधारण प्रजागण नहीं होते, विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। बुलाये जाने पर वे नेग के लिए नखरे भी करते हैं, मनचाही चीजें मांगते हैं। उन्हें बार-बार मनाना और बुलाना पड़ता है।

एक ऐसी ही 'प्रबन्ध त्रुटि' 'नहछू' के गारी प्रसंग में बताई गई है। सम्बद्ध पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

काहे राम जिउ सावर लखिमन गोर हो ।  
कीधौं रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥  
राम अहैं दसरथ के लखिमन आन क हो ।  
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्री रघुनाथ क हो ॥

डा० गुप्त का कहना है कि उपर्युक्त छंद की प्रथम दो पंक्तियों में प्राप्त परिहास तर्कशृंखला सगत है किन्तु अंतिम दो पंक्तियों में अभिव्यक्त परिहास अतः विरोध के कारण भ्रान्तिपूर्ण हैं। पहले यह कहकर कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए भी राम और लक्ष्मण में वर्णभेद का कारण कौशल्या का अपने पति दशरथ के भ्रम में पर पुरुष से गर्भधारण करना है अर्थात् राम और लक्ष्मण पुत्र हैं, फिर अन्तकाल ही यह घोषित करना कि वस्तुतः राम ही दशरथ की और लक्ष्मण सन्तान है

१. रामलता नहछू १०, ११ ।

२. वही, १२ ।

और लक्ष्मण अनोरस, रचयिता की अव्यवस्थित मानसिक स्थिति का परिचायक है। मेरी सम्मति में यह गलतफहमी भी लोकगीतों की प्रवृत्ति की जानकारी न होने में ही हुई है। सर्वोत्तम चार पक्तियों की निम्नांकित व्याख्या में रचयिता का मन्तव्य स्पष्ट हो जायगा—

नहल्लू के अवसर पर एकत्र स्त्रियाँ, जिनमें नाइनि, बारिनि, आदि नेगहारिनें भी हैं, गाली गा रही हैं। इन गालियों की मुख्य लक्ष्य हैं महारानी कौशल्या, क्योंकि वे ही गोद में पुत्र को बैठाकर नहल्लू करा रही हैं। लगे हाथों वे मुमिन्ना और कैकेयी की भी सबर ले लेती हैं। एक स्त्री शका करती है कि एक ही पिता की मत्तान कही जाने पर भी क्यों राम साँवले हैं और लक्ष्मण गोरे। सम्भवतः इसका कारण कौशल्या का किसी साँवले रंग के पर पुरुष से जार सम्बन्ध है। अन्यथा गोरे दशरथ और गोरी कौशल्या का पुत्र भी गोरा ही होना चाहिए था। इस प्रकार कौशल्या को परिहास का लक्ष्य बनाने के बाद स्त्री वर्ग मुमिन्ना और कैकेई की ओर झुकता है, उनमें से एक बढाती है, नहीं, बात ऐसी नहीं है, वस्तुतः राम ही दशरथ के औरस पुत्र हैं लक्ष्मण जारज हैं—इस प्रकार मुमिन्ना की भी पूजा हो गई। बच रहीं कैकेई, वृद्ध पति की नवयुवती परती होने में उनके प्रति किया गया इस प्रकार का परिहास, परिहास न रहकर चाम्दविक्रम का भ्रम उत्पन्न कर देता, हमारे कैकेयी का स्वभाव भी उग्र था। इन कारणा से स्त्रियों ने भरत को भी राम की ही भाँति दशरथ का औरस पुत्र कहा, इनके साथ शत्रुघ्न का नाम इसलिए जोड़ दिया गया कि मुमिन्ना को प्रथम पुत्र की जन्मदात्री के रूप में पहले ही कलक का सेहरा पहनाया जा चुका था—उनके दूसरे लड़के के भी सदिग्ध पितृत्व का उल्लेख परिहास को अवाधनीय सीमा तक पहुँचा देता, इसलिए राम का भाई कहकर उनकी औरसता प्रमाणित कर दी गई।

इस मदर्भ में एक बात ध्यान देने की यह है कि अवध प्रदेश में ही नहीं मिथिला मंडल में भी नहल्लू के जो गीत गाये जाते हैं, उनमें 'रामलला नहल्लू' की यह गारी इन्हीं शब्दों में आज भी विद्यमान है। अन्तर केवल इतना है कि महाराज जनक के महल में और मिथिला की स्त्रियों के द्वारा गाई जाने से उसमें परपुरुष का आशय स्पष्ट करते हुए कौशल्या को उनके समधी जनक से लगाकर गाली दी गई है—

राम जी तो हैं दशरथ मुत लक्ष्मण जान क हो।

रानी कौशल्या गेल भोर जनक जी के आँगन हो ॥'

### अमर्यादित शृंगार चित्रण :

‘रामलला नहछू’ की सर्वाधिक छीछालेदर उसके शृंगारी चित्रणों को लेकर की गई है। उन्हें ठेठ अथवा उत्तान शृंगार की सजा देकर तुलसी की भद्दी एव अश्लील रसि का द्योतक बताया गया है। डा० माताप्रसाद गुप्त की धारणा है कि महाराज दशरथ का अहिरिन के ‘उनरत जोवन’<sup>१</sup> पर सदृश होना, विशालाक्षी नाउनि का नाखून रंगते समय कटाक्षों से राम को देखना,<sup>२</sup> छत्रीली तमोलिन और पतली कमरवाली रंगीली बारिनि का मनोहर चेष्टाओं से सोंगो को आवृष्ट करना,<sup>३</sup> पैर घोंते हुए राम का कटाक्षों में नाइनि को देखना,<sup>४</sup> आदि कामोत्तेजक कार्यव्यापारों के वर्णन में दशरथ तथा उनके पार्श्ववर्ती अन्य रसिकों के व्याज से कवि स्वयं ‘कल्पित आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है।’ इस विचार सरणि के समर्थक कुछ अन्य विद्वानों ने चार कदम आगे बढ़कर ‘नहछू’ को ‘काम की हीन ग्रन्थि से शोभाकुल तुलसी का चंचल काव्य’ और ‘कामशास्त्र’ तक कह डाला है।

इस आपेप के औचित्य पर विचार करते हुए दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) क्या शृंगार चित्रण की दृष्टि से ‘नहछू’ में अंकित दशरथ और राम के चारित्रिक आदर्श में तुलसी की अन्य वृत्तियों की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अंतर पाया जाता है ?

१. अहिरिनि हाथ बहेडि सगुन लेइ जावइ हो।

उनरत जोवन देखि नृपति मन भावइ हो ॥—रामलला नहछू ५।

२. अति बडभाग नउनिर्या छुए नख हाथ सो हो।

नैनन्ह करति गुमान तो धो रघुनाथ सो हो।

उपर्युक्त छंद की प्रथम पंक्ति में ‘छुए’ पाठ = होकर ‘छुहे’ होना चाहिए जिसका अर्थ होगा ‘रंगा’, नहछू के अवसर पर नाखून काटने के बाद नाउनि (या नाई) उन्हें साल रंग से रंगता है।

३. कटि के छोन भरिनिया छात्ता पानिहि हो।

घन्र बदनि भृमलोचनि सब सुख पानिहि हो ॥—यही, =।

४. अतिसय पुहुपक माल राम उर सोहइ हो।

तिरछो चितवनि आनन्द मुनि मुख जोहइ हो ॥—यही, १४।

५. तुलसीदास, पृ० २३२।

६. परिशोध, अंक ११, जनवरी १९७०, पृ० २७-३३।

(२) क्या 'नहल्लू' का शृंगार चित्रण लोकगीत परम्परा में नहल्लू या विवाह गीतों की अपेक्षा अधिक शृंगारी है ?

जहाँ तक प्रथम का सम्बन्ध है 'नहल्लू' के दशरथ और राम वही हैं, जो राम-चरित मानस तथा गीतावली के । 'मानस' के दशरथ परिणितवय को पत्नी केकेयी के प्रेमपाश में बुरी तरह आवद्ध हैं । सपत्नी डाढ़ से दग्ध होती हुई कुपिता केकेई को मनाने के लिए उन्होंने जिस शब्दावली में उसे सम्बोधित किया है वह उनकी घोर रसिकता की व्यञ्जक है—

वार वार कह राउ, सुमुखि, सुबोचनि, पिकवयनि ॥

कारन भोहि भुलाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥<sup>१</sup>

×

×

×

जानसि भोर सुभाव बरोरु । मन तब आनन चद चकोरु ॥<sup>२</sup>

सुन्दर जाँघों की ओर सकेत दशरथ की कामुकता का सबसे बड़ा प्रमाण है । यह आसक्ति उन्हें अविवेक की सीमा तक पहुँचा देती है—

अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा<sup>३</sup>

कहु केहि रकहि करउ नरेमू । कहु केहि रुपहि निकारहुँ देसू ॥

वाल्मीकि रामायण में तो प्रकट रूप में उन्हीं के आत्मज राम ने उन्हें केकेयी के प्रेमपाश में बद्ध कामी घोषित किया है ।<sup>४</sup>

इसी प्रकार राम का शील-सकोच और मर्यादाबद्ध आचार-व्यवहार 'नहल्लू' के रंगीन बानावरण में भी सात्विक आभा से परिपूर्ण है । समागत स्त्रियों द्वारा गाई जाने वाली गाली का स्वयं को लक्ष्य होते अनुभव कर वे माँ की ओर देख-कर सङ्कुचित हो जाते हैं कि माँ के सामने मुझे ये ऐसी गदी गालियाँ बक रही हैं और वे न जान क्यों इससे क्रुद्ध होने के बजाय प्रसन्न हो रही हैं ।

१. रामचरित मानस, अयो० २५ ।

२. वही, अयो० २५-४ ।

३. वही, अयो० २५-१, २ ।

४. अनापश्च हि मृदश्च मयाचैव विनाकृत ।

कि वरिष्यति वामात्मा कंचेय्या वसमागत ॥

इव प्यसतमालोचय राजश्च मतिविभ्रमम् ।

वाम एवार्थं वर्माभ्यां गरीयानिति मे मति ॥

—या० रा०, अयो० ५३/८, ९ ।

गावहि सब रनिबाम देहि प्रभु गारी हो ॥

रामलला सकुचाहि देखि महतारी हो ॥<sup>१</sup>

×

×

×

दूसह कै महतारि देखि मन हरपइ हो ।<sup>२</sup>

इतना हो नहीं आराध्य के परात्पर ग्रहत्व में अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा में जैसी दृढ़ आस्था रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहछू में उससे तिलमिल भी कम नहीं दिखाई देती—

जो पगु मारनि धोवई राम धोवावइ हो ।

सो पग धूरि सिद्ध मुनि दरस न पावई हो ॥<sup>३</sup>

इसके परचाह हम नीच-गीतो में अभिव्यक्त शृंगार भावना में नहछू के शृंगारी वर्णनों की तुलना करते यह देखेंगे कि इन दिशा में अपने उत्स से 'नहछू' कहीं तक प्रभावित है ।

'नहछू' के अनुष्ठान स्थल एवं अवसर की मीमांसा करने हुए हम यह पहले दिखा चुके हैं कि किस प्रकार उसकी गारी सम्बन्धी पत्तियाँ अधरशः लोकगीतों में मिल जाती हैं । तुलसी ने इन गीतों में तो प्रेरणा ली ही उसने कहीं अधिक प्रेरणा उन्होंने ऐसे अवसरों पर सामाजिक जीवन में सर्वत्र दिखाई देने वाली हास-परिहास सम्बन्धी छूट से प्राप्त की । लड़के के विवाह के अवसर पर रसिकता मन्त्रामक बन जाती है, भयान्त की लगाम ढीली हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वर्ग तो उठाता ही है, बानप्रस्थ और सन्यास की अर्हता के दावेदार दादा, बाबा भी भधुर सम्बन्ध के रिश्तेदारों, नेगहारिनों तथा कन्यापक्ष के लोगों से हँसी-मसखरी का भरपूर आनन्द लेते हैं । इस ऋतु का सर्वम्भीकृत म्याप होता है 'यहि पाखे पतिवन ताखे धरी और 'फागुन भरि बाबा देवर लागै' जैसी लोक प्रचलित उक्तियाँ ही ऐसे अवसरों पर लोकप्रवृत्ति की सवालिका होती हैं । नहछू में गहाराज दशरथ की अतिरसिकता के पीछे उनको स्वभावगत शृंगारिकता के अतिरिक्त वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा से सामाजिक मान्यता प्राप्त है । इस पृष्ठभूमि में नहछू के शृंगारी वर्णनों की समीक्षा करने पर सब कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उसमें

१. रामलला नहछू, १८ ।

२. वही, १९ ।

३. वही, १४ ।

मर्यादा विरोध दिखाई पड़ेगा न निर्वन्ध अनग लीला ।

इसी प्रकार 'नहछू' में शैलीगत शैथिल्य के जो उदाहरण डा० माताप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतों की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना से अभिन्न भावक को नचर लगेंगे। 'बाइ हो' का 'जाइ हो' 'समात हो' का 'समातइ हो' बन जाना लोकगीतों की लयव्यवस्था के सर्वथा मेल में है। लोकगीत पद्धति की रचना में भरती के शब्दों का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। शब्दों के विकृत रूप देने के लिए प्रतिलिपिकार का प्रमाद ही उत्तरदायी प्रतीत होता है। वैसे जब तक पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक संपादन नहीं हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपों पर आलोचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १६६५ वाला 'नहछू' का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित 'रामलला नहछू' तथा उसके अन्य प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा लोकगीत शैली से अधिक प्रभावित है, उन्में नहछू सम्बन्धी प्रचलित लोकगीतों की बहुत सी पंक्तियाँ शब्दशः उद्धृत मिलती हैं। उनमें भी विकृत तथा भरती के शब्दों की कमी नहीं है।

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहछू राम व हो'

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अतिछवि छाजिय'

जैसी परस्पर विरोधी उत्तियाँ भी उसमें हैं। यहाँ एक बार यह बताकर कि आज जनकपुर में राम विवाह है (तो नहछू भी वही होना चाहिए) फिर दूसरी ही साँस में यह भी कहना कि अयोध्या को सजाने और ज्योतिर्मय करने की व्यवस्था अत्यन्त आकर्षक है (नहछू के मांगलिक उत्सव के उपलक्ष्य में) पाठक को भ्रात कर देता है। 'आज' शब्द के कारण वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि नहछू वस्तुतः अयोध्या में हो रहा है या जनकपुर में।

इससे स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता के जीवन काल की है, प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

सारांश यह कि 'रामलला नहछू' का स्वारस्य आत्मसाद करने के लिए

१. कोसिला के भरिहँ कहार तो प्रभु को नेहवाएव है ।

× × ×  
राम विर्याहि कर आएव देवु मए धोर है ।

—उद्धृत, तुलसीदास पृ० २०५ ।



उसके विषय तथा शैली तत्त्व का आलोचन लोकसाहित्य के प्रतिमानों को दृष्टि में रखकर होना चाहिए, नागर साहित्य के शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रकाश में नहीं। अन्यथा तुलसी की काव्य प्रतिभा, प्रवृत्ति, समाज-दर्शन एवं उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारित्रिक आदर्शों के सम्बन्ध में इसी प्रकार के अनर्गल आरोपों का क्रम चलता रहेगा।

## मानवता और रामचरित-मानस

रामचरित भारतीय सस्कृति का सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है। साहित्यकारों ने समय-समय पर युगमानस को उर्जस्वित करने के लिए अपनी व्यक्तिगत साधना और अनुभूति के अनुसार उसे नये साँचे में ढाल कर रूपायित किया है, लोकगायकों ने अपनी अमृतवाणी में भाटी की मध में वासित कर उसे लोकानुरजन तथा जनशिक्षा का माध्यम बनाया है। तुलसी की लोकव्यापी दृष्टि ने रामकथा की इन सारी परम्पराओं को समेटते हुए आध्यात्मिकता का पुट देकर राम को आदर्श मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवनगाथा होते हुए भी उसने धर्म ग्रन्थ की महत्ता प्राप्त कर ली। विरवसाहित्य में अन्य किसी काव्यग्रन्थ को यह गौरव प्राप्त हुआ हो, यह देखने में नहीं आता। तुलसी ने उसके पठन, श्रवण और रमास्वादन को आरमभोधन एवं भवसतरण का सर्वसुगम साधन कहकर प्रकारान्तर से निगमागम एवं पुराणों की भाँति ही उसकी पावनता प्रतिपादित की है और लोकमानस ने उनके इन वचनों को ब्रह्मवाक्य के रूप में ग्रहण किया है—

“बली सुभग कविता सरिता सो । रामप्रेम जस जल भरिता सो ॥<sup>१</sup>  
रामचरित मानस यह नामा । सुनत श्रवण पाइव विश्रामा ॥”  
मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जो एहि सर परई ॥<sup>२</sup>  
राम सुप्रेमहि पोषत पानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ॥  
भव श्रम सोपक तोपक तोषा । समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥<sup>३</sup>  
सादर मज्जन पाव किये ते । मिटहि पाप परिताप हिए ते ॥<sup>४</sup>  
कहहि सुनिहि अनुमोदन करही । ते गोपव इव भवनिधि तरही ॥<sup>५</sup>

- 
१. राम० बाल, ३८।११ ।
  २. वही, ३४।७, ८ ।
  ३. वही, ४२।३, ४ ।
  ४. वही, ४२।६ ।
  ५. वही, १२८।६ ।

पूर्ववर्ती रामकथाग्रिथ प्रबन्धो मे कही ऐतिहासिक, कही दार्शनिक, कही सांस्कृतिक ओर कही साहित्यिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी थी । तुलसी ने एकाग्रता से बचकर रामचरित मे मानव-जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओ का आत्यंतिक समाधान प्रस्तुत करने वाले सूत्रो को उजागर किया । पूर्ण सुख शांति एवं समृद्धि सम्पन्न समाज का निर्माण अछूरे, विरूप तथा अभावग्रस्त मानव द्वारा सम्भव नहीं, इसलिए उन्होंने पथभ्रात मानवता के समक्ष पूर्ण मानव के आदर्श राम का चरित रखा । ऐसे महापुरुष की जीवन झांकी प्रस्तुत की, जिसने दशरथपुत्र के रूप मे अवतरित होकर अपने कर्मकौशल से लोकमानस मे परात्पर ब्रह्म की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, जिसने राजपद के वैभव-विलास से अस-पृक्त रह कर दानवता से पराभूत और सम्यता के प्रकाश से बधित मानवता के तत्स्थान के लिए दर-दर की खाक छानी थी । विश्व मानव के प्रति इस अगाध कृपा एवं मैत्री भावना के कारण देशकाल की बदलती परिस्थितियों मे समय-समय पर मानवता के ओ भी उत्कृष्टतम प्रतिमान निर्धारित होंगे 'मानस' के राम उससे सदा ही कुछ ऊपर और कुछ आगे दिखाई देंगे ।

### प्रेरणा एवं आधार •

रामचरित को आदर्श के रूप मे अपनाने की प्रेरणा तुलसी को समकालीन समाज के विभिन्न वर्गों एवं स्तरों के गहरे अध्ययन तथा निजी अनुभव से प्राप्त हुई थी । उनकी बाल्यावस्था घोर दरिद्रता मे कटी थी<sup>१</sup>, वैराग्य धारण करने के बाद उन्होंने तीर्थाटन करते हुए सारे देश का भ्रमण कर जनजीवन का बहुत ही निकट से निरीक्षण किया था<sup>२</sup>, सत्संग के क्रम मे उन्हें विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के अनुयायियों के आचार-विचार के पर्यवेक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, जीवन के अंतिम वर्षों मे जब वे 'तुलसी' के ऊपर उठ कर 'गोसाईं' हुए तो बड़े-बड़े राजे-महाराजे उनका चरण बंदन कर कृतार्थ होने थे, इस माध्यम से सामंतीय वर्ग से भी उनका परिचय हुआ । इस प्रकार समकालीन समाज के विविध वर्गों और प्रवृत्तियों के व्यक्तियों के जीवन तथा विचार पद्धति का आन्तरिक परिचय प्राप्त कर लेने पर उन्होंने अनुभव किया कि समाज का पूरा शरीर घातक सडन

१. धारे ते ललात बिललात द्वारे द्वारे बीन,

जानत हौं चारि फल चारि ही चानक की ।

—कविता, ७।७३ ।

२. विनय० २६६।२ ।

का शिकार हो रहा है। धार्मिक भावना के व्यापक ह्रास से उससे मूलधार जप, योग तथा वैराग्य तिरोहित हो गये हैं, स्वाध्याय की परम्परा समाप्त हो चुकी है, आये दिन नये-नये पन्थों और संप्रदायों की स्थापना हो रही है, यज्ञदानादि कर्मों का अनुष्ठान अर्थभाव के कारण बन्द हो रहा है, पाखंडी लोग धार्मिक आचार-विचार के नाश के कारण बन रहे हैं, वर्णाश्रम धर्म सडखड़ा रहा है और लोकमर्यादा के मस्तूल ढह रहे हैं, सारा धार्मिक समाज दुर्वासनाओं का शिकार हो रहा है, राजवर्ग बड़ा ही छनी है, वह प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर उसे निगल जाने पर उत्तारू है, नित्य नये करो से जनता की रीढ़ टूट गई है, आर्थिक शोषण से निर्धनता बढ़ रही है, निरंतर पढ़ने वाले दुर्भिक्षों से मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है, सभी वर्गों के लोगों में चरित्रहीनता फैल गई है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचार के पतन से चारों ओर अव्यवस्था का साहचर्य आरम्भ हो गया है, समाज में विषमता इतनी बढ़ गई है कि एक ओर वैभव नालियों में बह रहा है, तो दूसरी ओर लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। मर्यादा तथा निष्ठा के अभाव में जनजीवन विच्छिन्न हो गया है। मानवी-मूल्यों को समाप्त करने वाली सम-सामयिक परिस्थिति का तुलसी ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। विनाशकारी युग प्रभाव को उन्होंने 'कलि' के नाम से अभिहित किया है और इसका मूल कारण आसुरी वृत्तियों का उत्तरोत्तर विकास बताया है।

इस दयनीय स्थिति से समाज का उद्धार करने के लिए उन्होंने शक्तियों के विधर्मों शासन के परिणामस्वरूप जन-मानस में प्रतिष्ठित हीनभावना, भय, रुढ़िप्रियता, अविश्वास, सदेह आदि को दूर करना आवश्यक समझा। इसके बिना आतंकित एवं दलित जनता में अत्याचार, अधर्म और अनैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली शक्तियों से लोहा लेने की शक्ति का संचार करना असम्भव था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उद्देश्य की सिद्धि मात्र तत्त्वज्ञान के उपदेशों और कौर्तन भजन के आयोजनों से नहीं हो सकती थी। वेदोपनिषद्, स्मृतियाँ और पुराण तब भी पढ़े-पुने जाते थे, निर्गुणियाँ सन्तों और सूफी फकीरों के असह्य अनुयायी उम युग में भी धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय और साधना में कालयापन करते थे। राम और कृष्ण-भक्ति के केन्द्रों में वाराणसी युगन की सीला के गान और प्रदर्शन की परम्परा भी अशुष्क रूप से चली आ रही थी। विभिन्न दार्शनिक मतवादों के अनुयायी सन्यासी तथा गृहस्थ तत्त्वनिरूपण, शास्त्रार्थ आदि से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित रखने में यथाशक्ति अशदान करते थे—फिर भी अधकार बढ़ता जा रहा था। विनय-पत्रिका में एक स्थान पर इसका संकेत मिलता है—

वाक्य ज्ञान अत्यंत निपुण भव पार न पावत कोई ।

निसि शृह मध्य दीप की वातन तम निवृत्त नहिं होई ॥<sup>१</sup>

ऊँचे सिद्धान्त और विचार-व्यवहारभूमि में उतर कर ही लोक कल्याण साधन बनने हैं । जन-मानस का विश्लेषण करने पर उन्हें लगा कि इस कारण नैतिकता के भूत आदर्श का अभाव है—सामान्य लोग अमूर्त सिद्धांत और विचारों से, चाहे वे कितने भी उत्कृष्ट और उपादेय क्यों न हों, प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते । मूरदास की इन पंक्तियों में समकालीन लोकमानस की विकर्त व्यबिमूढ़ावस्था की छाया देखी जा सकती है—

“अविगत गति कछु कहत न आवै ।

रूप रस गुन जाति जुगुति बिन निरालय मन चरुत घावै ।

सब विधि अगम विचारहि ताते मूर रागुन सीला पद गावै ॥”

युगीन वातावरण का सम्यक् आकलन करने के बाद तुलसी ने अपने गभीर शास्त्रज्ञान के द्वारा यह अनुभव किया कि भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कुछ इसी प्रकार का गतिरोध हजारों वर्ष पूर्व यायाकाल में उपस्थित हुआ था, जब रावण के अत्याचारों से समस्त चराचर जगत् नारकीय मातना भोग रहा था । पृथ्वी माता उस समय गोरूप में जगन्नियन्ता के समक्ष उपस्थित हो प्राण की भिक्षा मांगने के लिए विवश हुई थी और परालार ब्रह्म ने कर्णार्द्र हो धर्म सस्थापना के लिए मानवावतार धारणा का वचन देकर उसे आप्रवृत्त किया था । भेता का रामावतार इसी का परिणाम था । लोक-मर्यादा के सस्थापक राम का जीवनादर्श अपनाने से ही विधर्मी शासन द्वारा निर्मित आमुरी वातावरण पर विजय प्राप्त की जा सकती है और परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारत भूमि का उद्धार किया जा सकती है, यह उनका स्पष्ट मत था—

मडलीक मनि रावन राधेमि फोउ न सुतत्र ।

भुजबल जगत बस्य करि, राज करे निज भत्र ॥

×

×

×

जेहि विधि होह धर्म निरमूला । सोइ सब करे धर्म प्रतिमूला ॥<sup>२</sup>

×

×

×

यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा ।

कामादिहर विज्ञानकर सुर सिद्ध मुनि गावहि मुदा ॥<sup>३</sup>

१. विनय १२३ ।

२. मानस बाल० १८२।५ ।

३. मानस कि० ३० क ।

भव भेदज रघुनाथ जब मुनिहि जे नर अह नारि ।  
तिन्हकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि निपुणारि ॥'

×

×

×

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ।

श्री रघुनाथ नाम तजि भाहिन और अपार ॥

ऐसी अनेक उक्तियों द्वारा तुलसी ने सारी सामाजिक विसंगतियाँ और उनके प्रेरक मानसिक विकारों को दूर करने में रामबचन के अद्भुत प्रभाव का उल्लेख किया है। इससे हठाश लोगो में यह विश्वास जगा कि दुःशासन एवं दुर्भ्यवस्था चाहे वह कितनी ही मूलबद्ध और शक्तिशाली क्यों न हो अन्ततः समाप्त होकर ही रहेगी। इस भावना से प्रजा में सघर्ष करने की ऊर्जा एवं अत्याचारी शासक को दण्डनीय घोषित करने का साहस उत्पन्न हुआ—

जामु राज प्रिय प्रजा दुखारी । गो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥'

रामचरित-मानस ने सर्वमानवीय भुक्ति के लिए अन्तःशक्ति उद्बुद्ध कर दानवी वृत्तियों पर विजय पाने का पथ प्रशस्त कर दिया।

**विराट् लक्ष्य .**

शब्दशक्ति में मानवता को प्रभावित कर अथ पतित समाज को ऊपर उठाने का ऐसा महान् लक्ष्य उसी सर्वात्मदर्शी वृत्तिधार का हो सकता है जिसका मानस पीडित मानवता की हृत्तन्त्री से सृष्ट हो चुका हो, जिसका 'स्व' विराट् 'अह' में और 'विराट् अह' जिसने 'स्व' में विलीन हो गया हो। उसी का 'स्वान्त-मुक्ताय', 'सर्वान्त सुखाय' बनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। यह 'अन्त सुख' 'निज सुख शान्ति' अथवा 'परम विश्राम' ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है, यही आत्मोलब्धि है। तुलसी ने इसका आस्वादन किया था—

जाकी वृषा लवलेस ते मति मद तुलसीदास हूँ ।

पायो परम विधाम राम समान प्रभु नाहो कहूँ ॥'

**अवतार निष्ठा में मानवतावादी दृष्टि**

अवतारवाद मानवतावाद का ही नामान्तर है, यह अवतार धारण करने के प्रयोजन की भीमासा से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ तक कि मानवेतर योनियों—

१. मानस लका १२१ ख ।

२. मानस० अयोध्या०, ७०१६ ।

३. मानस० उत्तर, १३०१३ ।

मत्स्य, कच्छप, वाराह में भी विष्णु के अवतार आततायियों का सहार करके मानवधर्म की संस्थापना के लिए ही हुए थे ।

### (क) मानवावतार—मानवता को गौरव दान

मानव विश्वकर्ता की उत्कृष्टतम सृष्टि है । कर्मसंपादन की क्षमता से मण्डित होने के कारण मनुष्य देह ही भव-सतरण का एकमात्र साधन माना गया है । धर्ममाषना से इसे स्वर्गपर्वग की प्राप्ति होती है और ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर यह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है । मानव शरीर की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है । तुलसी ने इसे देवदुर्लभ माना है कारण कि भगवत्कृपा का प्रकाश मानव पर होता है, देवता इससे वंचित रहते हैं । इसीलिए परात्पर ब्रह्म के दोनों पूर्णावतार—राम और कृष्ण, मानवावतार ही हैं । अन्य अवतारों से इनके उत्कर्ष का कारण अपेक्षाकृत अद्भुत तत्व का गोपन एवं सहजता का प्रकाश है । लोकशिक्षा पर-मात्मा के मर्त्यावतार का मुख्य लक्ष्य होता है । उसकी सिद्धि लोकवत् व्यवहार से ही समभव है । राम की अवतार-लीला के वर्णन में तुलसी ने यथासमभव अलौकिकता के प्राकट्य को बधाया है । यदि उसका प्रकाशन भी हुआ है तो व्यक्ति-विशेष के लिए और स्थानविशेष में—सबके समक्ष और सबके लिए नहीं । और यह भी इसलिए कि कही पाठक इसे वीरपूजा के रूप में वर्णित प्राकृत मानव की कहानी न समझ बैठें । यही कारण है जिससे आराध्य के नितान्त नर-मुलभ व्यवहारों, उद्देश्यों एवं आचरण का विवरण प्रस्तुत करते हुए वे निरंतर उनके परात्पर ब्रह्मत्व का स्मरण दिलाते रहते हैं ।

### (ख) रामचरितमानस के मानव-मुलभ सवेग

रामचरितमानस में अप्राकृत ब्रह्म की प्राकृत लीला का वृत्त प्रस्तुत किया गया है । ग्रन्थारम्भ में जिस लोकानुग्रह अवस्था कृष्णा को निर्गुणब्रह्म के सगुण रूप धारण करने का मुख्य प्रेरक भाव बताया गया है, रामकृपा में उसकी आद्योपान्त व्याप्ति दिखाई देती है । इसके अतिरिक्त अघैर्य, प्रलाप, विरहाकुलता, कठोरता, पदापात, ममता आदि मनोभावों का भी उनके जीवन में विशिष्ट अवसरों पर उद्रेक दिखाई देता है । कही-कही तो वे इतने सहज ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं कि अवतार-लीला से उनका सम्बन्ध प्रतीत ही नहीं होता । यदालु पाठकों तक को उन्हें परात्पर ब्रह्म की नरलीला स्वीकार करने में कठिनाई का अनुभव होता है । जनसामान्य उसके पारमार्थिक रूप को भूल कर मात्र लौकिक चरित मानने लगे तो आश्चर्य ही क्या है ? तुलसी ने इस भ्रांति की संभावना अनुमान

कर मानस-प्रेमियों को सगुणलीला की रहस्यमयता से सावधान रहने की चेतावनी देते हुए लिखा था—

निरगुन रूप सुलभ अति, सगुन न जाने कोय ।

सुगम अगम नाना चरित, मुनि मुनि मन भ्रम होय ॥<sup>१</sup>

## कदना

राम की शरणागत बत्सलता और पतितपावनो प्रकृति के व्यञ्जक जो वृत्तांत रामचरित मानस में संकलित हैं, प्रसंग की समीक्षा करने पर उन सबके मूल में करुणाभाव की ही प्रधानता दिखाई देती है—गौतम के शाप से उनकी शिला-भूता पत्नी अहिर्या का उद्धार, बालि के भय से वन-बीहड़ों में लुक-छिपकर जिवंदगी काटने वाले सुग्रीव की रक्षा तथा किष्किंधा का राज्यदान, दंडक वन-वासी मुनियों को सर्वप्रकारेण संरक्षण प्रदान करने का आश्वसना, नरभक्षी राक्षसों द्वारा मारे गये ऋषियों के अस्थिसमूह को देखकर पृथ्वी को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा, शरणागत विभीषण को सका-राज्य का दान आदि प्रसंगों में उस करुणा अथवा जीवदया भाव की अपूर्व छटा दिखाई देती है जिससे रहित मनुष्य को पशु कहने से पशुता भी अपमानित होती है। राम की इस करुणा संवर्धित उदारता की पराकाष्ठा दिखाई देती है राम-रावण युद्ध में उस अवसर पर जब वे राक्षसों को वैरभाव से स्मरण करने वाले अपने भक्त बताकर रण-क्षेत्र में प्राण त्यागने पर उन्हें मुनिदुर्लभ परमपद प्रदान करते हैं।

## कृतज्ञता

गुह्यराज जटायु ने रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता की रक्षा में प्राण-अर्पित किये थे—राम ने उनका अंतिम संस्कार अपने हाथों किया, पिता दशरथ से भी उनके प्रति अधिक ममता दिखाई और अंत में सदेह मुक्ति दी। इसी प्रकार हनुमान द्वारा किये गये अनन्त उपकारों का बोझ आजीवन ढोने में वे गर्व का अनुभव करते रहे।

(१) सीताहरण के पश्चात् वियोगी राम की लौकिक विरहीनायको की भाँति विह्वलता एवं कामासक्ति का वर्णन।

(२) लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग में मर्यादा तथा औचित्य की सीमा पार करने वाला प्रलाप।



(३) मीता की अग्निपरीक्षा के समय राम का दुर्वाद कथन ।

(४) अखिल ब्रह्माड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और बैकुण्ठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन ।

मानस के अध्येताओं, कथावाचकों और सहृदय गायकों ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसंगों की विविध प्रकार से व्याख्या कर अवतार-चरित की अलौकिक महत्ता अशुण रखने का प्रयास किया है । मेरे विचार में इनकी यथार्थता को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आंच नहीं आती । लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नहीं । वे तथाकथित वमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओं से भडित करती हैं, उन्हें दिव्य माकेत से उतार कर विधि प्रपञ्च की रगस्पसी, गुणावगुण समन्वित, जड चेतना से सङ्कुचित उस धरती पर ला खड़ा करती हैं, जिसका भार उतारने के लिए ही ब्रह्मा राम ने अव्यक्त से व्यक्त, असीम से ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था । तुलसी इसका मर्म जानते थे । वे इस खतरे से भी अवगत थे कि अवतार-सीला को तर्क की कसौटी पर कसने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेंगे । इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दों में निपेक्ष किया था—

चरित राम के सगुन भवानी । तरकि न जाहि करम मन बानी ॥<sup>१</sup>

रामायण को 'मानस' का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि भवानी ॥<sup>२</sup>

ऐसी बात नहीं कि वे अवतार चरित की असंगतियों से अपरिचिन थे । एकाध स्थलो पर उन्होंने स्वयं आराध्य के वृत्तों की आलोचना की है—

जेहि अघ बधेउ व्याध हव वाली । सोइ सुकठ पुनि कीन्ह कुचाली ॥

सोइ करतूति विभीषन केरी । सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी ॥<sup>३</sup>

मरणासन्न बालि के द्वारा भी इन्होंने राम के मर्यादापुरुषोत्तमत्व और समदर्शिता को चुनौती दितार्द है—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा । कारन कवन नाथ मोहि मारा ।

धर्म हेत अवतरत गोसाईं । मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥<sup>४</sup>

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व के सम-

१. मानस, लंका० ७३।१ ।

२. मानस, बाल० १२०।३ ।

३. मानस बाल० २८।६ ।

४. मानस कि० ८।६ ।

र्थक होते हुए भी उनकी मानवावतार-सीला को साधारण लोगों के चरित की ही भाँति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नहीं कि वे रामचरित की उपर्युक्त न्यूनताओं की यथार्थता में विश्वास करते हैं बल्कि यह दिखाने के लिए कि शेष के फल पर स्थित चरितों पर आकर यहाँ की भयादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गोपन कर अपूर्ण मानव सा ही व्यवहार करता है। इसीसे उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्ध होती है।

### लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मुलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन<sup>१</sup> के मूल आधार हैं—राम, सीता, सद्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रों के चरित में आद्योपात्त व्याप्त सयम, स्नेहशीलता, निश्छलता, सत्यनिष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा के नायक होने से राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्ति के रूप में अशय आत्म-विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलम्बन, सगठनशक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि तत्वों से समन्वित उनका अखण्ड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप में बड़ों के प्रति श्रद्धा, समादर, आज्ञाकारिता और सेवापूर्ण व्यवहार तथा छोटे पर स्नेह-बुपा एवं क्षमाशीलता की अजस्र बर्षा, मित्र के रूप में सोहार्द्र का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप में प्रजावर्ग की सुख-मुविधा का निरंतर ध्यान, समस्त पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का समुचित सत्कार, ऊँच नीच का भाव त्याग कर वन्य जातियों से धनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियों में शीलपूर्ण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्क से कील-किरातादि जनजातियों का हृदय-परिवर्तन, मानव समाज से ही नहीं पशुपक्षियों तथा जड़ प्रकृति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख-मुविधाओं का त्याग कर स्वेच्छया दुःख एवं विपत्तिसंकुल जीवन का धरण, असत तथा अन्याय की शक्तियों से आजीवन संघर्ष करते हुए अन्ततः वैदिक धर्मनिष्ठता तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियों पर विजय

१ पुष्पं पापहरं सदाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रदं

मयामोहमत्तापह सुविमलं प्रेभाम्बुपुर शुभम्

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये

ते सत्तारपतङ्गधोरकिरणैः बह्यन्ति नो मानवाः ॥

प्राप्ति—आदि कार्यव्यापारो मे उनकी लोकवादी साधना साधार हो उठी है ।

पुराणो के बिष्णु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए मानवावतार ग्रहण कर मानवता को गौरव दिया था । मानस के राम ने अपनी लोकलीला मे मानवीय गुणो के अद्भुत प्रकाश से भगवता की प्रतिष्ठा बढ़ाई । उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व, परात्परब्रह्मत्व, का पर्याय बन गया । पहले भगवता मानवता मे परिणत मात्र हुई थी । तुलसी के राम मे वह पूर्णतया लीन हो गई ।

## रामभक्ति—मानवता की अन्तिम शरणागति

रामकथा के व्यापक प्रचार द्वारा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि और उसका लोकमगल मे विनियोग ही रामचरित मानस का मुख्य आग्रह है । तुलसी का यह दृढ विश्वास था कि इसके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन से लोगों के हृदय मे रामचरणो मे प्रगाढ आसक्ति उत्पन्न होगी ।

जे यहि कथहि सनेह समेता । कहिहहि मुनिहहि समुझि सचेता ।

होइहैं रामचरण अनुरागी । कलिमय रहित मुमगल भागी ॥'

## मनोवैज्ञानिक पद्धति

इस धारणा की पुष्टि बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए वे कहते हैं ।

कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा । व्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥'

जाने बिनु न होह परतीती । बिन परतीति होहि नहि प्रीती ॥

प्रीति बिना नहि भगति दृढाई । जिमि सगपति जन के बिकनाई ॥'

परिचय से विश्वास, विश्वास से प्रीति, प्रीति से श्रद्धा और श्रद्धा से भक्ति—सौकिक प्रेमभावना की भांति ही आध्यात्मिक विकास की भी यही प्रकृत प्रणाली है । मानस मे इन स्थितियों का चित्रण ही नहीं हुआ है, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, अंगद, शबरी आदि के चरित्र मे इनके विकास का भी निरूपण किया गया है । इस क्रम मे प्रतिष्ठित रामभक्ति साधक का अन्तर्मल धो देती है जिससे जन्म जमान्तर से जमी हुई कुसंस्कारो की काँई छूट जाती है । तुलसी का यह दृढ मन है कि अथ किमी भी साधना-पद्धति से इनका अत्यन्तभाव समझ नहीं है—

१ मानस दास० १४।१० ।

२ मानस उत्तर० १२२।१ ।

३ मानस उत्तर० ८८।७ ।

राम भगति जल बिनु खगराई । अभिअतर मन कबहुँ न जाई ॥

### सस्कारमार्जन

श्रीस्वामी जी की धारणा थी कि प्रारब्ध से प्राप्त कुसस्कारों की भाँति ही मनुष्य जीवन को यातनामय बनाने वाले मोह, लोभ, काम, क्रोधादि मनोविकारों के नाश की भी रामभक्ति ही एकमात्र औपाधि है। इसके अद्यपूर्वक मेवम से मानव समाज मानसिक स्वास्थ्यलाभ कर लौकिक उत्कर्ष और पारमार्थिक निद्रि के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

मोह सकल व्याधिन कर भूला । तिहते पुनि उपजहि बहु मूला ॥<sup>१</sup>

यहि विधि सकल जीव जग रोगी । मोक हरप भय प्रीति वियोगी ॥<sup>२</sup>

रघुपति भगति सजीवनि मूरी । अनूपान अछा भति पूरी ॥<sup>३</sup>

जो परलोक इहा गुख चहह । बचन हमार मानि हठ गहह ॥

येँ पत्तियाँ असक्य मानस रोगों से ग्रस्त मानवता के प्रति तुलसी की अपार सहानुभूति और उनके पजे से मानव जीवन को मुक्त करने के लिए उनके वरणाई हृदय की छत्रपटाहट व्यक्त करती हैं।

रामभक्ति के विलक्षण प्रभाव का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि एक बार हृदय में प्रतिष्ठित हो जाने पर फिर वह कभी जाती नहीं। उसका दिव्य प्रकाश अवधारधर्मी दुष्प्रवृत्तियों का मूलोच्छेद कर देता है—

राम भगति मनि उर बस जाके । दुस लवलेस न सपनेहु ताके ॥

व्यापहि मानस रोग न भारी । जिन्हके बस मव जीव दुखारी ॥

खल कामादि निकट नहि जाही । बसत भगति जाके उर माही ॥<sup>४</sup>

### सुगम मार्ग

इसकी सबसे एव बड़ी विशेषता है सुगमता सुलभता। कर्म, ज्ञानादि साधनों की भाँति न तो यह अर्थसाध्य है, न प्रयत्न साध्य। इसकी प्राप्ति की एकमात्र शर्त है सरलता, निष्कपटता और सतोपवृत्तिपूर्ण जीवनचर्या—

“कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न जप तप द्रव उपवासा ॥”

सरल सुभावन मन कुटिलाई । जयालाभ सतोप सदाई ॥

२ मानस उत्तर० १२०।२६।

३ मानस उत्तर० १२१।१।

४ मानस उत्तर० १२१।७।

५ मानस उत्तर० ११६।६, ८५।

१ मानस उत्तर० ४५।१।

मे की जाए, क्योंकि वही सबकी समझ में आ सकती थी। इस विषय में एक अड़चन यह थी कि परंपरा में समाहित धर्मग्रन्थों की भाषा उम समय भी सस्टुत ही थी और लोकप्रसिद्ध रामकथाओं—वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण आदि का निर्माण भी सस्टुत में ही हुआ था। लोगो ने हृदय में चाहे वे माशर हो या निरक्षर सस्टुत भाषा के प्रति विशेष ममादर का भाव था, देव अथवा देवाधिदेव की कथा, स्तुति और अर्चना के लिए देववाणी की उपयोगिता स्वतः गिद्ध थी। वितु तुलसी के समकालीन समाज में उमने पढ़न-ममज्ञो पाषो की संख्या नगण्य हो गई थी। वह सिमट कर धार्मिक दृष्टियों और धर्मग्रन्थों में जीवित रह गई थी—लोकजीवन की मुख्यधारा से उनका सम्पर्क टूट चुका था। तुलसी रामकथा को लोकशिक्षा का मशक्त माध्यम बनाना चाहते थे। इसलिए भी उसकी रचना देशभाषा में करना अनिवार्य था। उधर सस्टुत में अनिलोकनिष्ठा को देखते हुए उसे भी उचित सम्मान देना था। उन्होंने मास के प्रत्येक कांड के मंगलाचरण और देवस्तुतियों में उनको स्थान देकर परंपरावादी प्रवृत्तियों का सत्कार किया। प्रतीत होता है कि इनके धावजूद उनके मन में आराध्य के पावन चरित को 'निगमागम' की भाषा त्याग कर ग्राम्यभाषा में निखरने की ग्थानि बनी रही। मेरे विचार में इसका कारण लोकभाषा में नितो प्रकार की ग्थूनता अथवा मशमता न होकर तत्कालीन धर्माश्रयी विद्वत्तर्ष का सस्टुत के प्रति मोह और लोकभाषा के प्रति तीव्र जुगुप्सा एवं विरोध को भावना थी।

“राम सुकीरति अनित भदेनू । असमजस अस मोहि अदेनू ॥

छमिहहि सज्जन मोरि ठिठाई । मुनिहहि बानबचन मन साई ॥”

उन्होंने ग्राम गीतो में प्रातः रामचरित के सहज माधुर्य एवं काव्य सौन्दर्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया था, इसलिए प्रबध रचना के लिए लोकभाषा के सामर्थ्य पर उन्हें रचनात्र सदेह नहीं रह गया था।

कालान्तर में भाषा सम्बन्धी उनका यह अर्तद्वन्द्व समाप्त हो गया। सर्वमान-धीय कल्याण-भावना की प्रेरणा से उन्होंने सस्टुत का पत्ता छोड़ कर लोकभाषा के ही पक्ष में निर्णय किया—

का भाषा का सस्टुत, प्रेम चाहिए साच ।

काम जो आवे कागरी, वा ले करव कुमाच ॥

×

×

×

स्याम सुरभि पय विसद अति । करहि गुनद सब पान ॥

गिरा ग्राम्य सिय राम जस । गावहि मुनिहि सुजान ॥

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी ने रामकथा को ग्राम्य भाषा में वर्णित करने को प्रेरणा मीथे लोकजीवन से प्राप्त की थी—यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप निर्माण उन्होंने सस्कृत के विशाल वाङ्मय का सहारा लेकर किया ।

सयोगवश उनके आरम्भिक जीवन का अधिकांश अवध प्रदेश में बीता था । अयोध्या रामोपासना का सर्वप्रतिष्ठित केन्द्र था, उनके गुरु का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा । नरहरिदास की साधना भूमि 'मूकर खेत' अयोध्या के पास पड़ती थी, वही वात्स्यायन में इन्होंने गुरुमुख से रामायण की अनेक आवृत्तियाँ सुनी थी, अतः मानस की रचना वही की बोली में हुई । राम की जन्मभूमि की भाषा होने से तुलसी का उसके प्रति आकर्षण एवं आदरभाव स्वाभाविक था ।

काव्य में वर्णित तथ्यों एवं भावों को जनमानस में उतारने के लिए भाषा का सरल, सुबोध, सरस एवं प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है । सहज अभिव्यक्ति ही उसकी प्राणशक्ति है । अतः काव्य शास्त्र के भर्षज और अर्थ-अक्षर के सामर्थ्य से अवगत होते हुए भी तुलसी ने कहीं भी प्रतिभा प्रदर्शन का प्रयास नहीं किया । यह बात दूसरी है कि उनकी परा वाणी में सारे काव्य गुण स्वतः ही सिमट आये हों । उनकी दृष्टि काव्य के आत्मपक्ष के सवारने पर थी, देहूतत्व के सजाने पर नहीं । रामभक्ति के स्वात्म्य को लोक हृदय में यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित कर देने में ही वे काव्य प्रतिभा की सार्थकता मानते थे और इसी में कवि कर्म की इतिश्री समझते थे—

विष्णु बानी सब भाँति सवारी । सोह न बसन बिना बर नारी ॥”

“मनिति विविध सुकवि कृत थोऊ । रामनाम बिनु सोह न सोऊ ॥

इसी भावना ने उन्हें प्राकृत जनो के गुणगान से विरत किया । किसी व्यक्ति की प्रशंसा करने में चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित और वैभव संपन्न क्यों न हो, सरस्वती का अपमान होता है, ऐसा उदात्त विचार सासारिक प्रलोभनों एवं आकर्षणों से मुक्त मानवीय मूल्यों के पारखी का ही हो सकता है । यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजाओं एवं दरबारी काव्य की भर्त्सना करने वाले तथा सामन्तों और सामंतीय सस्कृति के विपातक प्रभाव से समाज की रक्षा करने वाले इस जनवादी कवि को वादावही आलोचक आज सामन्तवाद का पोषक बताने लगे हैं :

“गहि न जाह रसना काहु की कही जाहि जो सुझै” ।

इधर रामचरितमानस में अभिव्यक्त राम के चरित की मानवीय न्यूनताओं की भाँति ही तुलसी के भी मानवता विषयक दृष्टिकोण की भी तीव्र आलोचना

होने लगी है। कहीं-कहीं तो हमने उग्र स्थूल विरोध का रूप ले लिया है। उन्हें ब्राह्मणवादी, शूद्रविरोधी और नारी निंदक कह कर सामाजिक सद्भाव एवं एगता का विरोधी घोषित किया गया है। इन आरोपों पर सस्कारमुक्त चित्त से तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश को दृष्टिपथ में रख कर विचार करने की आवश्यकता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि तुलसी आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे, जब शताब्दियों की विषमों राज्य-व्यवस्था से आक्रान्त जनता अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए जूझ रही थी। वर्ण-व्यवस्था जो कभी कर्मणा थी, उस समय तक आते-आते पथरा कर जन्मना हो गई थी और उसी के लोहावरण के भीतर अपने नास्टनिक दाय को छिपा कर संजोने में व्यस्त थी। बाहरी आघातों से व्यतिरिक्त तथा सामाजिक जीवनदाशों में दरारें पड़ गई थीं और उन्हीं दरारों के कारण मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का गढ़ ढहने की स्थिति में आ गया था। मुन्सी को नास्टनिक प्रहरी के रूप में इन सारे छिद्रों और दरारों को भरकर हताश तथा किकर्तव्यविमूढ़ जनजीवन को नयी दिशा देनी थी। प्राचीनता को एकदम उतारने फेंकने से इसकी सिद्धि संभव नहीं थी—उन्होंने जिन समाज को लेकर धनना था, जिसका परिष्कार करना था वह पुरातनताप्रिय था—व्यावहारिक परिवर्तन के क्षणभेदे भटक जाता। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक की ही तरह लोक सामाजिक जीवन के दोष में भी अतिवादिता का स्थापन कर मध्यममार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक के रूप में ब्राह्मण, शूद्र और नारी सम्बन्धी परपरा-प्राप्त विचारों का समर्थन किया वही, दूसरी ओर उन्होंने वैष्णव-भक्ति आंदोलन द्वारा प्रवर्तित मुधारवादी दृष्टिकोण के प्रकाश में देशकाल की बदली हुई परिस्थिति को देखते हुए ब्राह्मणों के गिरते हुए चारित्रिक आदर्शों की चुलकर आलोचना की, शूद्रों को वशिष्ठ ऐसे बुगाराध्य ब्राह्मण और भरत ऐसे लोकव्यक्त क्षत्रिय से गले मिलाया, और स्त्री-पराधीनता को समाज का अभिघात बताया—

“कत विधि सृजि नारि जग माही। पराधीन सपनेहु मुख नाही ॥”

उनकी यह सतुलित दृष्टि समाज के सभी वर्गों पर पड़ी। धार्मिक मत-मतान्तरो, सामाजिक जीवन के आधारभूत सम्बन्धों और वैयक्तिक जीवन के नैतिक मूल्यों में परिलक्षित मानवता के स्वस्थ विकास के अवरोधक तत्वों पर उन्होंने निर्मम प्रहार किये, विघटनकारी प्रवृत्तियों को निर्मूल करके सगठन तथा सद्भावना के विकास के लिए उन्होंने रुढ़िवादी शास्त्राचिंतकों, पंडितों और पुरोहितों के स्वार्थ एवं शोषणपरक नेतृत्व को अपदस्त कर समाज के उद्धार का

उत्तरदायित्व सत्ता को सीपा । उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति और लोक का समन्वय समदर्शी सत्ता का निस्पृह तथा पावन व्यक्तित्व ही कर सकता है— लोकमत और वेदमत दोनों से सतमत को धरीयता देने का यही रहस्य था—

“सत हृदय सतत सुखकारी । बिस्व सुखद बिमि इन्दु तमारी ॥”

रामचरितमानस में निरूपित उच्च मानवीय मूल्यों के द्वारा विश्वकल्याण की जो कल्पना तुलसी ने की थी कालांतर में यह साकार हुई । मध्यकालीन अधकारधर्मी सामंतवाद तथा रुढ़िजर्जर सामाजिक मान्यताओं के महल ढह कर रहे । अंग्रेजी शासन के साथ पारचात्य, ज्ञान-विज्ञान से आलोकित आधुनिक युग का पदार्पण हुआ । राजनीतिक चेतना के इस अमृतपूर्व जागृति काल में भी युगावतार गांधी ने तुलसी के ‘रामराज्य’ को ही सर्वोदय भावापन्न आदर्श राज्य व्यवस्था स्वीकार किया । इसना ही नहीं उन्होंने मानस-प्रतिपादित नाम-महिमा में हड़ आस्था रखते हुए ‘रामनाम’ को ही जीवन तथा जगत की सारी समस्याओं की महीपधि बताया और उसकी आजीवन साधना कर ‘रामनाम’ का स्मरण करते हुए एक सच्चे रामभक्त की भाँति अपनी ऐहिक सीला सवरण की ।

यह कहा जा चुका है कि तुलसी ने आध्यात्मिक जीवन को ही सर्वोपरि माना था और राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उत्थान में उसकी भूमिका अनिवार्य बताया थी । भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात ही धार्मिक राष्ट्रीयता के रूप में हुआ । गांधी और विनोबा के नेतृत्व में तो उसने पूर्णतया आध्यात्मिक रूप धारण कर लिया—तुलसी ने ‘धर्मरथ प्रसंग’ में वैज्ञानिक उप-सन्धिओं से सुसज्जित विश्वविजयी रावण पर भौतिक साधनों के अभाव में भी बनवासी राम की विजय का कारण उनका अदम्य उत्साह और उच्चकोटि की नैतिकता बताया है । गांधी ने राम के इस आत्मजयी व्यक्ति तत्त्व से प्रेरणा प्राप्त कर अंग्रेजी साम्राज्यशाही से भारतभूमि का उद्धार किया । रामचरित भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कितना प्रेरक रहा है, इसका पता असहयोग आंदोलन के समय निर्मित साहित्य में लगता है ।

आज विज्ञान की अनियंत्रित प्रगति और भौतिकता के असंतुलित विकास ने मानव सभ्यता को रामायण काल की ही भाँति विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है । आसुरी शक्तियाँ का जाल जल, धूल और अवरिक्त चारों ओर फैल गया है । अपना देश राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गया है किन्तु स्वतंत्रता के फल—सुख एवं शांति से सर्वथा वंचित हैं । ऐसे घोर सांस्कृतिक संकट के समय समाज के मानवीय तत्वों की पुनर्स्थापना के लिए रामचरितमानस को नये सिरे से पढ़ने-सुनने की नहीं, समझने की जरूरत है ।



## तुलसी की लोकाराधना

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। समकालीन जनजीवन की पीड़ा, प्रतारणा और हीनावस्था ही उनकी काव्यरचना का प्रेरणास्रोत था। लोकमानस से सादात्म्य स्थापित कर उन्होंने अपनी कृतियों में उसका सच्चा प्रतिबिम्ब उपस्थित किया। उनके तीव्र संवेदनशील मानस में युग का जीता-जागता स्वरूप उतर आया। प्राकृत जन को उद्देशित करने वाली परिस्थितियाँ उनकी निजी अनुभूति बन गईं। तुलसी साहित्य में स्थान-स्थान पर अत्याचार तथा अभाव से क्षुब्ध लोकवाणी की गुंज सुनाई पड़ती है। कहना न होगा कि उसके अंतर्गत मुगल-कालीन जन-जीवन का जो चित्र उपलब्ध है, वेतनभोगी शाही इतिहासकारों तथा विदेशी सैलानियों के सतही विवरणों में उसकी झलक भी नहीं दिखाई देती। दण्डनीति पर आधारित यवन शासन दुःख दारिद्र्य से तस्त जनता का शोषण कर रहा था।<sup>१</sup> उसके अधीनस्थ सामंत और राजवर्मचारी प्रजापीडन में अपने मालिकों को भी भात देते थे।<sup>२</sup> क्या किसान और क्या मजदूर सभी जीविका-विहीन होकर पेट की ज्वाला में भस्म हो रहे थे।<sup>३</sup> अकाल तथा महामारी के प्रकोप से चतुर्दिक् त्राहि-त्राहि मची हुई थी।<sup>४</sup> हिन्दुओं के देवालय ध्वस्त किये जा रहे थे।<sup>५</sup> धार्मिक जीवन में दम और पाखंड का एकाधिकार

१ बोहायसी, ३४६, कवितावली, ५।३२।

२. प्रभु ते प्रभु गन बुलब अति, प्रभुहि संभारे राउ।

करतें होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥ दो० ५०।

३ कवितावली, ७।६७।

४ यही ७।८१, रामचरितमानस, ७।१०१।५।

५ तुलसी देवस देव को, सागो खास करोरि।

काग अभागे हनि भर्यो, महिमा मई कि धोरि ॥

बोहायसी, ३८४।

था ।<sup>१</sup> तीर्थ अनावार के केन्द्र हो गये थे ।<sup>२</sup> अयोध्या और काशी ऐसे नगरतीर्थों की तो बात ही क्या चित्रकूट<sup>३</sup> जैसे पहाड़ी तीर्थ भी कलि प्रभाव से अछूते नहीं बचे थे ।

शताब्दियों की पराधीनता से सामाजिक जीवन में अनेक विकृतियाँ आ गई थी । हिन्दुओं में भी कब्र-पूजा आरम्भ हो गई थी ।<sup>४</sup> भूतप्रेत, डाकिनी-घाकिनी में लोगों की आस्था बढ़ रही थी ।<sup>५</sup> पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि विकराल रूप धारण कर चुकी थी । सगे सबधी खून के प्यासे दिखाई देते थे ।<sup>६</sup> कर्तव्य की अवहेलना और अधिकार-सिप्ता सीमा पार कर रही थी ।<sup>७</sup> अकर्मण्य आलोचकों और प्रवचकों की कमी न थी ।<sup>८</sup> स्वार्थ की विभोषिका से सामाजिक जीवन यातनामय हो गया था ।<sup>९</sup>

१. सुरसदननि तोरय पुरिन, निपट कुठाट कुसाज ।

मनहुँ भवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ॥

—वही ५५८ ।

२. मुख्य रचि होत बसिबे की पुर रावरे,

राम तेहि रुचिहि कामादि घेरे । विनय, २१०

३. चित्र कूट गए हों कलि की कुचालि डेलि,

अब अपहरनि डर्यो हों । विनय, २६६ ।

४. बोहावली, ४६६ ।

५. बोहावली, ६५, ६२ ।

६. सहयासी काधो मिलहि, पुरजन पाक प्रबोन ।

कालक्षेप केहि मिलि करहि, तुलसी खग मृग मोन ॥

बोहा० ४०४ ।

७. सासु ससुर गुद भातु पिनु, भयो चहुँ सब कोइ ।

होना दूजो मोर को, सुजन सराहिय सोइ ॥

बोहावली ३६१ ।

८. ठाढ़ो द्वार न बँ सकैं, तुलसी जे मर मोच ।

निवहि बलि हरिचब को, का कियो करन दयोष ॥

—वही, ३८८ ।

९. हरो घरहि, तापहिं भरत, फरे पतारहिं हाथ ।

तुलसी स्वारथ भीत अन, परमारथ रघुनाथ ॥

—वही, ५२ ।

तुलसी की अतर्मेदिनी दृष्टि समाज के इस जर्जर ढाँचे पर पड़ी। उन्होंने उसके निगूढ़ गह्वरो में छिपी व्याधियों और उनके पोपक कीटाणुओं को देखा। कवितावली में विराट् पुरुष के हृदय में बढ़ते रावण रूपी राजरोग का जो विम्व प्रस्तुत किया गया है, उसके मूल में वस्तुतः युगबोध ही है। लोकपीडक मुगल शासक और विश्व-परितापी रावण की रीति-नीति में उन्हें अद्भुत साम्य दिखायी पड़ा। प्रकट रूप से तो उन्होंने इसका उल्लेख एकाध स्थानों पर ही किया है, किन्तु परोक्षरूप में उनकी समस्त रचनाओं में आसुरी प्रवृत्ति का जैसा वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन शासक वर्ग के आचार-व्यवहार से पूरी तरह मेल खाता है। रावण ने सारे ससार की संपदा छूट कर जिस पूँजीवादी साम्राज्य की स्थापना की थी, राम ने जन-जातियों के सहयोग से उसका मूलोन्नेद करके असुरों के ही नियंत्रण में उसे एक नई व्यवस्था प्रदान की थी। तुलसी को यह गायाकालीन सर्वत्र साम्प्रतिक स्थिति में बड़ा ही प्रेरक प्रतीत हुआ। साधनहीन जाति का उद्धार असुर संहारक राम का लोकानुप्रेरक चरित्र ही कर सकता है, इसमें उनकी दृढ़ आस्था हो गयी। अतः तद्वाग्रस्त समाज के उद्बोधन के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती निर्गुणमार्गी सत्ता की भाँति चेतावनी तथा दार्शनिक तत्त्व विवेचन का मार्ग न अपनाकर लोकग्राह्य कथा पद्धति से राम के लोकपावन चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करके वर्णन को जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया। इस माध्यम से अध्यात्म तत्त्व की प्रतिष्ठा हो जाने पर सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं, और दुःखदार्द्र्य से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। उनका दृढ़ विश्वास था—

जग मगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥<sup>१</sup>

मग्न महामनि विषय व्याल के। भेटत कठिन कुअक भाल के ॥

अत्याचारी शासन से त्रस्त जनता के लिए उनका यह उद्घोष कितना आशाप्रद और धैर्य बँधाने वाला था—

राज करत बिनु काज ही, करत कुठाट कुसाज।

तुलसी ते कुराज ज्यो, जेहँ बारह बाट ॥<sup>२</sup>

राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलि कान ॥<sup>३</sup>

जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाज ॥

इस सुदृढ़ आध्यात्मिक आधार के साथ ही उन्होंने परंपरागत सांस्कृतिक

१. रामचरितमानस, बाल ३१।२।

२. दोहावली, ४१७।

३. रामचरितमानस, १।२७।

मूल्यों की रक्षा के लिए जनता को सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा भी प्रदान की—

सहि कुबोल साँसति मकल, अँगइ अनट अपमान ।  
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान ॥<sup>१</sup>

### लोकोपासना का राजपथ—रामभक्ति

लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से तुलसी की यह धारणा बन गयी थी कि उसका उत्थान व्यक्तिगत नैतिकता के उत्कर्ष से ही संभव है। व्यक्ति की अधोगति के मूल में राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हो या पूर्वजन्म के सस्कार, प्रत्येक दशा में मनोभावों का परिष्कार हुए बिना भवार्तप से आत्यंतिक मुक्ति नहीं मिल सकती। कुठार्ण, सत्रास, मानसिक द्वंद और दारिद्र्य सबका कारण मनुष्य की वैयक्तिक वृत्ति है। उसी के नियन्त्रण और उदात्तीकरण से भौतिक अभावों एवं भयप्रद परिस्थितियों के बीच सतोष एवं सुख का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार की मन स्थिति अष्ट्यात्म साधना से प्राप्त होती है। किन्तु कर्म, अर्हतायें अपेक्षित हैं, वे जनसाधारण की पहुँच से बाहर हैं। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने रामभक्ति का अत्यंत लोकप्राप्त स्वरूप प्रस्तुत किया है—

सम सतोष विचार विमल मति सत सगति ये चारि हठ करि घर ।  
काम क्रोध अहं लोभ मोह मद राग द्वेष निसेस करि परिहर ॥  
नयन कथा मुखनाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसर ।  
नयन निरखि वृषा समुद्र हरि जग जग रूप भूप सीता घर ॥  
इहै भगति वैराग्य ग्यान यह हरितोपन यह सुम द्रव अचर ॥<sup>२</sup>

सभी वर्गों और स्थितियों के मनुष्य ही नहीं सारा चराचर जगत इसका अधिकारी है।<sup>३</sup> मनुष्य की अनं सर्व बाह्य व्याधियों तथा मनोगत अधिकार को दूर कर यह सहज ही उस तत्त्वज्ञान को प्राप्त करा देती है, जिसे योग और

१. दोहावली, ४६६ ।

२. विनय, २०५ ।

३. अखिल विस्व यह भोर उपाया । सब पर भोरि बराबर दाया ।  
सब मम प्रिय सब मम उपजाये । सबते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

४. पहि विधि सकल जीव जग रोगी । लोक हरष भय प्रीति बियोगी ।  
रघुपति भगति सजोवनि मूरी । अनुपान थढ़ा मति पुरी ॥

ज्ञान मार्ग के अनेक कष्टसाध्य स्तरो को पार करने के बाद भी गिरले ही साधक प्राप्त कर पाते हैं—

रघुपति भगति बारि छालित चित त्रिनु प्रयास ही मूछे ।

तुलसीदास कह चिद्विदास, जग बूझत बूझत बूछे ॥ विनयपत्रिका ।

स्वरूप ज्ञान से आत्मविश्वास का उदय होता है । शक्ति केन्द्र में सम्बद्ध हो जाने से मनुष्य में साहस, निर्भयता आदि भावों का उदय होता है और वे उसके स्वभाव के स्थायी अंग बन जाते हैं फिर वह किसी भी सांसारिक शक्ति से पराभूत नहीं हो सकता और न दूषित सामाजिक वातावरण ही उसे मिटा पाता है ।<sup>१</sup> आराध्यदेव को शक्तिशाली मुजामो द्वारा अहर्निश सुरक्षित रहकर वह निर्भय विचरता है—

तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुखेवत रीसत घोरे ।<sup>२</sup>

कहा भय पीर परी तेहि धो, बिचरे धरनी तिनसो तिनतोरे ॥

## जन-नायक राम

राम भक्ति की ओर लोकहृदय को आकृष्ट करने के लिए तुलसी ने रामचरित के ऐसे तत्वों एवं प्रसंगों को उभारा जो लोकस्तर के सर्वाधिक मेल में थे । आराध्य के परात्पर ब्रह्म युवराज और महाराज रूप का साधारणीकरण तुलसी की विशेषता है । रामचरितमानस का प्रतिपाद्य ही राम की भगवत्ता है, किन्तु उनकी अवतारलीला प्राकृत नरलीला के रूप में ही प्रस्तुत की गई । एकाध स्थलों पर जहाँ असौक्यता का प्रदर्शन हुआ भी वह अत्यन्त गोपनीय ढंग से और ऐसे धनिष्ठ सबंधियों के समक्ष जिनके द्वारा उसके लोकप्रचार की सम्भावना नहीं थी, बाल्यावस्था में वे नगर के सामान्य बालकों के साथ अयोध्या की गलियों की मिट्टी और धूल में खेलें थे, किशोरावस्था में पत्नी और भाइयों सहित उन्होंने सखाओं और नागरिकों के साथ सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होकर रंग-

१. भागीरथी जलपान करी औ नाम द्वै राम को लेत नितेहो ।

मोको न लेनों न देनो कछु कलि भूति न राखरे ओर चितेहो ॥

जानि कै जोर करो परिनाम तो तू ही भितेहे पं मे न भितेहो ।

साहाय ज्यों जगित्यो उरगारि हों त्यों ही तिहारे हिते न हितेहो ॥

कवितावली ७।१०२ ।

२. वही, ७।४६ ।

रेलियाँ मनाईं थीं। वनवास के समय फोल-किरातो से धुलमिल कर उनकी जीवनधारा को नया मोड़ दिया था। रिस्त, बानर आदि अर्धसम्भ जातियों के अत्याचारी शासक को समाप्त कर सुख और शांतिपूर्ण जीवनयापन में सहायता की थी और उनका लोकमोहक सौन्दर्य तथा चेष्टाएँ नागरिकों को मुग्ध करती हैं। वात्स्यावस्था में सखाओं के भाय भौरा-चकडोरी खेलते और पतंग उड़ाते हुए देखकर नगरवासी लोग आनन्दमग्न हो जाते हैं। जनकपुर में नगरदर्शन के समय स्त्री-पुरुष काम-काज छोड़कर उनके दर्शन के लिए द्रुत पड़ते हैं, स्त्रियाँ पुष्पो की वर्षा कर उनका स्वागत करती हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं आनन्द की वर्षा होती चलती है।

वन-पथ में जो उन्हें एक बार देख लेते हैं, आत्म-विस्मृत हो जाते हैं—  
 स्थान-स्थान पर उनका स्वागत होता है, लोग दूर-दूर तक साथ लगे हुए चले जाते हैं और रात में विश्राम का प्रस्ताव करके सेवा का अवसर प्राप्त करना चाहते हैं।

लोकजीवन को आनन्दपूर्ण बनाने और उस आनन्द में स्वयं मग्न होने में राम की गहरी अभिरुचि तुलसी द्वारा प्रस्तुत झूला तथा बसंतलीला के वर्णनों से व्यक्त होती है, जिसमें ऐश्वर्य तथा मर्यादा को भूलकर वे सखाओं, वधुओं और स्त्री समाज के माथ नगर की गलियों में घूम घूमकर हाथ में पिचकारी और कंधे पर अबीर की झोली लटकाये हुए स्वांगियों तथा विद्रूपकों के बीच हठदग का आनन्द लेते हुये दिखाई देते हैं—

खेलत बसत राजाधिराज । देखत नभ कीतुक मुर समाज ॥<sup>१</sup>  
 सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । झोलिन्ह अबीर पिचकारी हाथ ॥  
 उत जुवति छूय जानकी सघ । पहिरे पट भूपन सरस रग ॥  
 मूपुर कटि किंकिनि अति सोहाइ । ललना गन जब जेहि धरत घाइ ॥  
 सोचन औत्रहि फगुआ मनाइ । छाटा है नचाइ हा हा कराइ ॥  
 बड़े खरनि विद्रूपक स्वांग साथि । करै कूटि निपट गइ लाज मागि ॥  
 नर नारी परस्पर गारी देत । सुनि हँसहि राम भाइन समेत ॥  
 प्रगीत मुक्तकों में वधि की अठवृत्ति को पुलकर सेलने का अवसर मिलता

१. हिय हरपहि भरसहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि युग्ध ।

आहि जहाँ जहाँ धन्य बोल, तहँ-तहँ परमानन्द ॥

(रामचरितमानस बाल-२२३)

२. गोतावली, अ० १२२ ।

है। इसी से राम को नागरिकों के साथ इतना समृक्त, इतना धुलामिला दिखाया जा सका। इस प्रकार की रसमयी लीलाओं में लोकजीवन को तो महत्व मिला ही, राम के लोकनायकत्व की सार्थकता भी प्रतिपादित हो गयी। मुख-मुख सभी स्थितियों में आश्रितों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर रहने वाला ही उनके गले का द्वार हो सकता है, तुनसी इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे।

## लोक संस्कृति का चित्रण

राम कथा के अन्तर्गत लोकप्रचलित संस्कारों, उत्सवों, प्रथाओं एवं व्रतोत्सवों के अनगिनत प्रसंग आये हैं। रामचरित मानस, रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, गीतावली और कवितावली में इसके बड़े ही सरिलष्ट एवं रोचक विवरण प्रस्तुत हुए हैं। इनसे गृहस्थ जीवन की अठर्थाशों से तुलसी का प्रगाढ़ परिचय प्रकट होता है। इस संधि में एक ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने लोकजीवन में प्रचलित ऐसी अनेक प्रथाओं को भी प्रवृत्त रूप में चित्रित कर प्रकारान्तर से उपादेय ठहराया है जिनमें लोकमानस से अपरिचित आलोचकों को अश्लीलता और गंवारूपन की गंध आती है।

रामलला नहछू में अकित महाराज दशरथ की गहरी रसिकता का व्यञ्जक एक चित्र देखिये—

अहिरि हाय दहेडि सगुन लेइ आवहि हो ।<sup>१</sup>

उतरत जीवन देखि नृपति मन मायहि हो ॥

इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाई गई गारी का उल्लेख ही नहीं ब्योरा भी दे दिया गया है—

काहे राम जिव सावर सखिमन भोर हो ।<sup>२</sup>

कीची रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥

राम अहहि दसरथ के सखिमन आन क हो ॥

मुडन तथा विवाह में स्त्रियाँ 'स्वाग' भर कर केलि कीतुक करती हुई 'रत-जगा' करती हैं इसका भी निर्देश है—

हिलि मिलि करहि सवाग, सभा रस केलि हो ।<sup>३</sup>

नाउनि मन हरपाइ, सुगधिन मेलि हो ॥

१. रामललानहछू, ५ ।

२. वही १२ ।

३. रामलला नहछू, १८ ।

‘राम विवाह’ के समय गारी का रूप और निखरता है। जनकपुर की स्त्रियाँ भात के समय महाराज दशरथ, दशरथिपो, उनके कुटुम्ब की स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली गाती हैं—

जेवंत देहि मधुर घुन गारी। लेइ-लेइ नाम पुष्प अरु नारी ॥<sup>१</sup>

समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥

गारी का प्रसंग यही समाप्त नहीं होता। तुलसी को यह प्रथा इतनी प्रिय<sup>२</sup> थी कि लकादहन के समय वे हनुमान के पाहुन रूप में उपस्थित अग्निदेव के भोजन के समय राक्षसियों द्वारा गारी से मत्कार कराना नहीं भूलते—

पाहुने हुसानु पवमान सो परोसो,  
हनुमान सनमानि के जेवाएँ चित चाय सो।<sup>३</sup>

तुलसी निहारि अरिजारी दै दै गारि कहै,  
वावरे सुरारि बैर कीन्ही राम राय सो ॥

कन्या को विदाई का चित्र कितना हृदयद्रावक होता है। इस अवसर पर परम विरागी विदेह भी विचलित हो गये थे। पार्वती भगल का एक बिम्ब है—  
भेंटि बिदाकरि बहुरि भेंटि पहुँचावहि।<sup>४</sup>

हुँकारि हुँकारि मुठा सवाइ धेनु जनु धावहि ॥

भाँवरि के समय ‘लावा’ परछने की रीति कन्या के भाई द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। जनक के कोई पुत्र न था। तुलसी ने भूमि पुत्र भगल को इस मांगलिक कार्य के लिए उपस्थित कर उक्त प्रथा की भर्मादा निभाई—

सिय भ्राता के समय भीम तब आयउ।<sup>५</sup>

दुरी दुरा करि नेग सुनात जनाएउ ॥

इसी प्रकार ‘कोहबर’, ‘लहकोरि’, ‘जुआ’ आदि रस्मों का भी वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ किया किया गया है।

इन सारे चित्रों का आधार तुलसी के सामने अपना देखा हुआ समाज और उसमें प्रचलित लोकप्रथाएँ रही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

१. रामचरितमानस, १।३२८-७।

२. अमिय गारि गारउ गरल गारि कीन्ह करतार।

प्रेम धेर को जननि जुग, जानहिं बुध न गवार। बोहायलो ३२८।

३. कयितावली संका २४।

४. पार्वतीमंगल, १५८।

५. जानकीमंगल, १६६।



## लोक धर्म

‘राम’ का अवतार लोकधर्म की स्थापना के लिए हुआ था। तुलसी ने अपनी कृतियों में रामकथा के प्रमुख पात्रों के आचार, व्यवहार तथा उक्तियों के माध्यम से लोकधर्म का नैसर्गिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। अहिंसा, कष्टना, परोप-कार, वृद्धों की सेवा, मर्यादानिष्ठता, जन्म भूमि-प्रेम, दुष्टों का दमन, प्राण देकर भी अबलाओं की रक्षा, भलो के लिए नम्रता और अहिंसा, तिलाजलि देकर शक्ति की भाषा का प्रयोग आदि कार्य व्यापारों को आदर्श सामाजिक जीवन का अनिवार्य रूप मानकर उन्हें राम की मोकलीला में उनकी व्याप्ति दिखाई और इस प्रकार लोकधर्म पालन के प्रति जनबधि जागृत की।

## लोक प्रकृति निरीक्षण

सामाजिक जीवन में तुलसी ने लोक स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनकी रचनाओं में ऐसे स्थल भरे पड़े हैं, जिनसे मानव प्रकृति की विलक्षणताओं की पहचान और अद्भुत क्षमता चोखी होती है। विशिष्ट अवसरों पर प्रस्फुटित मन के सहज उद्गार व्यक्ति के आन्तरिक स्वभाव स्तर तथा विचार पद्धति के सूचक हैं। पात्रों के चरित्रचित्रण में उनकी दृष्टि में यह बात बराबर रही। इसी से मानव प्रकृति के चित्रण में उन्हें इतनी सफलता प्राप्त हो सकी। रामचरित मानस में सत-असज्जन वन्दना, नारदमोह, लक्ष्मण-परशुराम भवाद, मधरा प्रमग तथा कलिधर्म निरूपण आदि प्रसंगों में तो एतद्विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ही, दोहावली में भी लोक स्वभाव एवं प्रवृत्ति-व्यञ्जक अगणित रेखाचित्र सजाये गये हैं—

### (१) त्रिया चरित्र

कल सिख देह हमहि कोउ भाई । गाल करब कहि कर बल पाई ॥<sup>१</sup>  
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती । नाहि त मौन रहब दिनु राती ॥  
जारे जोगु सुभाउ हमारा । अनमल देखि न जाइ तुम्हारा ॥<sup>२</sup>

### (२) गूढ़ व्यंग्य (कूटि)

करहि कूटि नारदाहि मुनाई । नीक दीन्ह विधि सुन्दरताई ।  
रीझिहि राजकुँवरि छत्रि देखी । इन्हहि बरिहि हरि जानि विसेली ॥<sup>३</sup>

१ रामचरितमानस, २।१४-१ ।

२ वही २।१६-४-७ ।

३ रामचरितमानस, १।१३४-३, ४ ।

(३) क्षोभ में अपशब्द प्रयोग

खीझति मँदोवै सविपाद देखि मेघनाद,<sup>१</sup>

बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को ।<sup>२</sup>

(४) पड़ोसियों का क्रूरतापूर्ण व्यवहार

सहवासी कायो गिरहि पुरजन पाक प्रवीन ।

कालक्षेप केहि मिलि करहि तुलसी खग मृग मीन ॥

(५) लोकव्याप्त स्वार्यभावना

हरोचरहि तापहि बरत, करे पमारहि हाय ।

तुलसी स्वारय मीन जन, परमारय रघुनाथ ॥<sup>३</sup>

## लोक विश्वास

लोक जीवन की सामान्य धारा अधिकांशतः परम्परागत मान्यताओं से संचालित होती है। इनका आधार जाति विशेष के सांस्कृतिक विकास की विभिन्न दशाओं में अनुभूत तथ्य होने हैं। सम्प्रदाय का ऐतिहासिक ज्वार ऊपर से निकल जाता है, ये अन्तस्फल में चिपके पड़े रहते हैं। तुलसी ने समाजालीन जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को मनोयोगपूर्वक देखा-परखा था। उनमें कुछ उन्हें लोकाहित साधक लगे, कुछ हानिकारक। उन्होंने उनका विवेकपूर्वक त्याग अथवा ग्रहण करने के लिए लोगो को सावधान किया—

(१) अंधविश्वास—ब्रह्माइच में गात्री मियाँ की दरगाह की जियारत से कूटनाश, पुत्र प्राप्ति, नेत्रनाश विषयक लोकमान्यता का खंडन—

तही भाँल जब आँधरे, बाँझ पूत कब लाय ।

कब कोड़ी काया तही, जग बहुरायच जाय ॥<sup>४</sup>

(२) सती प्रथा का विरोध—यति के मरने पर उसकी चिता में छियों के

१. बहितायसी, ५११२ ।

२. 'दाढ़ीजार' स्त्रियों द्वारा पुरुषों के लिए प्रयुक्त एक वात्सी है, जिसका अर्थ है 'जिसकी दाढ़ी जता देने योग्य हो।' मध्यकाल में मुसलमानों के घोर अत्याचार से क्षुब्ध होकर हिन्दू स्त्रियों ने यह शब्द गढ़ा या अगहोरा व्यक्त करने के लिए, कालांतर में इसका प्रयोग अत्याचारी, अनिष्टकारक अथवा विरोधी-मात्र के लिए होने लगा ।

३. दोहायसी, ४०४ ।

४. दोहायसी, ४६६ ।

आत्मदाह की मध्यकालीन राजपूतों में प्रचलित प्रथा उन्हें अमानवीय एवं मर्यादा-हीन प्रतीत हुई। उन्होंने स्त्रियों को इससे विरत होकर कुलशील का पालन करते हुए साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने की सीख दी।

सीस उधारन किन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग ।

पर ही सती कहावती, जरती नाह वियोग ॥<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त लोकविश्वास, निष्ठा, सदाचार आदि मद्गुणों के वर्धक और लोभधर्म की रक्षा के सहायक प्रतीत हुए उनका उन्होंने समर्पण ही नहीं किया बरन् उसके पोषण निमित्त उपयुक्त अवसम्ब भी प्रदान किये—

(१) शकुन विचार—यात्रा, मागलिक कार्य, इष्टानिष्ट ज्ञान आदि के लिये शकुन विचार की प्रथा अत्यंत पुरानी है। इसके लिये लोगो को ज्योतिषियों का सहारा लेना पड़ता था। तुलसी ने रामभक्तों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये 'रामाज्ञाप्रश्न' की रचना की और उसकी प्रयोग विधि का भी निर्देश कर दिया—

मुदिन सजि पोषी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम ।

सगुन विचारब धार मति, सावर सत्य सनेम ॥<sup>२</sup>

शकुन विचार का इससे अधिक सरल रूप 'रामशलाका' में प्रस्तुत किया गया, जिसका उपयोग मात्र अक्षरज्ञान रखने वाले भी कर सकते हैं।

(४) भीतिपूजा—गाँवों में स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर दीवारों पर देवी-देवताओं के चित्र बनाकर पूजती हैं। लोकमानस में भक्ति की प्रतिष्ठा के लिये तुलसी की यह प्रथा उपयोगी जान पड़ी। इसलिये उन्होंने इसकी हिमायत की—

अपनी ऐपन निज हृषा, तिय पूजहि निज भीति ।

फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रेम प्रसीति ॥<sup>३</sup>

## साहित्य साधना में लोक तत्व

प्रतिपाद्य विषय की भाँति ही उसकी अभिव्यंजना में भी तुलसी ने लोक-तत्त्व को महत्व दिया। धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्य की रचना परम्परा से सस्कृत में होती आ रही थी। किन्तु काल-प्रवाह में यह भाषा लोक सम्पर्क से दूर जा पड़ी थी। तुलसी को लोकोत्थान के लिये जन-जन तक अपना सदेश पहुँचाना था। इसलिये इसके प्रति आदरभाव रखते हुये भी उन्होंने लोकभाषा

१. बोहावली, २५४ ।

२. रामाज्ञाप्रश्न, ७।१ ।

३. बोहावली, ४५४ ।

अवधी तथा ब्रजों को अपनाया। साहित्य निर्माण में यह उनके लोकवादी दृष्टि-  
कोण का परिचायक है। इसकी भी प्रेरणा उन्हें लोक-जीवन से प्राप्त हुई थी।  
साम्प्रतिक ग्राम्य भाषा में उन्हें रामकथा की एक समृद्ध परम्परा का पता चला  
था—

स्याम मुरभि पय बिसद अति, करहिं भुनद सब पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहिं सुनहिं सुजान ॥<sup>१</sup>

उसमें निहित भावों तथा कलात्मक विशिष्टताओं को देखकर उनकी यह  
धारणा बन गई थी कि नरवाणी में वर्णित रामचरित देववाणी में विरचित राम-  
कथा की अपेक्षा अधिक व्यापक, सोघा सर्वसुलभ, और मधुर है—

हरिहर जस मुर नर गिरह, बरनहिं मुकचि समाज ।

हाडी हाटक घटित चर, तुलसी स्वाद सुनाज ॥<sup>२</sup>

उनकी वृत्तियों में ब्रजभाषा और अवधी दोनों का प्रयोग हुआ है। प्रतीत  
होता है इनमें भी अवधी उन्हें विशेष प्रिय थी—उसके परिनिष्ठित तथा ठेठ दोनों  
रूपों को अपनाकर उन्होंने इसका सकेत दिया है। ब्रजभाषा का केवल टफसाली  
रूप प्रयुक्त हुआ। अवधी के देशज शब्दों तथा मुहावरों का बाहुल्य देखते हुए यह  
अनुमान लगाना असंगत न होगा कि बाल्यजीवन में उनका उक्त प्रदेश में दीर्घ-  
कालव्यापी तथा घनिष्ठ सवध रहा होगा।

रामकथाश्रित काव्यों की परम्परा में लोकगीतारमक शैली के मगल काव्यों  
—रामलना नहुटू, जानकीमगल और पार्वतीमगल—की रचना कर उन्होंने एक  
नई कड़ी जोड़ी। इसमें उनका मुख्य उद्देश्य 'रामचरितमानस' का अशिक्षित तथा  
अर्द्धशिक्षित ग्रामीण समाज के बीच प्रचार करना था, यह कार्य सत्कार गीतों  
के माध्यम से ही संभव था। इसलिये लोकस्तर पर उतरकर उन्होंने उनके  
सत्कारों रचियों और रीतिमें के अनुकूल रामकथा के मांगलिक प्रसंगों को ग्राम-  
गीतों के संचि में डाला। इनके गाने और सुनाने के सभी प्रकार के लौकिक तथा  
पारमार्थिक कल्याण का विश्वास दिलाकर उनके प्रति लोकानर्पण का मार्ग प्रशस्त  
कर दिया—

जे यह मगल गावहिं गाइ सुनावहिं हो ।

ऋदि सिद्धि कल्याण मुक्ति नर पावई हो ॥<sup>३</sup>

इनकी रचना भी लोक परिचित 'सोहर' तथा मगल छन्दों में हुई—

१. रामचरितमानस, १।१० (छ) ।

२. बोहावलो, १६७ ।

३. रामसतानहुटू, २० ।

## लोक-रोति का निर्वाह

तुलसी के हृदय में लोक-परम्पराओं के प्रति कितना सम्मान और साहित्यिक रचना में भी उनके निर्वाह का विनाश आग्रह था, इसका सबेरा इसमें मिल जाता है कि राम के अनन्य भक्त होने लगे भी रामचरितमानस ऐसे प्रबन्ध काव्य में ही नहीं, पार्वती-मंगल और विनयपत्रिका ऐसे प्रगीत मुक्तको में भी गणेश वन्दना के बाद ही इष्टदेव की वन्दना की गयी है। इसका महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि उनके समसामयिक कृष्ण भक्तों यहाँ तक कि मूरदास में भी अपनी कृतियों के मंगलाचरण में मात्र आराध्य देव की वन्दना को स्थान दिया है। तुलसी ने विनयपत्रिका में राजा रामचन्द्र के समक्ष बलि प्रभाव से पीड़ित मानवता की ओ अर्जों पेण की है, उसमें भी तत्कालीन लोक-व्यवस्था में प्रयुक्त दरवारी शिष्टाचार का पूरी तरह पालन किया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक जीवन में प्रत्यक्ष परिज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उक्त-पद्धति का विनियोग आध्यात्मिक जीवन में किया गया। उनकी कृतियों में प्राप्त 'साहेब साहिबानी', 'गरीब नेवाज', 'उमरदराज', 'दरबार' आदि शब्द समसामयिक शासनव्यवस्था से ही लिये गये हैं। विनयपत्रिका के अन्त में स्वीकृति प्राप्ति के लिये 'परी रघुनाथ सही है' का प्रयोग हुआ है। यह शब्दावली भी सरकारी ही है।

## लोक सुलभ अप्रस्तुत विधान

तुलसी की भाषा में जैसी भावगहरिमा है वैसा ही उसका जलेवर भी शब्द और अर्थवैविध्य से भड़ित है। सर्वहित कामना से लिखे गये काव्य का प्रधान गुण सुगमता होना चाहिये, इस पर उनकी दृष्टि बराबर रही। इसलिये उनकी रचनाओं में अलंकार तथा अन्य काव्य गुणों का विधान अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। काव्य के सारे गुण उनकी वाग्धारा के सहज प्रवाह में स्वतः सन्निविष्ट होते गये। प्रसाद उसकी मुख्य वृत्ति रही, माधुर्य उनके रसमग्न हृदय के सम्पर्क से और ओज अक्षुब्ध तेजोमय नायक के प्रताप से। 'कवित विवेक एक महि मोरे' की घोषणा करने वाले तुलसी की भाषा कितनी काव्यात्मक और काव्यशास्त्र में निर्दिष्ट विशिष्टताओं से भरी पूरी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

माधर्म्यमूलक अलंकारों के विधान में तुलसी की विशेष अभिरुचि रही है। इनकी योजना में परम्परा तथा प्रयोग दोनों पद्धतियों का योग रहा—पुराने उपमानों को भी स्थान दिया गया है और स्वतन्त्र रूप से नये-नये अप्रस्तुतों की

उद्भावना भी की गई। नये अप्रस्तुतों की यह विशेषता है कि वे प्रायः व्यावहारिक जीवन क्षेत्र से चुने गये हैं इसलिये प्रगाढ़ अनुभव से सिक्त हैं। इससे सप्रेमणीयता एवं रसोद्बोधन में चमत्कारिक शक्ति आ गई है।

(१) रूपक

रूपक जीवन—

बरपा रितु, रघुपति भगति, तुलसी सानि सुदास ।<sup>१</sup>

राम नाम के बरन जुग, सावन भादो मास ॥

उत्प्रेक्षा-लोकानुभव—

विलोके दूरि से दोउ बीर

मन अगहुँह तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर ।

गहत जोड मनो सकुच पक महँ, कदत प्रेम बल धीर ।<sup>२</sup>

नगर व्यापि गइ घात भुतीछी । सुनत चढी जनु सब तन बीछी ॥<sup>३</sup>

(२) उपमा—लोकजीवन

गाडी के स्वान की नाई माया मोह की बढाई,<sup>४</sup>

छिनाहि तजत छिन भजत बहोरि हो ।<sup>५</sup>

×

×

×

गुहहित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाव पिराने ।

सदा मसीन पथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय पिराने ॥<sup>६</sup>

ग्राम्य जीवन से ग्रहीत ऐसे असंख्य अछूते तथा गूढ़ार्थ व्यञ्जक साम्य विधान तुलसी के गभीर अन्वेक्षण एवं विलक्षण काव्य प्रतिभा के परिचायक हैं।

लोकमत का सत्कार

राम राज्य के रूप में जिस आदर्श समाज की कल्पना तुलसी ने की है उसमें न्याय, स्वतन्त्रता और सीहार्द की पूरी प्रतिष्ठा है। वर्णव्यवस्था के समर्थक होने से वे समानता के कायल नहीं हैं, किन्तु अपने-अपने कर्तव्यों के

१. रामचरितमानस, १।१६।

२. गोतायली, २।६६।

३. रामचरितमानस, २।४६-७।

४. विनयपत्रिका, २५८।

५. वही, २३५।

६. गोतायली, ७०।३६।

पालन में सबको समान रूप से सुविधा प्रदान करना ये शासन का मुख्य धर्म मानते हैं। यह सर्वविदित है कि उनके उपास्य राम राजा थे और जिस युग में तुलसी स्वयं जी रहे थे, उसमें भी राजसत्ता का स्वरूप अधिनायकवादी ही था। किन्तु रामराज्य और मुगलशासन के आदर्शों में आकाश-पाताल का अन्तर था। प्रथम का उद्देश्य लोकपोषण था तो द्वितीय का लोकशोषण, एक में लोकेच्छा का समादर था, तो दूसरे में पूर्ण अवहेलना। उस स्थिति में उन्होंने प्रजा को अपने अधिकारों के प्रति राजग करने के उद्देश्य से राम द्वारा स्थापित प्रबुद्ध सामन्तीय व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत किया।

अयोध्या के चक्रवर्ती साम्राज्य में सचालन में तुलसी ने महाराज दशरथ और उनके उत्तराधिकारी राम को विशिष्ट अवसरों पर 'जनप्रतिनिधियों' और लोकवाणी को समुचित महत्त्व देते हुए दिखाया है। इसके अतिरिक्त उन्हें परंपरागत रामकथा में स्वतः ऐसे अनेक प्रसंग मिल गये जिनमें लोकमत को यथोचित महत्त्व दिया गया था—

### (१) राज्याभिषेक का निर्णय—

राम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के पूर्व दशरथ गुह मन्त्रियों और सुमन्त को बुलाकर परामर्श करते हैं। उनकी सम्मति प्राप्त करने के बाद ही सट्टिपयक घोषणा की जाती है—

जो पाँचहि मत लागे नीका । करहु हरषि हिय रामहि टीका ॥<sup>१</sup>

सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहहु न कुछ ममता उर आनी ॥

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥

राम प्रजा के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विनिमय करते हैं और निर्णय होकर अपने विचारों की आलोचना करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। रामराज्य में विचार स्वातंत्र्य किस सीमा तक था, यह उसका उदाहरण है—

जौ अनीति कछु भापहु भाई । तो मोहि बरजहु भय बिसराई ॥<sup>२</sup>

### (२) अङ्गव को युवराज बनाना—

बालि बंध के अनन्तर सुग्रीव किष्किंधा के राजा बनाये जाते हैं, किन्तु अगद के प्रति स्थानीय जनता की व्यापक सहानुभूति देखकर, परम्परा से हटकर राम उन्हें युवराज बनाते हैं। यह कार्य राम ने अपने परम मित्र सुग्रीव की इच्छा के

१. रामचरितमानस, २।५-३।

२. रामचरितमानस, ७।४३-३,४,६।

विरुद्ध किया था, इसकी पुष्टि अगद के निम्नांकित कथन से होती है—

कह अगद लोचन भरि बारी । दुहैं भाँति भई मृत्यु हमारी ॥

पिता बधे पर भारत मोही । राखा राम निहोरन ओही ॥<sup>१</sup>

(३) सीता परित्याग—

सीता बनवास रामवधा की एक अत्यंत हृदयद्रावक घटना है। राम ने अपनी परम प्रिया का त्याग, जिसके हरण पर 'महानिरीही अतिकामी' की भाँति अर्द्ध-विक्षिप्त हो उन्होंने बनबोहड़ छान डाले थे और पत्ता लगने पर समुद्र पर पुल बाँधने जैसा असम्भव कार्य सम्भव कर दिखाया था, कितना अवर्दाह सहकर किया होगा। ऐसा आत्मघाती निर्णय उन्होंने सीता के किसी अपराध या चारित्रिक दोष विषयक अपने अनुभव अथवा विश्वास के आधार पर नहीं किया। न इसके मूल में अयोध्या के नागरिकों या मनिपरिपद का ही किसी प्रकार का अनुरोध था। हुआ यह कि गुप्तधरो द्वारा दी गई सूचना पर, जिसका आधार एक सत्कारहीन प्रजा द्वारा अपनी स्त्री से लगड़ते समय बहे गये वाक्य थे। राम के समक्ष शोकमत नहीं प्रस्तुत हुआ। उनके कालों तक मात्र लोकाध्वनि पहुँची थी :—

धरषा धरनि सो सुनि जान मनि रघुराइ,

दूत मुख सुनि लोकधुनि घर धरनि वृक्षी आइ ॥<sup>२</sup>

राजसूत्र की तो बात ही क्या, विश्व की किसी जनतान्त्रिक अथवा सभाजवादी शासन व्यवस्था में भी आज तक जनरत को इतना महत्त्व नहीं मिल सका है।

राम के इस अप्रत्याशित व्यवहार का औचित्य विचारशील जनता के गले के नीचे नहीं उतरा। लोकमानस में इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। सीता के माध्यम से जन कवि ने अपने उद्गार प्रकट किये—पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में अयोध्या को रोचन भेजते हुए उन्होंने माई से सदेश कहलाया—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कीसिला माई रे ।

मउआ तिसर रोचन लल्लिमन देवरा पपियवा न जाने

अधरमी न जाने हो ॥

लोकापवाद के भय से राम द्वारा सीता के प्रति किए गये इस व्यवहार को तुलसीदास ने भी धीरे अन्याय माना है—

१. रामचरितमानस ४।२६-२,५ ।

२. गीतावली, ७।२७ ।



दैरि बहु निसिचर अघम, तजे न भरे कलक ।

झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी साईं ससक ॥<sup>१</sup>

## लोक देयता के रूप में राम की प्रतिष्ठा

स्वामी रामानन्द तथा उनकी परंपरा के कतिपय रामभक्तों ने व्यष्टि साधना में हनुमान का आश्रय लिया था और उनकी स्तुति में पदों की रचना की थी । किन्तु दास्यनिष्ठा के आदर्श रामभक्त के रूप में उनको जी महत्व रामचरित-मानस और हनुमानबाहुक ने प्रदान किया वह अभूतपूर्व था । संकटमोचन और बंदीछोर हनुमान की पूजा का व्यापक प्रचार इसी का परिणाम था ।

शिव अथवा रुद्रावतार होने से उनकी मूर्तियों की स्थापना के लिए देवालय निर्माण की अनिवार्यता नहीं थी, न विष्णु मंदिरों की भांति उनकी पूजा पद्धति का ही झमेला था । किसी भी चौराहे पर, निर्जन या धनी बस्ती के बीच, जंगल या वाटिका में अथवा सड़क के किनारे उनकी प्रस्तर मूर्ति रखकर पूजा की जा सकती थी । तुलसी ने स्वयं इसी प्रकार काशी में संकटमोचन हनुमान की स्थापना कर मार्गदर्शन किया था ।

हनुमान शक्ति के देवता हैं । अतः उनके मंदिरों के साथ अलाहों की भी स्थापना हुई । जातीय जीवन में शौर्य के विकास के लिये इस प्रकार की व्यवस्था तुलसी के ही मानस की उपज हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । संभवतः इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर समर्थ गुरु रामदास ने अध्यात्मसाधना के लिये 'राममंदिरों और बलोपासना के निमित्त हनुमान मंदिरों का महाराष्ट्र में एक जाल सा बिछा कर जन-जागरण के सफल अभियान का सूत्रपात किया था । हनुमान तत्व में तुलसी ने दीव तथा शाक्त सिद्धांतों का पर्यवसान कर उक्त साधनाओं में आस्था रखने वाले लोगों की भी रामभक्ति की ओर आकृष्ट किया । इससे उसका देश-व्यापी प्रचार हुआ ।

## लोकशिक्षा के सशक्त माध्यम-रामलीला का प्रवर्तन

सांस्कृतिक तत्वों की गरिमा अधुण रखने के लिये महापुरुषों की जीवनगाथा का रूपको या जन-नाट्यो द्वारा प्रदर्शन प्राचीन काल से ही लोकशिक्षा का एक सशक्त माध्यम रहा है । रामोपासना के क्षेत्र में इसकी परंपरा तुलसीदास के पहले से चली आ रही थी । 'भक्तमाल' में रामदास द्वारा विरचित एक नाटक

का उल्लेख है, जो समभवतः रामलीला के मचन की दृष्टि से ही लिखा गया था—  
सबद पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

रामायन नाटक की रहस्य, उक्ति छुक्ति भाषा धरी ।

गोव्यवेलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी ॥

किन्तु जैसा इन पंक्तियों से ही स्पष्ट है, उसका प्रतिपाद्य राम की भृगारी लीला थी । मेरे विचार से यह रसिक राममर्त्तों की परंपरा में प्रचलित राम की रामलीला के प्रदर्शन के लिये लिखा गया था, जिसकी परंपरा उक्त शास्त्रा में अब तक पाई जाती है । ऐश्वर्यपरक जीवनादर्श को लेकर संपूर्ण रामकथा पर आधारित रामलीला का प्रवर्तन तुलसी ने किया, अब तक प्राप्त सूत्रों से यह धारणा निर्भ्रान्त ठहरती है । उत्तरी भारत के गाँवों, बस्वों और नगरों में आश्विन तथा कार्तिक मास में रामलीला की जो धूम दिखाई देती है, उसका मुख्य श्रेय तुलसी को ही है ।

### लोक सेवा का अन्यतम साधन—समन्वय भावना

भारत विभिन्न सस्कृतियों, धर्मों तथा संप्रदायों का देश है । उनके पारस्परिक मतभेद प्रायः स्थूलसंघर्षों के कारण रहे हैं । अतः यहाँ के सामाजिक जीवन को सुख-शांति भय बनाये रखने के लिये समय-समय पर आविर्भूत महापुरुषों का प्रयास विभिन्नता में एकता तथा विषमता में समता के सूत्रों का अनुसंधान एवं उपस्थापन रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुज और रामानन्द उसी अलख परंपरा के प्रकाशस्तम्भ हैं । तुलसी ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा तथा मैत्री भावना से उसे आगे बढ़ाया । इनकी समन्वय साधना का आधार बनी—रामभक्ति । सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विरोधों के कारणों का सम्यक् प्रकार से अभ्ययन करके अपनी रचनाओं में उनके यथोचित समाधान प्रस्तुत किये । शैवों-वैष्णवों, निर्गुणों-सगुणों, लोक-भेदवादियों, कर्म-योग-ज्ञान मार्गों के साधकों, द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतानुयायियों, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गों के पारस्परिक द्वंद्वों के शमन के लिये उन्होंने अधिकारी पात्रों के प्रामाणिक विचारों की योजना की । इसके अतिरिक्त उन्होंने रामतत्व की व्याख्या एवं प्रस्तुति जिस विराट् फलव पर की उसके अंतर्गत सारे विरोध स्वतः विलीन हो गये । विच्छिन्न लोकजीवन को जोड़ने की यह प्रक्रिया सभी दृष्टियों से उपकारक सिद्ध हुई । यह तुलसी की ही दीर्घदर्शिता का प्रसाद था कि उत्तरी भारत में शिवकाँची-विष्णुकाँची का दृश्य प्रस्तुत होने की नीवत नहीं आई ।

ज्योतिर्मय आकाश की अपेक्षा जीव सकुल घरती, दिव्य साकेत की अपेक्षा अयोध्या को अधिक महत्व देकर तुलसी ने सगुण साधना के क्षेत्र में लोकवादी विचारधारा को नई चेतना प्रदान की। मानव को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि, मानव जीवन को देवों के लिये भी स्पृहणीय और उसका कर्म-क्षेत्र ससार तथा अपनी आविर्भाव भूमि भारत को बदनीय बताकर उन्होंने लोकजीवन की महत्ता बढ़ाई। अद्वैतवादी सन्यासियों<sup>१</sup> गोरक्षपंथी योगियों तथा निर्गुणमार्गी सत्तो ने जागतिक जीवन की विगर्हणा कर उसके प्रति जनता में जो विरक्ति की भावना फैलाई थी, तुलसी ने उसका जनक जैसे ब्रह्मविद्या के आचार्य द्वारा प्रतिपादित किया और राम ऐसे नररत्न की क्रीडास्थली भवसागर का मुक्तकंठ से गुणगान किया—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर ।

जहँ उपजहि अस मानिक विधि बह नागर ॥<sup>२</sup>

अनादि अनंत परमात्मा की सृष्टि, ससार के सौंदर्य, माधुर्य और चिरतनता पर तुलसी स्वयं भी मुग्ध थे—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे ।

“इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मलायतन कलियुग की भी मूर्धन्य स्थान दिया। लोकोद्धारक राम का सस्पर्श पाकर देशकाल सभी तर गये—

कलियुग सम जुग जान नहि, जो नर कर विस्वास ।

गाइ राम गुन गन विमल भव सब विनहि प्रयास ॥

इस प्रकार लोकालय का महत्व प्रतिपादित कर उन्होंने समकालीन वातावरण से विपणन जनता के हृदय में सौकिक जीवन के प्रति अनुराग जगाया और स्वत्वों की रक्षा के लिये उसे प्रकारान्तर से भौतिक परिस्थितियों से सघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित किया—

जासु राज प्रिय प्रजा दुबारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

तुलसी की अपनी दृढ़ धारणा थी कि लोकसेवक का मुख्य कर्तव्य जनरक्षि का परिष्कार और उन्नयन होना चाहिये, अधानुसरण नहीं। लोक के रग में रंगजाने को वे अधःपतन की पराकाष्ठा मानते थे, कारण कि समूहानुगामी मनुष्य का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य विलीन कर पशुत्व में परिणत हो जाता है।

१. झूठा है झूठा है झूठा सब सब सत कहत जो अत लहा है ।

जानकी जीवन जानि न जान्यो तो जानि कहाय के जान्यो कहा है। कवि, ७।३६

२. जानकीमंगल, ४७ ।

इसी से उन्होंने समकालीन लोकजीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त लोकधर्म विरोधी प्रवृत्तियों, रीति-रिवाजों, आचार-विचारों तथा उनके पुरस्कर्ताओं की खोलकर आलोचना की। जैनश्रावक,<sup>१</sup> भगवान बुद्ध,<sup>२</sup> अद्वैतवादी संन्यासी, नाय पंथी सिद्ध,<sup>३</sup> अलखिया संत,<sup>४</sup> सूफी फकीर और निर्गुणियाँ संत,<sup>५</sup> यवन शासक और उसके गण, राजे महाराजे, दरबारी कवि,<sup>६</sup> ढोभी साधु,<sup>७</sup> पठे और पुरोहित,<sup>८</sup> परोपदेशकुशल पंडित,<sup>९</sup> और बात की खेती करने वाले वक्ता प्रवक्ता, १० सब पर उनका निर्मम प्रहार हुआ। जो भ्रातृदोही तथा नैतिकताहीन सुश्रीव और विभीषण के पक्षधर अपने इष्टदेव की भी छुटकी लेने से नहीं चूका वह लोक प्रवचकों को कैसे छोड़ सकता था। इस स्पष्टवादिता की उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। विरोधियों ने उन्हें 'धूर्त', अवधूत, रजपूत, जोलहा, पाखंडी, नीच—क्या-क्या नहीं कहा। इतने से ही सतुष्ट न होकर उन्होंने तुलसी को दंड देने की योजना बनाई। वामदेव की पुरी इसी काशी में उन्हें शारीरिक यातना दी गई। किन्तु इन सारे अपमानों का विष वे सहर्ष पीते रहे। बातक की भाँति आराध्य के सारे अत्याचार मौन भाव से सहने में ही वे प्रेम की पुष्टि मानते थे। यह विषम स्थिति उनके अगाध लोकप्रेम की पराकाष्ठा के लिये सघटित हुई थी,

१. ईस सीस विलसत विमल, तुलसी तरल तरंग,  
स्वान सरावण के कहे, लपुता सहै न गग । दोहावली ३८३ ॥
२. अतुलित महिमा वेद की तुलसी किये विचार ।  
जो निम्नत निम्नित भयो, विदित बुद्ध अवतार ॥ दोहावली ४६४ ।
३. पारव प्रगट प्रवचना, सिद्धिद नार्त कलंक ।  
हम लखै हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच ।  
तुलसी असखहिं का लखसि, रामनाम जपु मोच ॥ दोहावली १९ ॥
४. साखी सबदी दोहरा, कहि किहनों उपखान ।  
भगति निरुपहिं भगत कति, निर्वाहि वेद पुरान ॥
५. कोन्हें प्राकृत जन धुनमाना ।  
सिर घुनि गिरा सागि पछिताना ॥ रामचरितमानस-१ ।
७. बंचक भक्त कहाइ राम के, किकर कचन कोह काम ॥
८. तुलसीवान जे देत हैं जल में हाथ उठाइ ।  
प्रतिप्राही जीवें नहीं, वाता भरकहिं षाड ॥ दोहावली ५३३ ॥
९. बचन वेप ते जे बने ते बिगड़ें परिनाम ।  
तुलसी निज ते जे बने बनी बनाई राम ॥ दोहावली-१५४ ।

୨୨୬ :: ବ୍ରହ୍ମବିଦ୍ୟାସମିତ — ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବଦ୍ଗୀତା

ତେଣୁ ପ୍ରକାଶ କରିବା —

ହାତୀର ପଦର ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତୁ, ଏହା କାର୍ଯ୍ୟକୁ ସୁଗମ କରେ ।

ମୁଗାମି ବାଟି ବା ବ୍ୟବହାର, କାର୍ଯ୍ୟର ବ୍ୟବହାର କରନ୍ତୁ ।

ହେଉ ପରେ କହ ଏହି ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବଦ୍ଗୀତାରେ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ, ଶ୍ରୀବତ୍ସର ଶ୍ରୀ  
'ବ୍ରହ୍ମବିଦ୍ୟା' କୁଳର ଶ୍ରୀମଦ୍ଭଗବଦ୍ଗୀତାରେ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ ।

## गोस्वामी तुलसीदास और हरिजन

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भारतीय लोक हृदय में जो सम्मान है, वह कदाचित् ही किसी देश में किसी कवि को प्राप्त हो। गत चार शताब्दियों से उत्तरी भारत की आध्यात्मिक विचारधारा के स्वरूप निर्माण में रामचरित मानस और विनय पत्रिका का विशेष हाथ रहा है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तुलसी साहित्य की अर्चना में भाव पुष्प अर्पित कर कृतार्थ हुआ है।

इधर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक एवं आर्थिक क्रांतियों ने राष्ट्रीय जीवन में एक अजीब उथल-पुथल पैदा कर दी है। राजनीतिक क्षेत्र में पनपे हुए कुछ विदेशी 'वादों' ने परंपरागत सामाजिक मान्यताओं को ध्वस्त करने के साथ ही हमारे साहित्यिक दृष्टिकोण में भी आमूल परिवर्तन किया है। तुलसी का प्रतिभा-दीप इस प्रबल झझावात में भी अलड़ बसता रहा। बदले हुए साहित्यिक वातावरण में भी उनकी लोकभावना तथा काव्यधारा के अतल गाम्भीर्य की प्रशंसा हुई। राजनीति के क्षेत्र में युगपुरुष गांधी ने उनके द्वारा चित्रित रामराज्य के आदर्श को अपनाया और जीवमान के शोक-सताप को दूर करने वाली अकेली महीपथि राम नाम स्वीकार किया। इस धर्मनिरपेक्ष राज्य में रामभक्त तुलसी की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता कुछ सकुचित राजनीतिक दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों को खली। फलतः तुलसी और राम की जन्मभूमि होने का गौरव रखने वाले प्रदेश की विधान सभा में रामचरित मानस के कुछ आपत्तिजनक कहे जाने वाले अंशों को काट कर उक्त भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सदस्य ने सतोष की सास ली। हमारी यह धारणा है कि ऐसे कृत्यों के मूल में राजनीतिक स्वार्थों के साथ ही कुछ भावियाँ भी होती हैं जो परिस्थिति एवं जीवन दर्शन की अनभिज्ञता के कारण अव्यवस्थित मस्तिष्क में घर कर लेती हैं और अनर्थ चिंतन से सिंचित होती रहती हैं। गोस्वामी तुलसीदास पर हरिजन द्वेष का जो कलक मड़ा जाता है, वह ऐसी ही बुद्धि की उपज है।

हरिजनों के प्रति तुलसी के भाव क्या थे? ऊँच-नीच की उनकी परिभाषा

क्या थी ? और इसके निर्णय का उाका मानदंड क्या था ? उस महाकवि ने अपनी कृतिथो मे स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं । स्वानुभूतिनिष्ठाक रचनाथो— विनय-यत्रिका, वैराग्य सदीपनी और दोहावली मे एताद्वयक प्रचुर सामग्री है । रामचरित मानस मे भी ऐसे प्रसंगो को बमी नहीं है, जिनमे उनके उदार सामा-जिक दृष्टिकोण का पता चलता है ।

मुनसो साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उनकी समस्त सामाजिक मान्यनाएँ भक्ति सिद्धांत से संचालित होती हैं । उनके सारे नात राम के संक्षप से निर्णीत होते हैं । देहाभिमान शून्य साधक का कोई शरीर सबधी नहीं होता । आत्मसबधी हो उसके सच्चे नातेदार हैं—

नातो सबै राम के मनियत,  
गुह्य सुसेध्य जहाँ लीं ।  
अजन कहा आखि जो पूटे,  
बहुतक वही कहा लीं ।  
सोई है सब भाँति परमहित,  
पूज्य प्राण ते प्यारो ।  
जासो होइ सनेह रामपद,  
एतो भतो हमारो ।

उनके दृष्टदेव का भी यही सिद्धांत है । नीच से नीच जाति का भक्त उनकी दृष्टि मे सभ्रान्त कुलाभिमानो अभक्त से अच्छा है । अतएव वही उनका स्वजन है—

कह रघुपति मुनु भागिनि बाता ।  
मारों एक भगति कर नाता ॥  
जाति पाँति कुल धर्म बडाई ।  
धन बल परिजन गुन बतुराई ॥  
भगतिहीन नर सोहइ कैसा ।  
बिनु बल बारिद देखिय जैसा ॥

स्वपच सधर खस जमन बड, पावर कोल किरात ।

राम कहत पावन परम, होत भुवन विस्पात ॥

गोस्वामी जी ने राममत्तो की गौरवपूर्ण परम्परा से इस मत के समर्पन मे अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं—

कीन धौ सोमजागी अजामिल अधम,  
कौन गजराज धौ बाजपेयी ।

गज धौं कौन दिखित जाके सुमिरत,  
ले सुनाम बाहन तजि घाये ॥

पतिपावन ब्राजपैयियों और दीक्षितों से पशुयोनि में उत्पन्न गज की श्रेष्ठता, प्रतिपादित करने का रहस्य तुलसी के भक्ति सिद्धान्त का भर्म समझने से ही छुलता है। गोस्वामी जी के तयाकथित 'ब्राह्मणवाद' के विरुद्ध नारा बुलन्द करने वाले चाहे तो अपना दृष्टिकोण उनकी निम्नांकित पक्तियों के अंजन से दूर कर सकते हैं—

तुलसी भगत सुपच भलो  
जपे रैन दिन राम ।  
ऊँचो कुल केहि काम को  
जहाँ न हरि को नाम ॥  
जदपि साधु सबही विधि हीना ।  
तदपि सम ताके न बुलीना ॥  
बह दिन रैन नाम उच्चरे ।  
यह नित मान अग्नि में जरे ॥

इतना ही नहीं, नीच कहे जाने वाले वर्ग को ही तुलसी ने समाज का सद्वृत्ति सपन्न पोषक अंग माना है। उनकी दृष्टि में उच्च वर्ग अनेकविधा प्रवृत्तियों का आश्रय तथा प्रसारक होने से अपेक्षाकृत हेय है—

अति ऊँचे भूधरन पर  
मुजगन को अम्पान ।  
तुलसी अति नीचे मुखद  
अन्न ऊल औ पान ॥

सारांश यह कि वैष्णव धर्म की परंपरागत मान्यता के अनुसार तुलसी मत में जिस किसी शरीर से रामभक्ति की साधना हो, वही पूज्य है। जातिभेद की भावना का इस क्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। सेवाभाव के लिए तो कुलाभिमान शून्य निम्न वर्ग का ही जीवन स्पृहणीय है—

जेहि शरीर रति राम सो  
सोइ आदरें मुजान ।  
रुद्र देह तजि नेह बस  
बानर भे हनुमान ।

गोस्वामी जी ने अपनी इस जीवनव्यापिनी अनुभूति को सिद्धांत क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा। उनके प्रसिद्ध जीवनी लेखक, शिष्य और सहचर बाबा



वेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह निश्चित होता है कि उन्होंने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोमाईं चरित' का 'सुपच प्रसंग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सटीक में इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी में अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन गंगा स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक भगी मिला। वह साऊ का साहू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हें देख कर मार्ग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह बात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागतुष व्यक्ति हूँ इसलिए धीचरणों को पहचान नहीं सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के बानों में जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पड़ा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपच को अपने हृदय से लगा लिया। वेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्गद बानी शिथिल तन  
व्याकुल प्रेम अधीर ।  
पूछत आव न बचन तेहि  
पुनि पुनि पुलक शरीर ॥  
पुनि पुनि पुलक सरीर  
धीर निधि धीरज त्याग्यो ।  
उत्कण्ठित चप नीर  
नाथ पद प्रेम नुराग्यो ॥  
प्रेमहि रह्यो समाह बिसरि  
जनु गो आपन पद ।  
सुपच हिए गरि भेटि सजल  
ह्वं पुनि पुनि गद्गद ॥  
तेहि मिलि कठ लग्यो भले ।  
पुनि हाथ गहे सग ले जो चले ॥

स्वपच से ही उन्हें ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोड़कर जीविका की खोज में काशी आना पड़ा है। गोस्वामी जीने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुनः अयोध्या भेज दिया। वह

प्रसन्न हो अपनी जन्मभूमि को लौट आया ।

गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर येनीमाधवदास कहते हैं—

ऐसे प्रेम की बलि जाऊँ ।

भये विकल विदेह सुनतहि

गौव ही को नाऊँ ।

लाज घरम उपासना

नित कर्म ही दियो बाउ ।

ह्वै सिधिल सोचन सजस

अति प्रेम तन पुसकाउ ।

करि पुनीत असनान ठाकुर

पूजिये को भाउ ।

स्यागि सो अनुराग पूजे

सुपच ही के पाउँ ॥

‘दास’ कल्मष प्रसित जोई

ते बतहुँ नाहि ठाउँ ।

याते अब निज सरल दीजे

चरन सहज सुभाउ ॥

रामपूजा को छोड़कर ‘सुपच’ के चरणों की वन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी वे ही कह सकते हैं जिनके लोकेपणाग्रस्त मानस में राम और तुलसी एक रुद्धिग्रस्त सामंतवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं । भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चित्र उनकी भाँखों से ओझल ही रहेगा ।

रामचरित मानस में, श्रीसंप्रदाय की वर्णाश्रम संबंधी मात्प्यताओं से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उसके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रवृत्त शैली भी काफी उत्तरदायी है । इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अन्य रामायणों, पुराणों तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् संदर्भ में उद्धृत हैं । फिर संवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है । खेद की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रवर्तक महापुरुष की ‘महिमा मुगी’ अपने वदे जाने वाले लोगों के ही वचन-वाणों का शिकार बन रही है ।

## तुलसी का लोकानुभव

गोस्वामी तुलसीदास जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके 'रामचरित-मानस' और 'विनयपत्रिका' शताब्दियों से उत्तरी भारत के लोकजीवन के मुख्य आध्यात्मिक संचालक रहे हैं। साक्षर-निरक्षर, धनी-निर्धन, नागर-गाँवदार आदि समाज के विभिन्न वर्गों तथा मानसिक स्तरों के लोगों द्वारा उनकी कृतियाँ वेदों की भाँति पूजी जाती रही हैं। दुःख में उनकी पक्तियों का सहारा लेकर वे हृदय का भार हल्का करते हैं और सुख में उन्हें बुहरा कर त्रिगुणित उत्साह के साथ कर्मक्षेत्र में उतरने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तुलसी व राम के इस अद्भुत लोकाकर्षण का रहस्य क्या है? उसमें ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण सहृदय मान उनके 'मानस' में अपने मन का प्रतिबिम्ब देखते हैं और उनकी उक्तियों में अपनी हृत्तंत्री की प्रतिध्वनि सुनते हैं? मेरी समझ में इस सारी सफलता के मूल में गोस्वामी जी की लोकजीवन के प्रति गहरी संवेदना और उनका प्रगाढ़ लोकानुभव है। लोकजीवन के सूक्ष्मतम स्तरों तक बैठने और लोकप्रवृत्ति के विभिन्न रूपों के अन्वीक्षण की उनकी एकता अद्भुत है। उनके व्यक्तित्व में वे तब किन मन स्थितियों तथा स्रोतों से संपादित, उनकी कृतियों में किस रूप में अभिव्यक्त और लोकभावना को किस सीमा तक परिष्कृत करने में सफल हुए हैं, यहाँ हम इसी पर विचार करेंगे।

तुलसी का आधिर्भाव प्रारम्भिक काल हुमायूँ के समय में हुआ। उनके जीवन का अधिकांश अकबर के शासन काल में बीता, सं० १६६२ में अकबर के दिवंगत होने पर वे १८ वर्ष तक जहाँगीर की हुकूमत में जीवित रहे। इस प्रकार मुगल सत्ता के उत्कृष्टतम काल की राज्यावस्था का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का सुयोग मिला था। अपनी रचनाओं में उन्होंने यत्र तत्र इसके बड़े ही मार्मिक विवरण दिये हैं।

एकनव्य मुगल सम्राट का शासन सैन्यबल पर आधारित था। प्रजा को अकारण दण्ड देकर आतंकित रखना उनकी नीति का मुख्य अंग था। उसने अपनी सत्ता को दृढ़ करने के लिए परम्परागत राज्यवशों को पदच्युत करके उनके

स्थान पर संस्कार तथा व्यक्तित्वहीन राजे नियुक्त कर रहे थे—

गोद गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल ॥

साम न दाम न भेद कछु, केवल दंड कराल ॥<sup>१</sup>

अधीनस्थ अमीर-उमरा तथा राजकर्मचारी उसकी इस नीति को बड़ी कठोरता से कार्यान्वित करते थे—

प्रभु ते प्रभु जन दुखद सखि, प्रजहि सभारै राउ ।

करते होत वृपान को, कठिन घोर धन धाउ ॥<sup>२</sup>

रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए उनके मानस नेत्रों के सामने समकालीन मुगल शासन बरबस आ जाता था—

बरनि न जाह अनीसि, घोर निसाचर जो करहि ।

हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहि कौन मिति ॥<sup>३</sup>

शासन तन्त्र के कर्मचारों के आचरण का वर्णन करते हुए यह भाव अधिक स्पष्ट हो गया है—

अस भ्रष्ट अचारा आ संसारा धर्म सुनिय नहि काना ।

तेहि बहु विधि त्रासह देस निकासह जो कह वेद पुराना ॥

बाढे बहु खल चोर जुआरा । जे सपट परधन परवारा ।

मानहि मानु पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा ॥

जिनके अस आचरण मर्यादा । ते निसिचर जानेहु सब अपनी ॥

भारतीय सैन्य नीति के बरूद के अथक प्रयोक्ता अन्यायी मुगलतन्त्र ने तत्कालीन जनजीवन में कितनी विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी थी इसका आभास तुलसी की निम्नांकित पक्तियों से मिल सकता है—

काल तोपची तुपच महि, दारु अनय कराल ।

पाप पत्नीता कठिन गुद गोला पुहुमी पाल ॥

हिंसा के साथ धन और प्रवचना का आश्रय लेकर मुगल शासन कभी हिन्दू राजाओं को आपस में ही लड़ाकर और कभी कपटपूर्ण भेद व्यवहार करके उन्हें आत्मसात् कर लेता था—

१. दोहावली, छंद ५५६ ।

२. वही, छंद ५०१ ।

३. रामचरितमानस, १११८३ ।

४. वही, १११८३, १८४१, २, ३ ।

५. दोहावली ५११ ।

राजसमाज साज कोटि बटु  
कलमित कलुष कुचाल नई है ।  
साति सत्य सुम रीति गई घटि  
बढी कुरीति कपट फलई है ॥१

शासको का आन्तरिक जीवन वैभव-विलासपूर्ण था । मुरा सुन्दरी के अक में खरटि भरते हुए इन्हे प्रजाहित को चिन्ता नहीं थी, इससे आये दिन दुर्जन पुरस्कृत और सज्जन दंडित होने रहते थे—

बहुरि सक्र सम बिनबौं तेही, सतत मुरानीक प्रिय जेही ॥२

× × ×  
कलि कुचालि मुमगति हरनि, सरलै दढे भक्र ।  
तुलसी यह निहमय भई, बाढी सेत न बक्र ॥३

इस प्रकार हिन्दुओं को सभी समव उपायों से प्रताडित करके ये उन्हें दास के रूप में रखना चाहते थे । इस स्वप्न को सार्थक बनाने में ही उनकी सारी शक्ति लगी रहती थी । रावण की निम्नांकित उक्ति में तत्कालीन शासको की ही मनोभावना व्यक्त होती प्रतीत होती है—

छुपा धाम वामहीन रिपु, सहजहिं मिसिहहिं आइ ।  
तब मारिहो कि राखिहौं, भली भाति अपनाइ ॥४

निरकुश राजतन्त्र अपनी ऐहिक वासनाओं की पूर्ति तथा हिंसारमक नीति को कार्यान्वित करने के लिए अनेक अवाधनीय उपायों से घन एवत्र करता था—

मारग मारि महीसुर, मारि कुमारग कोटिक के घन लीयो ॥५

इस भौतिक आपत्ति के साथ ही दैवी प्रकोप से पडने वाले अकालों ने जनता की रोड ही तोड दी—

कलि बारहिं बार दुकाल परै । बिन अन्न दुखी सब लोग मरै ।

अतुदिक् बढती हुई बेकारी और बेरोजगारी में बिलसती हुई जनता महात्रास की चपेट में आकर जीवन की आशा ही खो बैठी थी—

- 
१. बिनपपत्रिका, छव १३६ ।
  २. रामचरितमानस, १।३।१० ।
  ३. दोहावली, छंद २३७ ।
  ४. रामचरितमानस, १।१८१ ।
  ५. कवितावली, ७।१७६ ।

खेतो न किसान को भिखारी को न भीख बलि,  
 बनिफ को बनिज न चाकर को चाकरी ।  
 जीविका विहीन लोग सीधमान सोचबस,  
 कहैं एक एकन सौं कहाँ जाई का करी ॥  
 दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबधु,  
 दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी ॥<sup>१</sup>

नीचे दारिद्र्य, ऊपर दशानन का क्रूर शासन, यही चक्की के दो पाट थे, जिनके भीतर पड़े हुए असंख्य मानव कफाल दशसतापूर्वक पिसे जा रहे थे। उनका धार्त क्रन्दन लोककवि तुलसी की वाणी में कैसे मुखरित न होता ?

भाप बीती

समकालीन लोकजीवन तथा लोक स्वभाव के अध्ययन में तुलसी की जीवन-यात्रा की प्रारम्भिक परिस्थितियाँ बहुत सहायक हुईं। वास्तविकता से ही आश्रयहीन हो जाने के कारण दर-दर की ठोकर खाते हुए उन्हें समाज को अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। अनाथ बालकों के प्रति बाल-घञ्चे वाले जनसामान्य के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के वे शिकार हुए थे। इसकी गूँज उनकी कृतियों में स्थान-स्थान पर सुनाई पड़ती है—

—धर धर भगि दूक पुनि भूपति पूजे पाय<sup>२</sup>

—बारे ते ललात बिललात द्वारे-द्वारे दीन,  
 जानत हो चारि फल चारि ही जनक को ।<sup>३</sup>

द्वार-द्वार दीनता कही पाहि पाहि बार बार, परी न छार मुंह बायो ।<sup>४</sup>

महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलन आगे को पेट खलायो ॥

—जाति के मुजाति के कुजाति के पेटागि बस

खाये दूक सबके विदित बात दुनी सो ।<sup>५</sup>

—घाटस रह्यो स्वान पातरि ज्यो कबहुँ ने पेट भर्यो ।<sup>६</sup>

फिर्यो ललात बिनु नाम उदरलगि, दुखहु दुखित मोहि हेरे ।<sup>७</sup>

१. कवितावली, ७।६७ ।

२. बोहावली, १०६ ।

३. कवितावली, ७।७३ ।

४. विनयपत्रिका, २७५।१ ।

५. कवितावली, ७।७२ ।

६. विनयपत्रिका, छंद २२६।३ ।

७. वही, २२७।३ ।

इस सर्वप्राप्ती विपन्नता से तुलसी का उद्धार गुरुदेव के श्रीकरो द्वारा हुआ। उन्होंने ही इस अनाथ बालक को शिष्य रूप में स्वीकार कर अपने साथ लेकर छेत में ले जाकर सर्वप्रथम रामकथा सुनाई। सत्संग में इन्हे साधुसमाज की रीति नीति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का सुयोग प्रदान किया—

“पर्यो लोक रीति में पुनीत प्रीत रामराज

भोह बस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ।<sup>१</sup>

यौवनावस्था में ही गृहस्थाश्रम त्याग कर इन्हें पुनः वैराग्य धारण करना पड़ा और फिर आजीवन यही वृत्ति रही। इन दोनों स्थितियों में जीवनयापन करते हुए इन्हें तत्कालीन लोकजीवन के विविध पक्षों के मूढमान्यपण का अवसर प्राप्त हुआ। साधुवेश में इन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशों का पर्यटन किया—

‘अगणि गिरि कानन फिर्यो बिन अगि जर्यो हौं ।

पर्यटन में विधर्मिया द्वारा भ्रष्ट किये जात हुए हिन्दु तीर्थों और मन्दिरों की दयनीय स्थिति को देखकर इन्हे अपार कष्ट हुआ—

“तुलसी देवल देव के, साथे साक्ष करोरि ।

काग बिचारे हगि भरे, महिमा भई कि चोरि ।<sup>२</sup>

यह तो हुई विधर्मियों की बात, स्वधर्मियों का आचरण और भी सज्जन-जनक था। काशी में रहते हुए इनकी बढ़ती चौकोर पड़ितों के विरोध का कारण बन गई, वे द्वेषामि से जलने लगे। इन लोगों ने मौखिक विरोध करने तक ही सीमित न रहकर इन्हें शारीरिक यातना देने तक की धुष्टता की ओर इनके सवध में नाता प्रचार के प्रवाद फैलाये—

गँव बसत यामदेव मैं बज्रहैं न निहोरे ।

आधिभौतिक बाधा भई से बिबर तोरे ।

धेगि बोलि बरजिए करतूति बठोर ।

तुमगी दनि रूँध्यो बहैं सठमागि निहोरे ॥<sup>३</sup>

छापु जाने महामाधु लख जाने महामय

बानी झूठ साची कोटि उल्ल हूब है ।<sup>४</sup>

१. हनुमान चालीस-४० ।

२. विज्ञानप्रज्ञा २६६।२ ।

३. दोहावली, ३८४ ।

४. विज्ञानप्रज्ञा ८।३-४ ।

५. बिनाशली, ७।१०८ ।

इन क्षत्रावातो का धैर्यपूर्यक सामना करते हुए इनकी साहित्य साधना का दीपक अमर प्रकाश बिखेरता रहा—इस विश्वास कि अन्यकार का अन्ततः नाश होगा और विरोधियों को अपनी करनी का फल मिलेगा—

“कासी के कटक जेत भये, ते सबे फल पाइहैं आपनो कीयो ।

आजु की काल्हि परीं कि नरों, सब जाहिगे चाटि दिवारी को दीयो ।”

इस प्रकार भूमिष्ठ होने के क्षण से लेकर अन्तिम काल तक विपरीत परिस्थितियों तथा समाजविरोधी तत्वों से संघर्ष करते हुए उन्होंने लोकजीवन का यथार्थ रूप देखा था । समातीय और विजातीय, स्वजन और परजन—गँवार और नागर सबके स्वार्थपूर्ण आचरण से ऊबकर एक स्थान पर वे कहते हैं—

सह्याली काधो गिलाहि, पुरजन पाक प्रवीन ।

काल दोष केहि विधि करहि, तुलसी खग मृग मीन ॥<sup>१</sup>

गोस्वामी जी बीतराग महापुरुष थे । वे सासारिक मायाजाल से दूर रहकर उदासीन भाव से कालयापन करते थे । उनका स्वयं कथन है—

भागीरथी जलपान करौं अब नाम राम को सेत निते हौं ।

मोको न लेनो न देनो कछू कलि भूलि न रावरी ओर जितैहीं ॥<sup>२</sup>

इतने पर भी समाजकल्याण के नामधारी ठेकेदार उन्हें तग करते थे, उन पर तरह-तरह की फतियाँ कसते थे, जिससे कभी-कभी वे तिलमिला उठते थे । आलोचकों की अभ्यर्थना में वे शब्द उनके मुँह से इन्हीं परिस्थितियों में निकले होंगे—

“धूत कहै अबधूत कहै रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ ।

काहू की बेटी सो बेटा न भ्याहव काहू की जाति रिगारि न सोऊ ॥<sup>३</sup>

अपनी तरह उन्होंने अग्य अनेक मुकुटियों की महिमामुग्धी खलो के वाक्य-बाणों से बिड होती हुई देखी थी, अतः उनके द्वारा निरूपित लोकजीवन में लोकस्वभाव की यह विशेषता छूटने नहीं पाई ।

छात्तिक दृष्टि से गोस्वामीजी ‘सीयराम भय सब जग जानी’ के समर्थक थे, समस्त चराचर जगत् को रामलीला में अन्तर्हित तथा समस्त जागृति प्रपंचों में रामलीला का ही दर्शन करते थे किन्तु लोकव्यवहार में उसके सत् तथा असत् दो पक्षों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए ‘राम’ और ‘रावण’ को उनका प्रतीक

१. कवितावली, ७।१७६ ।

२. बोहावली, ४०४ ।

३-४ कवितावली, ७।१०२, ७।१०६ ।



मानते रहे। सृष्टिरचना में इनका अनिवार्य एवं युगवत् अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक सच्चे लोकसंग्रही महापुरुष की भाँति वे लोकमर्यादा की रक्षा में सतत सावधान दिखाई देते हैं। उनका मत है—

जह चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।

सत हम गुन गहहि पय, परिहरि बारि विकार ॥<sup>१</sup>

सुधा सुरा सम साधु असाधु । जननि एक जग जलधि अगाधु ॥<sup>२</sup>

‘जहचेतन’ का ज्ञान तुलसी ने भले ही शास्त्राध्ययन से प्राप्त किया हो किन्तु ‘साधु-असाधु’ का परिचय उन्हें व्यापक लोक-पर्यवेक्षण से मिला था। शास्त्रों में उनकी स्वभावगत विशिष्टताओं का जो विवरण पाया जाता है उसकी पुष्टि उन्होंने व्यक्त सत्कार को खुली आँखों से देखकर और उसके शीत उष्ण झकोरों का प्रत्यक्ष अनुभव करके की थी। उनकी कृतियों में समकालीन जनजीवन के जो सटीक तथा सजीव चित्र मिलते हैं, वे इसी के परिणाम हैं। इन्होंने कहीं-कहीं प्राचीन कविों तथा शास्त्राचार्यों की उक्तियाँ सामान्य हेर-केर के साथ रख दी हैं। ऐसे स्थलों को देखकर यह आशंका नहीं होनी चाहिए कि वे अनुभव तो पूर्ण पुरुषों के हैं तुलसी के अपने नहीं। हमारी धारणा है कि ऐसे प्रसंगों में तुलसी के अनुभव पूर्ववर्ती महापुरुषों के अनुभवों से अभिन्न हैं।

इसके विपरीत इनकी रचनाओं में ऐसे भी प्रसंग आये हैं जहाँ इनके अपने अनुभव परम्परागत आदर्श से विलक्षण हैं। गोस्वामी जी के ऐसे कुछ अनुभव समसामयिक समाज में व्याप्त विषमता, अभाव, पीड़ा तथा प्रतारणा से सम्बद्ध हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक तथा आदर्शवादी भक्त होते हुए भी वे जीवन के कठोर यथार्थ की ओर हमारा ध्यान बराबर आकर्षित करते रहते हैं—

सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल ।

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुदृढ मराल ॥<sup>३</sup>

आज की तरह उनके समय में भी जनजीवन का मानसरोवर लोलुप तथा झकालु कौओं, अन्धकारधर्मा तथा कपटाचारी बगुलों का अड्डा बन गया था। जो एकाध हँस बच रहे थे वे लुक-छिपकर एकान्त साये हुए जीवनयापन कर रहे थे। सारा वातावरण विपात हो गया था। ऐसे युग में सज्जनों का तिरस्कार और दुष्टों का अभिनन्दन होना स्वाभाविक था—

१. रामचरितमानस, १।६।

२. वही, १।५-६।

३. दोहावली, ३४७।

सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हलसति खलई है ।<sup>१</sup>

जिस स्थिति में सामारिक क्षमेला से दूर रहने वाले तुलसी ऐसे वीतराग सन्त के हृदय के ये उद्योग प्रकट हुए थे उस समय जनसामान्य की क्या दशा रही होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रगाढ़ अनुभवपूर्ण उक्तियाँ उनकी कृतियों में भरी पड़ी हैं, कहीं रामकथा और रामभक्ति निरूपण के प्रसंग में और कहीं स्वतन्त्र रूप में इनका प्रकाशन हुआ है। इनकी विवेचना तत्कालीन वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के परिवेश में की जायेगी।

### वैयक्तिक जीवन

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तीन तत्वों—शरीर, मन अथवा बुद्धि तथा आत्मा की सहति से होता है। आदर्श जीवन में इनका आनुपातिक विकास आवश्यक है। व्यक्ति समाज का भूलाधार है। उसके विकास पर ही समाज का उत्थान निर्भर होता है। मोक्षामी जी इसकी महत्ता से अवगत थे। इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से मनुष्य जीवन को क्षणभंगुर तथा मनुष्य के कार्यक्षेत्र ससार को मिथ्या बताया है—

तुलसिदास सब बिधि प्रपच जग जबपि झूठ श्रुति गावै ।<sup>२</sup>

झूठी है झूठी है झूठी सत कहत जे अत सहा है ।<sup>३</sup>

किन्तु व्यावहारिक रूप में उन्होंने उसकी उपादेयता एवं चिरन्तनता स्वीकार की है—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार बिटप नयामहे ।<sup>४</sup>

आराध्य की लीलाभूमि भारत में जन्म लेने का उन्हें गर्व था—सत्कुल और स्वस्थ शरीर बड़े भाग्य से मिलता है, यह उनकी धारणा थी—

भलि भारत शुभि भले कुल जन्म समाज सरीर भलो सहि के ।<sup>५</sup>

मनुष्य कर्मनुसार स्वर्ग अथवा नरक में जाता है—साधन द्वारा मोक्ष की

१. विनयपत्रिका, १३१।३।

२. विनयपत्रिका, छव १२१।३।

३. कवितावली ७।३६।

४. रामचरित मानस ७।३६

५. कवितावली, ७।३३।

भी प्राप्ति इसी शरीर से होती है। जो इसे प्राप्त कर परलोक नहीं सुधारता वह अभागा है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग जिसेनो। ज्ञान विराग भगति मुक्त देनो ॥

साधनधाम मोक्ष के द्वारा। जो न पाइ परलोक सँवारा ॥

सो परंत दुख पावई, सिर धुनि-धुनि पछिजाइ।

कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥<sup>१</sup>

विषयासक्ति मनुष्य के आत्मोत्थान में सर्वाधिक बाधक है। माया की शक्तिशाली सेना से पराजित जीव पराधीन होकर अपना स्वरूप भूल जाता है और नाना ससृति बलेश सृष्टा है—

व्यापि रहेउ ससार महुँ, माया कटक प्रचंड।

सेनापति कामादि भट, द्वेप कपट पासण्ड ॥<sup>२</sup>

इनमें काम और दुष्टा सबसे प्रबल है। ये मनुष्य को अंधा कर देते हैं—

सुलसी यहि जग आइके, कौन भयो समरत्थ।

कंचन और मन पर कौन पसारयो हृत्य ॥<sup>३</sup>

पेट की माया अपरम्पार है। इसे ही भरने के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उद्यम और निकृष्ट कर्म में प्रवृत्त होता है—

किससी किसान कुल, बनिक भिखारो भौं

चाकर, चपल भट, चोर, चार, चेट की।

पेट को पढत, गुन गढ़त चढ़त गिरि

अटत महज वन अहन असेट की।

ऊँचे नीचे करम धरम अघरम करि

पेट ही को पचत बेंचत घेटा घेट की।

सुलसी सुझाइ एक राम धनस्याम ही ते,

आगि बड़वागि ते बढी है आगि पेट की ॥<sup>४</sup>

इसका अत्यन्ताभाव असम्भव है, अतः परमार्थ साधक को उदासीकरण द्वारा विषयोन्मुखी इन्द्रियो को आराध्य की अर्चना में सलग्न करना चाहिए—

१. रामचरितमानस ७।१२०-१०।

२. यही, ७।७१-क।

३. कवितायली, ७।६६।

४. यही, ७।६६।

कामिहि नारि पियारि जिमि, सोमिहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥<sup>१</sup>

श्रवण कथा, मुख नाम, हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसर ।

नमनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग रूप भूप सीता बर ॥<sup>२</sup>

इस दृष्टि से त्रिकाद साधन में उपासना अथवा भक्ति का अवलम्बन ही सुलभ तथा श्रेयस्कर है । रामनाम का आश्रय लेकर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वह परमात्मा सगुण अथवा निर्गुण—किसी भी रूप की आराधना में प्रवृत्त हो सकता है—

कलि नाम काम तब राम को ॥

दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष धोर धनधाम को ॥

नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता बाम को ॥<sup>३</sup>

“अगुन सगुन विच नाम सुखाखी ।

उभय प्रबोचक चतुर दुभापी ॥”

भक्ति की प्राप्ति के लिए दो तत्त्व अनिवार्य हैं—श्रद्धा और विश्वास, उच्च शिक्षा, ज्ञान, अथवा बौद्धिक विकास नहीं । लोकजीवन में इसका प्रत्यक्ष रूप स्त्रियों द्वारा प्रतीकृतियों पर की गई भीति पूजा में देखा जा सकता है—

अपनो ऐपन निजहृषा, तिय पूर्णहि निज भीति ।

फले सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥<sup>४</sup>

साधना के क्षेत्र में भी अधिकारी साधको का यह अनुभव है कि इन दोनों तत्त्वों के अभाव में सिद्ध महापुरुष भी अन्तस्थ ईश्वर का दर्शन नहीं कर पाते ।

भवानीशकरी बन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणी ।

याम्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥<sup>५</sup>

सफल वैयक्तिक जीवन के समय और सरलता, कष्ट सहिष्णुता, परोपकार, परदुःखकातरता, आदि वृत्तियों से प्रेरित कर्मों का महत्त्व निर्विवाद है । इससे आत्मिक शक्ति का विवास होता है । इनमें सुसज्जित सदाचारी एवं आस्तिक

१. रामचरितमानस, ७।१३० ।

२. विनयपत्रिका, छंद २०५ ।

३. यही, छं० १५६ ।

४. रामचरितमानस १।२१।८ ।

५. दोहावली, छं० ४५४ ।

६. रामचरितमानस, भगवत्साधरण (वाल्मीकीय) श्लोक २ ।

व्यक्ति के द्वारा ही पाशविक वृत्तियों का नियन्त्रण संभव है। ऐसा एक व्यक्ति अपने आत्मबल से बड़ी से बड़ी भौतिक शक्ति को पराजित कर सकता है।

महा अजय ससार-रिपु जीति सकइ सोइ वीर।

आके असरय होइ दृढ मुनहु सखा मति धीर ॥<sup>१</sup>

इन प्रकार उत्कर्ष लाभ कर लेने पर भी समावित व्यक्ति को स्वार्थी सिद्धान्तहीन लोगो द्वारा की गई प्रशंसा तथा दिये गये सम्मान से सदैव दूर रहना चाहिए, अन्यथा ये उसके द्वारा अर्जित साधन-संपत्ति को क्षण भर में नष्ट-धष्ट कर डालेंगे—

तुलसी भेदी की घँसनि, जब जनता सनमान।

उपजत ही अभिमान भो, खोवत भूढ़ अपान ॥<sup>२</sup>

### पारिवारिक जीवन

अश्वस्वरूप जीव का सत्त्वदृष्टि से एकमात्र सम्बन्धी अशी अथवा बह्म है। परन्तु शरीर धारण करने के पश्चात् लोकजीवन में उसके अनेक सम्बन्धी हो जाते हैं। ससार मात्र में उसे इनके प्रति अपने कर्तव्य निभाने पड़ते हैं। तुलसी ने लोकजीवन की सफलता के लिए इन कर्तव्यों का पालन आवश्यक बताया है किन्तु यह कर्तव्यभावना जब आसक्ति अथवा मोह का रूप धारण कर लेती है तब कौटुम्बिक सम्बन्ध आत्मविकास में बाधक ही नहीं हो जाते—रागद्वेषमय बन कर नारकीय दृश्य उपस्थित करते हैं और यमपुर का द्वार खोल देते हैं—

—सुत बनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह इतहीं ते।<sup>३</sup>

—सुत विठ दार भवन ममता निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी।

—आके प्रिय ॥ राम बैदेही

तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।

.....

—अजन कहाँ आँखि जेहि फूँटे बहुतक कहाँ कहाँ ली ॥<sup>४</sup>

परिवार में सम्बन्ध के आधार पर कोई छोटा होता है कोई बड़ा। सबके

१. रामचरितमानस, ६।८०-क।

२. बोहायसी, ४६५।

३. विनयपत्रिका १६८।

४. वही, पं० १४०।

५. वही, पं० १७४।

एक दूसरे से पृथक् सम्बन्धजनित कर्तव्य और अधिकार होते हैं। तुलसी ने समाज में लोगों को उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्ति में सजग और कर्तव्य पालन में उसी अनुपात से शिक्षित होते हुए देखा था—

सास ससुर गुरु मातु प्रभु, भयो चहँ सब कोय ।

होना दूजी ओर को सुजन सराहिय सोय ॥<sup>१</sup>

उनके समकालीन पारिवारिक जीवन में कितनी विश्रुतलता उत्पन्न हो गई थी इसका निदर्शन रामचरितमानस के उत्तर काण्ड के कलियुग वर्णन प्रसंग में किया गया है। इससे कौटुम्बिक सम्बन्धों के पारस्परिक व्यवहार-विषयक उनके सूक्ष्म निरीक्षण का पता चलता है—

पिता-पुत्र : सुत मानहि मातु पिता तबसौ ।

अबलानन दोख नही जब सौ ।

ससुरारि पियारि लगी जबते ।

रिपु रूप कुटुम्ब मये तबते ॥

पुरुष : कुलवति निकारहि नारि सती ।

घर मानहि चेरि निवेरि गती ॥<sup>२</sup>

औ : गुन मदिर सुन्दर पति त्यागी ।

भजहि नारि परपुरुष अभायी ॥<sup>३</sup>

इस विश्रुतलता का मुख्य कारण या पारिवारिक जीवन के मूलधार— सहानुभूति, प्रेम, त्याग आदि वृत्तियों का क्रमशः ह्रास और विधर्मी सत्कृति के प्रभाव से विलासिता एवं तज्जन्य चरित्रहीनता का विकास ।

## सामाजिक जीवन

तुलसी ने समसामयिक समाज की पतनोन्मुखी स्थिति का हृदयद्रावक दृश्य अनुभव नेत्रों से ही नहीं स्थूल वस्तुओं से भी देखा था। हिन्दू जीवन के मेरुदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था का ह्रास हो चला था। लोक-वेद-भर्यादा को तिलाजलि देकर लोग स्वेच्छाचारी हो रहे थे—

“आयम धरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है ।

प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने-अपने रंग रई है ॥<sup>४</sup>

१. बोहावसो, छं० ३६१ ।

२. रामचरितमानस, ७।१०१-४, ५, ३ ।

३. यही, ७।६६ क, ४ ।

४. विनयपत्रिका, छं०

समाज के पयप्रदर्शक ब्राह्मण-दात्रिय, सभी, अपने उच्च आदर्श से गिर चुके थे—

“विप्र निरच्छर जोलुप कामी ।

निराचार सठ धूपती स्वामी ॥<sup>१</sup>

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन ।

कोर नहि मान नियम अनुसासन ॥

तथाकथित निम्न वर्ण की जायुति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

“बादहि सूद द्विजन सन, हम तुमसे कछु घाटि ।

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आलि देखावहि डांठि ॥<sup>२</sup>

१६वीं शती के भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप निर्गुण सम्प्रदाय में परिगणित तथा पिछड़ी जातियों के सन्तों का प्राधान्य हो चला था । ये गुरु रूप में ब्राह्मणों द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तेलि कुम्हार । स्वपथ किरात कोल कलबारा ।

ते विप्रन सन पाँव पुजावहि, उभय लोक निज हाथ नसावहि ॥<sup>३</sup>

इस गिरे हुए समाज में आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल कराल किये मनुजा ।

नहि मानत कोर अनुजा तनुजा ॥<sup>४</sup>

+ + +

मारग सोइ जा कहँ जो भावा ।

पडित सोइ जो गाल बजावा ॥

सोइ सयान जो परधन हारी ।

करइ पखड सो बड आचारी ॥

जो कह शूठ मसखरी जाना ।

कलियुग सोइ गुनवत बखाना ॥<sup>५</sup>

जीवन की सामान्य पगडडियों पर चलने वाले लोगों की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिकों तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया में रम गई थी—

१. रामचरितमानस ७।१०० क-घ ।

२. रामचरितमानस ७।१८ क-२ ।

३. यही, ७।११ ■ ।

४. यही, ७।१०० क ५-७ ।

५. यही, ७।१०२-३ ।

६. यही, ७।१८-३, ५, ६ ।

“परतिय संपट कपट सयाने ।  
मोह द्रोह भमता सपटाने ॥  
तेह अभेदवादी जानी वर ।  
देखा मैं चरित कलियुग कर ॥<sup>१</sup>

जहाँ पढ़े लिखे लोगो की यह दशा थी वहाँ अनपढ़ रुढ़िग्रस्त जनता भेड़िया-  
घसान में कैसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर घेत में बसते हुए  
उन्होंने इस विवेकहीनता का नम्र दृश्य अपनी आँखों देखा था । बहराइच के  
सैय्यद सालार की दरगाह की जियारत करने वाली अन्धविश्वासी जनता के  
आचरण में—

“सही आँसि कब आचरे, बाँझ पूत कब पाय ।  
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाय ॥<sup>२</sup>

इस काल की शिक्षा का उद्देश्य जानार्जन न होकर अर्घोपार्जन अथवा उदर-  
पोषण मात्र रह गया था—

मातु पिता बालकन्ह बोलावहि  
उदर भरइ सोइ जतन सिखारहि ॥<sup>३</sup>

पेट ही को पढत गुन गढत चढत गिरि  
अटत गहन वन अहन असेट की ।<sup>४</sup>

अतः शिक्षा की दृष्टि शिष्य की गाठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी,  
ग्रन्थिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

“हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।  
सो गुरु घोर नरक मँह परई ॥<sup>५</sup>

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी । उनमें वैराग्य वृत्ति  
का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था । एक घर छोड़कर अनेक घर बसाने के फिर में  
पड़कर वे विषयसेवन में मग्न हो रहे थे—

“बहु दाम सवारहि घाम जाती ।  
विषया हरि धीन नही विरती ॥

१. रामचरितमानस, ७।१०० क-घ १, २ ।

२. बोहावली, ४६६ ।

३. रामचरितमानस, ७।६६, घ ।

४. कवितावली, ७।६६ ।

५. रामचरितमानस ७।६६-७ ।



तपसी धनवंत दखि शूही ।

कलि कौतुक तात न जात कही ॥<sup>१</sup>

निर्गुण धारा के सत प्राचीन आध्यात्मिक मार्गों को छोड़कर नये-नये पंथों के प्रवर्तन में लीन थे—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, सुत भए सदग्रन्थ ।

दमिन्ह निजमत कल्पकरि प्रकट किये बहुपथ ॥<sup>२</sup>

आचारहीन योगी तथा अधोरपणियों की सिद्ध रूप में पूजा की जाती थी—

असुभ बेप भूषन धरे, भदयाभदय जे खाहि ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहि ॥<sup>३</sup>

समाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त दुर्व्यवस्था को देखकर तुलसी ऐसा साहसी उत्त्वज्ञानी भी विकर्तव्यबिभूष हो गया था—

कासो कीजै रोप दोष दीजै वाहि ? पाहि राम

कियो कलिकाल सय सनस सबक ही ॥<sup>४</sup>

### धार्मिक जीवन

दिल्ली सल्तनत के स्थापन काल से ही यवन शासन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य इस्लामी संस्कृति तथा धर्म का प्रचार था । तीन सौ वर्षों के इस विधर्मी शासन के अत्याचारों ने पिसते हुए हिन्दुओं के धार्मिक आधार-विचार लुप्त हो गये थे । जब वेद-पुराण का कथन-श्रवण ही दृढनीय अपराध हो—ऐसे युग में धार्मिकता का तिरोहित हो जाना स्वाभाविक था । रावण द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य व्यवस्था के वर्णन में प्रकारान्तर से तुलसी ने इस ओर संकेत किया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिय नहि माना ।

तेहि बहुविधि त्रासइ दैस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥<sup>५</sup>

इस काल में व्यक्तिगत रूप से इतना चारित्रिक पतन हो गया था कि ब्रह्म-ज्ञान बधारने वाले ढोंगी कौड़ी के लिए गुरु तथा ब्राह्मणों की हत्या करने में नहीं हिचकते थे—

१. रामचरितमानस, ७।१००-१ ।

२. वही, ७।६७ क ।

३. वही, ७।६८ क ।

४. कवितावली, ७।६८ ।

५. रामचरितमानस, १।१८३-।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसर बात ।

कोडी लागि लोभ बस, करहि विप्र गुष घात ॥<sup>१</sup>

हिन्दू धर्म के भीतर प्रचलित विविध मतमतान्तर पारस्परिक विद्वेष तथा स्वार्थ साधन में ही व्यस्त थे । चारों ओर पाखण्ड और उच्छृंखलता का ही साम्राज्य था—

दम सहित कलि घरम सब, छल समेत व्यवहार ।

स्वारय सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥<sup>२</sup>

### लोकाचार

इसी प्रकार लोकोक्ति तथा लोकाचार के वर्णन में गोस्वामी जी का दृष्टि-कोण पूर्णतया यथार्थवादी रहा है । ऐसे स्थलों पर उन्होंने आदर्श तथा भर्मादावाद के नियम ढाल कर लोकमानस का बड़ा ही आकर्षक स्वरूप चित्रित किया है । प्रकृता भीतराग होते हुए भी सामाजिक जीवन के रागरजित कोनो तक उनकी अतर्भेदिनी दृष्टि पहुँची थी । गरी को नई रोशनी के लोग अशिष्टता का प्रतीक मानते हैं किन्तु बाबा जी ने भागलिक अवसरों पर उसका आयोजन एवं प्रयोग लोकजीवन के लिए आनन्द विषायक तथा श्रेयस्कर बताया है । उनके मत में क्रोध तथा द्वेष की प्रेरणा से प्रयुक्त गालियाँ ही हानिकर हैं । हृदय से निकली हुई गालियाँ सजीवनी सुरा हैं, जिनका खवणपुटो से पान करके मुरसाये हृदय खिल उठते हैं, पोपले और झुरियों से भरे गालों पर सेब की लाली दीब जाती है । इनका रसास्वादन अत्यन्त उच्च चारित्रिक धरातल के सुसंस्कृत लोग ही कर सकते हैं, तथाकथित सम्य लोग नहीं—यह उनका स्पष्ट अभिमत है—

“अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार ।

प्रेम बैर की जननि जुग, जानहि बुष न गँवार ॥<sup>३</sup>

ये अमृत रससिक्त गालियाँ मुण्डन, विवाह आदि के अवसर पर गाई जाती हैं । रामलला नहछु मे इसका वे एक नमूना दे गये हैं :—

“गावहि सब रनिवास देहि प्रभु गारी हो ।

रामलला सकुचाहि देखि महतारी हो ॥’

१. रामचरितमानस ७।१६६ क ।

२. दोहावली, ५४८ ।

३. दोहावली, ३२८ ।

४. रामलला नहछु, १८ ।

काहे राम जिव मांवर लखिमन गोर हो ।

कीयो रानि कौसिलहि परिया भोर हो ॥<sup>१</sup>

राम विवाह के अवसर पर बारातियो समेत महाराज दशरथ जनकपुर में भोजन के समय गार्द जाने वाली गालियो का रसास्वादन करते हैं—

“जिवत देहि मधुर धुनि गारी ।

से से नाम पुरुष अरु नारी ॥

समय सुहावन गारि बिराजा ।

हंसत राउ सुनि सहित समाजा ॥<sup>२</sup>

कवितावली में विनोदवश उन्होंने लकाशहन के अवसर पर राजसियो द्वारा हनुमान को दी गई गालियो को लोकजीवन में सम्बन्धियों के सम्मान में आयोजित होने वाली भोजन के समय की गाली का ही रूप दिया है—

तुलसी निहारि अरि नारी दे दे गारी कहैं,

बावरे मुरारि बैर कीन्हो रामराय सो ।<sup>३</sup>

इसी प्रकार लोकरीति विषयक उनके अनुभव एवं आस्था का भी एक ममूमा देना असंगत न होगा । प्रसंग जानकी मंगल का है । विवाह के समय दूल्हा का भाई ‘लावा परछता’ है, सीता के कोई भाई नहीं था, इस लोकरीति को पूरा कोन करे । गोस्वामीजी ने परम्परागत मर्यादा की रक्षा के लिए सीता के भाई भूमिपुत्र मंगल का उक्त अवसर पर अवतरण कराया—

प्रिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ ।<sup>४</sup>

दुरी दुरा करि नेम सु नात अनायउ ॥

ग्राम गीतो में आवश्यकतानुसार इस प्रकार पात्रों के सन्निवेश की परम्परा बहुत है । विवाह में दूल्हा की बहन को गाली गार्द जाती है । सालियो और सरहजों का निशाना वही बनती है । प्रचलित रामकथा में राम के बहन नहीं थी, इस रिक्तता की पूर्ति प्रशान्त स्वभाव के भाई राम की बहन ‘शान्ता’ की सृष्टि

१. रामललानहछू, २१ ।

२. रामचरितमानस, १।३२६-६,७ ।

३. पर्यर्तो रामायणो मे लक्ष्मीनिधि सीता के भाई कहे गये हैं । ये महाराज जनक (सीरध्वज) के भाई कुशध्वज के पुत्र थे ।

४. जानकीमंगल, १६६ ।

५. वाल्मीकि रामायण ॥ बाक्षिणात्य पाठ में शान्ता दशरथ की पुत्री कही गयी

करके की गई । राम कलेवा के प्रसंगों में इसका उल्लेख मिलता है—

“बहिन तुम्हारि कहिए साता, सो मुनि सग सिधारी, हमारे राम लला ।  
तुम्हें गारी मैं केहि विधि देउँ, रसिया राम लला ॥”

### लोक-स्वभाव

लोक स्वभाव से उनका कितना गहरा परिचय था, उसकी प्रकट और अप्रकट छवियों का कितनी वेनी दृष्टि से उन्होंने निरीक्षण किया था, इसका अनुमान उनकी कृतियों में प्राप्त निम्नांकित उदाहरणों से लगाया जा सकता है—

(१) प्रेम और बैर दोनों मनुष्यों को अन्धा बना देते हैं । इनका प्रकर्ष उनकी बाहरी ही नहीं आन्तरिक आँखों की भी ज्योति समाप्त कर देता है—

तुलसी बैर सनेह दोउ, रहित बिसोचन चारि ।

मुदा सेवरा आदरहि, निदरहि सुरसरि बारि ॥<sup>१</sup>

(२) मात्र आकर्षक वेष, लोहक व्यक्तित्व और मधुर वाणी से लोगों को प्रभावित करके जो लोग समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं अथवा धाक जमा लेते हैं, कालान्तर में अन्तःपरिष्कार के अभाव से उनका पतन अवश्य होता है—

वचन वेध ते जो बने, सो बिगरे परिनाम ।

तुलसी निज ते जो बने, बनी बनाई राम ॥<sup>२</sup>

(३) सत्सार में हीनवृत्ति वाले निष्ठले आलोचकों की कमी नहीं है, एक उक्ति है—

ठाढो द्वार न दे सकै, तुलसी जे जन नीच ।

निदरहि निमिहरिचंद को का कियो करन दधीच ॥<sup>३</sup>

(४) लोग मानसिक अथवा शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होने पर आरम्भ में उपचार के लिए सामान्य कष्ट नहीं सहते, उचित आलोचना पर ध्यान नहीं देते, समय रहते सुधारना पसंद नहीं करते, वही रोग शनैः शनैः

है । किन्तु वायु, हरिवश, तथा मत्स्य आदि पुराणों में इन्हें सोमपाद को बन्धा माना गया है ।

१. लोकगीत

२. दोहावली, ४१२ ।

३. वही, १५४ ।

४. वही, ३८२

बढ़कर असाध्य हो जाता है और तब मरीज को अपने साथ ले डूबता है—

सोकरीति फूटी सहे, आजी सहे न कोय ।

जो तुलसी आजी सहे तो फूटा नहि होय ॥<sup>१</sup>

प्रवृत्ति किसी को क्षमा नहीं करती ।

### ध्यावहारिक दृष्टिकोण

व्यक्तिगत रूप से तुलसी सन्त स्वामावानुकूल शान्ति नीति के अनुयायी थे, लडाई-भगडे में पढ़ना उन्हें पसन्द न था—

सुमति विचारहिं परिहरहि, दल सुमनहु सग्राम ।

सकुल गए तनु बिनु भये, साखी जादौ काम ॥<sup>२</sup>

किन्तु अत्माधार की सीमा पार करते देखकर सोकमगल के लिए वे यदा-कदा क्रोध का प्रदर्शन और आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानते थे—

सठ सन विनय झुटिल सन प्रीती । सहज वृषण सन सुंदर नीती ॥

भमता रस सन ज्ञान कहानी । अरु लोमिहि सन विरति बलानी ॥

क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा । ठसर बीज गए फल जया ॥<sup>३</sup>

उन्होंने मर्यादा पुरपोत्तम के स्वभाव में क्रोध के इस लोकोपकारी स्वरूप का बड़ा ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

लछिमन बान सरासर आनू । सोखीं वारिधि विसिख वृसानू ॥

×

×

×

विनय न मानत जलधि जड, गये तीन दिन बीति ।

मूढ़ जीव माने नहीं, बिनु भय होय न प्रीति ॥

### साहित्यिक आदर्श

तुलसी की साहित्यिक मान्यताएँ उनके विस्तृत लोकानुभव से पूर्णतया प्रमा-

१. दोहावली, ४२३ ।

२. दोहावली, ५१६ ।

३. रामचरितमानस ५।५८-२, ३, ४ ।

४. वही, ५।५८-१ ।

५. वही, ५।५७ ।

वित है। उनकी दृष्टि में साहित्य रचना का मूल उद्देश्य ही लोकाहित साधन है—

“वीरनि मनिति भूति मल छोई।

सुरसरि सम सबकर हित होई ॥”

इसीलिए उन्होंने परम्परा से अध्यात्मविद्या तथा तत्त्वज्ञान निरूपण के प्रतिष्ठित माध्यम संस्कृत भाषा को छोड़ कर लोकभाषा ब्रज तथा अवधी में काव्य रचना की।

संस्कृतज्ञ होते हुए भी दुर्लभ ‘कुमांच’ का त्याग कर सर्वसुलभ ‘कामरी’ को अपनाने वाला कवि हृदय हो लोकमानस को प्रभावित कर सकता है—

का भाषा वा संस्कृत, प्रेम चाहिए साच।

काम जो आवै कामरी, वा ले करै कुमांच ॥<sup>१</sup>

लोककवि की विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने पूर्व तथा समकालीन साहित्य क्षेत्र में प्रचलित सभी प्रमुख शैलियों में आराध्य का गुणगान किया। इसके साथ ही प्राचीन परिपाटी के लोगों के परितोष के लिए रामचरित मानस के काण्डों के प्रारम्भ में संस्कृत के श्लोकों को भी जोड़ना की।

वेद-शास्त्र की निन्दा करने वाले निर्धुंग पंथी सन्तो तथा प्रेमाख्यानकार भूषी कवियों का रवैया उन्हें देश के परम्परागत सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिद्वन्द्व दिखाने पड़ा। इसीलिए उन्होंने उसका डटकर प्रत्याख्यान किया—

साक्षी सबदी बोहरा, बहि, बिहनी उपधान।

भगति निरूपहि भगत कलि, निदिहि वेद पुरान ॥<sup>२</sup>

एक स्थान पर तो वे इसी वर्ग के एक ‘अलख’ जगाने वाले साधु को फटकारते और रामनाम जपने का उपदेश देते हुए देखे जाते हैं—

“हम लखि लखहि हमार लखि, हम हमार के बीच।

तुलसी अलखहि वा लखै, रामनाम जपु नीच ॥

इन सामान्य विरोधों के बावजूद उत्तरी भारत में राम-कथा उस समय भी व्यापक रूप से बड़ी और सुनी जाती थी। संस्कृत और परिनिष्ठित ब्रज तथा अवधी में ही नहीं ठेठ लोकभाषा में भी छी-मुख्य रामचरित गाकर परिस्थितियों से जूझने के लिए नई शक्ति और नई प्रेरणा प्राप्त करते थे—

१. रामचरितमानस, १।१४ क-६।

२. बोहावली, १६।

३. रामचरितमानस १।१० ल।

४. बोहावली १६।

“स्याम सुरमि पय विसद अति, करहि गुनद सब पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावहि सुनिहि सुजान ॥”

किन्तु इससे लोकहृदय में उस एकान्तनिष्ठा की स्थापना नहीं हो पाती थी जो उन्हें राम में अनुरक्त कर उनकी प्रवृत्ति को एक नया मोड़ दे सके। तुलसी को यह देख कर दुःख होता था कि लोग रामायण पढ़ते तो थे, किन्तु आचरण में महामारत से ही प्रेरणा प्राप्त करते थे। उनकी कयनी और करनी में महान् अन्तर था—

रामायन अनुहरत सिख, जग भयो भारत रीति ।

तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ॥”

लोग परास्पर ब्रह्म के अवतार रावणातक राम में श्रद्धा रखते हुए भी आसुरी प्रवृत्ति और आसुरी शासन से आज्ञान्त हो रहे थे। स्वयं तुलसी ऐसा स्थितप्रज्ञ एवं अडिग विरवासी भी परिस्थिति की इस करासता को देखकर निराश हो चला था—

राम मुजस कर चहुँ बिसि होत प्रचार ।

अमुरन कहँ लसि लागत जग अधियार ॥”

शोकनायक तुलसी का सन्देश

अपने समकालीन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में व्याप्त इस अन्धकार से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन तुलसी की दृष्टि में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की सर्वतोभावेन शरणागति थी। उन्हीं का लोकपावन चरित मानव-जीवन के इन सभी पक्षों का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर निराश, हीनभावग्रस्त और किर्कटव्यविमूढ जनमानस में आशा तथा उत्साह का संचार कर सकता था और इस प्रकार आत्मिक विकास के साथ ही सामाजिक उत्थान, तथा राजनीतिक परिवर्तन संप्रतिष्ठ करने में वह प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकता था। अपनी कृतियों में उन्होंने बार-बार रामचरित के इस लोकोद्धारक स्वरूप की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है—

मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।”

१. रामचरितमानस, १।१०ख ।

२. बोहावली, ५४५ ।

३. बरवं रामायण, ५।३६ ।

४. रामचरितमानस १।१० ।

रघुबसभूपनचरित यह नर कहहि सुनिहि जे गावही ।  
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम घाम सिधावही ॥<sup>१</sup>  
ऐसेऊ कगल कलिकाल मे वृपाल तेरे

नाम के प्रभाव न बिताप तन दाहिए ।<sup>२</sup>

कुपय कुतर्क कुचालि कलि, कपट दम पाखण्ड ।

दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अगल प्रचड ॥<sup>३</sup>

<sup>१</sup> कहने को जहाँगीर किन्तु वास्तव में नूरजहाँ के शासन में अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने वाले इस महाप्राण सन्त ने उसी निष्ठा के आधार पर मुगल-साम्राज्य की उपेक्षा कर एकमात्र सीता को ही "साहिबिनी" माना—

‘मेरी साहिबिनी सदा सोस पर विलसत ।

देवि । ज्यो न दास को देखाइयत पायजू ॥<sup>४</sup>

और बड़े ही दृढ़ स्वर में आततायी मुगलतन्त्र के विनाश की भविष्यवाणी की—

‘राज करत बिनु काज ही, करें कुचालि कुसाज ।

तुलसी ते दसकथ ज्यो, जैहैं सहित समाज ॥

इस प्रकार सर्वग्रासी शासन तन्त्र से आक्रान्त लोकजीवन का अन्तरंग परिचय प्राप्त करने के बाद ही वे ऐसे रामरसायन के निर्माण में समर्थ हुए जिसके सेवन से राजरोप्रस्त राष्ट्र स्वस्थ हो विषर्मी शासन और सत्सृष्टि से आत्मरक्षा करने में सफलता प्राप्त कर सका ।

उन्होंने रामभक्ति के ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की जिसमें लोकमानस को अन्धविश्वास, हीनभाव तथा रुढ़िवाद से मुक्त करने का सामर्थ्य था—

कृपिन देइ पाइज परो, बिन साधन सिधि होइ ।

सीतापति सनमुख समुक्ति, जो कीजै सुभ सोइ ॥

नक्षत मुहुरत जोग बल, तुलसी गनिय न काहि ।

राम भये जब दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥<sup>५</sup>

और जिसमें कलियुग का सतयुग में बदलने की क्षमता थी—

१. रामचरितमानस, ७।१३०-२

२. कवितावली, ७।७६ ।

३. दोहावली, ५६५ ।

४. वही, ७।१३६ ।

५. दोहावली, ४१६ ।

६. रामान्ता प्रश्न ४।३ ।



कलियुग सम युग आन नहि, जो नर कर विस्वास ।

गाइ राम गुन गन विमल, भव तर बिनिहि प्रयास ॥'

जनसामान्य में रामभक्ति का प्रचार करने के लिए उन्होंने रामलीला की लोकजन पद्धति का आश्रय लिया और स्थान-स्थान पर हनुमान मन्दिरों की स्थापना की । रामोपासना में हनुमान तत्त्व को प्रमुखता देकर उन्होंने अभ्यारम साधना के साथ बलोपासना का मार्ग प्रशस्त किया और जनमानस में यह भावना कूट कूटकर भर दी कि सभी प्रकार की आपत्तियों से त्राण सकट-मोचन केसरी नन्दन ही दिला सकते हैं—

दुर्जन को काल से कराल पाल सज्जन को,

सुमिरत हरनहार तुलसी की पीर को ।

सीयसुखदायक, दुष्टारो रघुनायक को

सेवक सहायक है सुवन समीर को ॥'

तुलसी की अगाध निष्ठा और साधना का बल पाकर महावीर हनुमान लोक-देवता बन गये और दशरथमुत्त राम लोकप्रह्ला । उनके इष्टदेव, जनमत की तो बात ही क्या, जनरव तक का आदर करने वाले थे । उन्होंने मात्र लोकध्वनि के आधार पर अपनी अग्नि-मरोक्षित साध्वी स्त्री सीता को भी वनवास दे दिया था—

परना घरनि सी मुनि जानमनि रघुराइ ।

दूत मुल मुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ ।'

भूटे अघ सिम परिहरी तुलसी स्वामि ससक ।'

लोकवन्द्य महापुरुष राम की भक्तिवीथी को तुलसी ने राजमार्ग के रूप में परिणत कर दिया । यह ऐसा प्रशस्त तथा निरापद पथ बन गया जिस पर घनी-निर्धन, शूहस्थ-विरक्त, निर्गुण-सगुणोपासक, पढ़े-अनपढ़, छोटे-बड़े समाज के सभी वर्गों तथा स्थितियों के लोग सब समय बेझटके चल सकते थे । उनके गुरुदेव ने इस मार्ग की महत्ता की ओर इंगित मात्र किया था—

गुरु कह्यो राम भजन नीको

मोहि तम्यो राज दगरो सी ।

१. रामचरित मानस, ७।१०३ क ।

२. कवितावली (हनुमान बाहुक) छ० १० ।

३. गीतावली, ७।२७ ।

४. दोहावली, छ० १६६ ।

५. विनयपत्रिका, १७३।५ ।

काल प्रवाह में तुलसी की यह मान्यता उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित होती गई और आराध्य के प्रति उनके अन्तःस्तल से निकले अर्चना के स्वर लोकहृदय के हार बन गये ।

लोकमानस की सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों के गहन अध्ययन और लोकजीवन की अन्तर्धाराओं के प्रगाढ़ परिचय के आधार पर ही भगवान् बुद्ध की भांति उन्होंने जन-सामान्य को लौकिकता तथा आध्यात्मिकता के अतिरेक से बचा कर मध्यममार्गी आचार-पद्धति अपनाने का उपदेश दिया और राम के चरित्र में उस आदर्श की पराकाष्ठा दिखा कर उनकी भक्ति में ही मानव जीवन की सार्थकता प्रतिपादित की । दिव्यसाकेत के स्थान पर 'रामपुर' की प्रतिष्ठा कर उन्होंने एक प्रकार से आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्व दिया था—

। घर कीन्है घर जात है, घर छाँटे घर जाइ ।

तुलसी घर बन बीच रहु, रामप्रेमपुर छाइ ॥

गोस्वामी जी की यह यथार्थवादी दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लक्षित होती है । समाज में प्रतिष्ठाप्राप्त उच्च वर्ग के धनीशाली व्यक्तियों को शोषक और विषाक्त प्रवृत्तियों के प्रसारक तथा अभावग्रस्त और परिश्रमशील किसानों-मजदूरों को लोकपोषक एवं लोकहित साधक बताकर उन्होंने जिस आपार संवेदनशील हृदय और अन्तर्भेदिनी दृष्टि का परिचय दिया है, वह आज की समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार कहा जा सकता है । तुलसी का अपना अनुभव इन पक्तियों में कितनी स्पष्टता से व्यक्त हुआ है ।—

अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को अस्थान ।

तुलसी अति नीचे मुखद, अन्न ऊँस ओ पान ॥

मानवता के लिए इस क्रान्तदर्शी महाकवि का यही संदेश था और इसी में उसके लोकानुभव की सार्थकता थी ।

## मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

वैष्णव भक्ति आन्दोलन को यह एक उत्सेहनीय विशेषता थी कि उसने समस्त पूर्ववर्ती साधना पद्धतियों को आरम्भसात् कर अट्टा-विश्वास पुरस्सर उपासना का भवीन राजपथ निर्मित किया, जिसमें शास्त्र अथवा परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा अनुभव अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया गया था। यही कारण था जिससे विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, भाषाओं और आचार-विचार वाले इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उसके सिद्धान्तों का समादर हुआ और कालान्तर में वैष्णवमत लोक-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो सका। अद्वैतियों का ब्रह्मवाद, कौलो तथा सहजयानी सिद्धों की गुह्य साधना, नाथ पंथियों का कायायोग तथा सूफियों की विरहासक्ति सबको न्यूनाधिक मात्रा में भागवत धर्म के इस कालजयी प्रवाह में मघोचित समादर एवं प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इसका मुख्य श्रेय स्वामी रामानन्द के उदार दृष्टिकोण, समन्वयवादी विचारधारा तथा युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व को है। मध्यकालीन निर्गुण तथा सगुण भक्तिधारा उसी विराट् स्रोत से प्रवाहित हुई। 'मीच-ऊँच की भावना का त्याग' साधना में स्त्री-पुरुषों के समानाधिकार की घोषणा,<sup>१</sup> 'अम्य देवोपासको के प्रति द्वेष भावना का त्याग,<sup>२</sup> अहिंसा व्रत का पालन<sup>३</sup> जैसे लोकोपयोगी सिद्धान्तों के प्रचार से उन्होंने सामाजिक जीवन में सोहार्द तथा सदाचार के प्रसार का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कदम था। इसी का परिणाम था कि उनके द्वारा प्रवर्तित तथा शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा संवर्द्धित रामभक्ति और रामनाम मध्यकाल की निर्गुण तथा सगुण दोनों शाखाओं के अन्तर्गत विकसित विविध सम्प्रदायों में व्यापक रूप से न्यूनाधिक मात्रा में प्राप्य हुआ।

हिन्दी में वैष्णव भक्ति का प्राथमिक उद्रेक नामदेव की रचनाओं में मिलता

१. वैष्णव मतानुभाषक—सं० भगवत्पादार्थ, छ० १५०।

२. वही, " छ० १५०।

३. वही, " छ० १८३।

४. वही, " छं० ११३, ११४, ११५, १८२।

है। रामनाम जप का माहात्म्य,<sup>१</sup> राम की भक्तवत्सलता,<sup>२</sup> दशरथपुत्र राजा रामचन्द्र का शरण्य रूप में वरण,<sup>३</sup> राम के प्रति कातासक्ति,<sup>४</sup> रामभक्तों के माला-तिलक तथा मुद्रा युक्त वेष में निष्ठा,<sup>५</sup> श्रीराम और श्रीराम में अभेद भाव की स्थापना विषयक पद उन्हें आलवारों और श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित रामभक्ति की प्रवृत्त धारा का साधक सिद्ध करते हैं। एक स्थान पर ये वैरागी को सम्बोधित करते हुए रामनाम गान का संकल्प व्यक्त करते हैं। कहना न होगा कि यों तो वीनराग या वैरागी साधको की चर्चा रामानन्द के पूर्व तिलो गमी कृतियों में भी मिलती है किन्तु रामोपासक वैरागियों का एक सम्प्रदाय रूप में संगठन सर्वप्रथम रामानन्द ने ही किया था जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 'वैरागी' शब्द मात्र रामभक्त विरक्त सत्त का बोधक माना जाने लगा। मौलाना रशीदुद्दीन ने 'तश्किरतुनकुकरा' में इसकी चर्चा की है।<sup>६</sup> 'दक्खिणानुल त्थारोख' नामक मध्यकाल के एक अन्य ऐतिहासिक वृत्त में रामानन्द द्वारा स्थापित वैरागी सम्प्रदाय के नामकरण-कारण, पूजापद्धति, तीर्थाटन तथा वेष के अतर्गत तुलसीमाला और तिलक का वर्णन करते हुए कबीरदास को उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध बताया गया है।<sup>७</sup> नामदेव पर स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तों का इतना गहरा प्रभाव उनमें किसी स्तर पर निकट सम्पर्क का व्यक्त है। डा० मोहनसिंह ने उनके बीच गुरु शिष्य सम्बन्ध की चर्चा की है और अपनी इस उपपत्ति के

१. नामदेव के हिन्दी पद, पृ० ७६, ११६, १२०

२. वही, पृ० ११८, १२६

३. हिन्दी को मराठी सन्तो की देव, पृ० २५३,

४. वही, पृ० २५५

५. वही, पृ० २५२, २५४

६. वैरागी रामहि गाउँगी-वही, पृ० ११४

७. भागवत सम्प्रदाय, पं० बलदेव जगन्नाथ, पृ० २५५

८. 'वैराग्य युगत में तलब के माने होते हैं। यह सांख्यिक बुजिया होते हैं। इनकी इबाबत में यह अशभार होते हैं जो विष्णु की तारीफ में कहे जाते हैं। विष्णु के भजाहिर राम और कृष्ण और जहाँ को तरह और दूसरे हैं। इनके अशभार को विष्णुपद कहा जाता है और विष्णु के जो मुकुटदस मुकामात इनसे मनसूब हैं, वहाँ जाते हैं। तुलसी की तसवीह गरबन में सट-काते हैं और उसको माता-तुलसी कहते हैं...हिन्दू मुसलमान जो भी चाहे इस मुलूक को आस्तियार कर सकता है...इन वैरागियों में सबसे ज्यादा शुद्ध कबीरदास को हासिल हुई।

क-दक्खिणानुल-त्थारोख पृ० १२७-१२८

(मुसलमान हुज्जाराओं की मजहबी रवायती—सम्बन्ध सबाहदुदीन अब्दुल रहमान, पृ० १५७-१५८ पर उद्धृत)

समर्थन में स्वामीजी के शिष्य अनन्तानन्द का अन्तेवामी गणेशानन्द द्वारा १५५२ ई० में मधुरा में लिखी गयी एक पुस्तक का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> अपेक्षित प्रमाणों के अभाव में रामानन्द को नामदेव का गुरु स्वीकार करने में आपत्ति हो सकती है किन्तु दोनों के प्रायः समकालीन होने से रामानन्द ऐसे लोकसप्रही तथा विचरणशील महापुरुष से नामदेव का सम्पर्क लाभ असंभव नहीं कहा जा सकता।

परम्परागत वैष्णवभक्ति साहित्य में बढमूल रामोपासना के तत्त्व परवर्ती निर्गुणमार्गी तथा कृष्णोपासक भक्तों को विषय में प्राप्त हुए। सत्तो की निर्गुण रामभक्ति के स्वरूप का विवेचन शोध तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों में विस्तार-पूर्वक हो चुका है। यहाँ 'गिरिधर गोपाल' की अनन्योपासिका भीराबाई की राम निष्ठा पर उनके कुछ नवप्राप्त पदों के प्रकाश में विचार किया जायगा। इसके पूर्व कि उक्त पदों के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण किया जाय, उनके निर्माण में श्रेष्ठ परिस्थितियों का आकसन कर लेना समीचीन होगा।

भीरा के आविर्भावकाल तक राजस्थान में नाथपन्थ का एकाधिकार समाप्त हो चला था। स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य श्रीकृष्णदास पयहारी ने अपनी अधौ-किक सिद्धियों और योगबल से तारानाथ योगी को पराजित कर उसकी रहीं सही प्रतिष्ठा समाप्त कर दी। आमेर के राजा पृथ्वीसिंह ने पयहारीजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। पयहारीजी की उपस्थिति से गलत गद्दी मुख्य आचार्य-पीठ बन गया। उनके २४ शिष्यों ने उत्तरी भारत में घूम-घूम कर रामभक्ति के प्रचार-केन्द्र स्थापित किये किन्तु इनका मुख्य कार्य क्षेत्र राजस्थान ही रहा। रामभक्ति में रसिक शास्त्रा के प्रवर्तक अग्रदास और उनके प्रसिद्ध शिष्य भक्त-मालकार नाभादास का साधनास्थल जयपुर के निकट रेवासा नामक आचार्य-पीठ था। अग्रदास पयहारीजी के शिष्य थे। इनके ज्येष्ठ गुरुभ्राता कील्हदास पयहारीजी के बाद गलत गद्दी के अधिकारी हुए। उत्तरी भारत के रामभक्तों की अधिकांश परम्परार्थ इन्हीं दोनों गद्दियों से सम्बद्ध हैं।

### भीराबाई और रामानन्द सम्प्रदाय

सोलहवीं शती में राजस्थान की इस सर्वाधिक सशक्त तथा व्यापक राम-भक्ति धारा में भीरा के प्रगाढ़ परिचय के अनेक प्रमाण मिलते हैं। एक स्थान पर वे गुरु रामानन्द का श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कहती हैं—

१. हिन्दी की मराठी सन्तों की देन—डा० विनय मोहन शर्मा पृ० १०५।

२. भीरा कृष्ण पद सप्रह—स० पद्मावती शबनम, पृ० २२२।

रामजी पधारे घनि आज की धरी ।

आज की धरी वो भाव रो भरी ॥

गुरु रामानन्द अर माधवाचारज' नीमानन्द' विसनहरी ।

मीरा के प्रभु हरि अविनासी पकड़ि पीवी प्याला प्रेम हरी ॥

उपसंघ साक्ष्य के अनुसार मीरा के आविर्भाव के बहुत पहले ये तीनों महा-पुरुष दिवगत हो चुके थे। अतः इससे यह निष्कर्ष निकालना कि मीरा ने इस पद में उनके अपने घर पधारने का वर्णन किया है, युक्ति संगत न होगी। मीरा ने अपनी कृतियों में कई स्थलों पर श्रद्धेय पुरुषों, सतगुरु तथा इष्टदेव के स्वप्न दर्शन का वर्णन किया है। उपर्युक्त पद उसी भावना से प्रेरित प्रतीत होता है।

मीरा द्वारा स्वामी रामानन्द की गुरु रूप में चर्चा का एक महत्वपूर्ण सूत्र इधर प्रकाश में आया है,<sup>१</sup> जिसका आधार डा० प्रभात की आमेर के 'जगत शिरोमणि मंदिर' के पुजारी प० गिरिधारी साहू द्वारा दी गयी सूचना है। उसके अनुसार उससे स्थापित 'गिरिधर' की मूर्ति वही है जो मीरा को पयहारी श्री-कृष्णदास के शिष्य देवाजी से प्राप्त हुई थी और उसे देवाजी को स्वयं स्वामी रामानन्द ने दी थी। देवानन्द और स्वामी रामानन्द के बीच तीन पीढ़ियों का अन्तर है—रामानन्द, अनन्तानन्द, श्रीकृष्णदास पयहारी, देवानन्द। इस दीर्घ-कालिक व्यवधान को देखते हुए रामानन्द का देवाजी को स्वयं मूर्ति प्रदान करना सामान्यतया सम्भव नहीं जान पड़ता। मेरी धारणा है कि उक्त सूचना केवल इस रूप में विश्वसनीय मानी जा सकती है कि देवाजी को रामानन्द द्वारा समारुत 'गिरिधर' की मूर्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। रामानन्द सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा कितनी थी, इसका अनुमान श्री वैष्णव-मताब्ज भास्कर से कृष्ण जन्माष्टमी व्रत के विधि विधान की व्याख्या तथा उनके प्रशिष्य और

१. ये श्लोक भाष्यकार सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता थे—मीराबाई-डा० प्रभात, पृ० १६६।

२. ये स्वामी रामानन्द के समकालीन सन्त थे।

३. वही, पृ० १६५-१६६।

४. मीराबाई (डा० प्रभात), पृ० १६०।

एक बार देवाजी गाड़ी में बैठकर उस मूर्ति को ले जा रहे थे। रास्ते में बिलौड़ में ठहरे। वही मूर्ति स्थापित की। मीरा वहाँ थीं। उन्होंने वास्तो को भेजा। मीरा उस मूर्ति को महलों में ले गयीं।

वही पृ० १६०।

५. वैष्णव मताब्ज भास्कर (स० भगवदाचार्य) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-व्रत प्रकरण-पृ० १२८-३०।

देवाजी के गुरु के श्रीकृष्णदास नाम से ही सगाया जा सकता है ।

देवाजी चित्तौडगढ़ के पुरोहित थे । भीरा से उनकी भेंट चित्तौड में ही हुई थी । वे अपने समय के प्रसिद्ध सत थे । नामादास ने 'दिवाहित सित केस प्रतिज्ञा राखी जन की'<sup>१</sup> लिखकर उनके भगवत्कृपापात्र होने का मकेत दिया है । प्रिया-दास ने इस सूत्र को पल्लवित कर चित्तौडगढ़ चतुर्भुजा जी द्वारा अपने केशों को श्वेत करने और राणा को दर्शन न करने की आज्ञा दण्डस्वरूप देने की घटना का उल्लेख किया है । चित्तौड पर विजय के बाद महाराज मानसिंह गिरिधर की यह मूर्ति आमेर ले आये और महल में भीतर मंदिर बनवा कर उसे स्थापित कर दिया । मानसिंह अन्नदास के शिष्य थे अतः गुरु परम्परा में समाहित श्री विग्रह की सेवा-पूजा के लिये उन्होंने अन्नदास जी के गुरुमाई और उस मूर्ति के पुराने पुजारी देवाजी को चित्तौड में आमेर से बुला लिया ।

रामानन्द सम्प्रदाय से भीराबाई के सम्बन्ध होने का एक अन्य स्रोत उनके द्वारा सत रैदास का अनेक स्थलों पर गुरु रूप में उल्लेख भी है—

भीरा ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिल्या रैदास ।

म्हारो गुरु रैदास है, सजनी म्हारो है ।<sup>२</sup>

गुरु मिल्या रैदास जी बीनी ग्यान की गुटकी ।<sup>३</sup>

भीरा सरणै राम के म्हाने गुरु मिलिया रैदास ।<sup>४</sup>

कुछ समालोचक काल के आधार पर भीरा का रैदास से दीक्षा लेना सम्भव नहीं मानते और जिन पद्यों में ऐसी पंक्तियाँ हैं उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करते हैं । भीरा की सगुण तथा रैदास की निर्गुण साधना पद्धति में सैदान्तिक विरोध बता कर वे अपने मत का समर्थन करते हैं । किंतु थोड़ा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भीरा तथा रैदास की रचनाओं में परम्परागत सत मत की हठयोग, भाव-भक्ति, अनुभव-पथ, सगुण-निराकार तथा विष्णु के विभिन्न अवतारों के नाम आदि के प्रति समान रूप से जो आस्था व्यक्त की गयी है और सगुण साकाराश्रित भक्ति के प्रतिपादक होते हुए भी सगुण-निर्गुण से परे प्रियतम की जिस अलौकिक छवि का वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है, यह साम्प्रदायिक कृष्णोपासकों की अपेक्षा निर्गुणिया सतों तथा सूफी फकीरों की प्रेमपद्धति के

१. श्री मत्तमाल—कृष्णसा पृ० ४३० ।

२. भीराबाई—डा० प्रभात पृ० १६५ ।

३. भीरा धृहद् पद सपह—पद्यावली शब्दम पृ० ८ ।

४. भीराबाई की शब्दावली और जीवन, बेलबेडियर प्रेस पृ० २० ।

५. भीरा धृहद् पद्यावली, पद्यावली शब्दम पृ० ६ ।

अधिक निकट है। ऐसी स्थिति में परम्परया प्रतिष्ठित रेदास और मीरा के गुह-  
शिष्य सम्बन्ध को सहसा अमान्य नहीं ठहराया जा सकता।

मीरा का नव प्राप्त निम्नांकित पद इस समस्या के समाधान में सहायक  
हो सकता है—

आजि म्हारे पाँइणीया वैरागी जी । जनम सुधारण सतगुरु आया जी ॥  
आजि सखि म्हारे सुपनी री आयी । संत बभाई कोई ल्याया जी ॥  
कैची थडि हू ओवण लागी । म्हारा सतगुरु नजर पराया जी ॥  
प्रेम के घारे उत्तरत देवा । आप पिया राजन आया जी ॥  
भगवाँसा कपडा कर मे डोरी ॥ दरसन की बलिहारी जी ॥  
भाव भगति सँ कहँ रसोई । प्रीति की सारी भर ल्याँऊँजी ॥  
आज सखी हूँ तो हरल किहँ छूँ । सतगुरु काँई म्हाने बगसँ जी ॥  
सील संतोष क्रिया करि दोन्हा । मो उर आनन्द कीन्हा जी ॥  
पण परसाखी म्हाने सतगुरुजी दोन्ही । मो उपरि किरपा कीन्ही जी ॥  
प्रीति करै न राम पद रज सेस्युँ । म्हारो सीस चरणा सर देख्युँ जी ॥  
चरण घोड़ चरणामृत मेस्युँ । म्हारा पाप बिले होइ जासीजी ॥  
कर जोड़या रामजी अरज कहँ छूँ । म्हारो जनम मुघारो सतगुरु स्वामीजी ।  
मीरा कहै प्रभुदुरि अविनामी । जनम-जनम की मैं दासीजी ।<sup>१</sup>  
इससे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं—

१. मीरा ने स्वप्न में वैरागी वेध में सतगुरु का दर्शन किया।
२. उनका अवतरण प्रेम धारा के माध्यम से हुआ।
३. मीरा ने भाव-भक्ति रूपी भोजन तथा प्रीतिजल से उनका स्वागत उत्कार किया।

४. सद्गुरु ने प्रसन्न हो उन्हें शील संतोष का वरदान और टेक निमाने का आशीर्वाद प्रसाद रूप में दिया।

५. मीरा ने अरणोदक लिया जिससे सारे पाप नष्ट हो गये।

६. प्रस्थान करते समय गुरु रूप में पधारें हुए रामजी से मीरा ने जीवन सुधारने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की और उनके साथ अपने धर्म-धम्मन्तर के सम्बन्ध का स्मरण दिलाया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मीरा ने स्वप्न में जिस सतगुरु का दर्शन किया वह वैरागी वेध में था। उसका स्वागत उत्कार भी उन्होंने रामभक्तों की

१. भारतीय विद्या मन्दिर (बोकारो) के हस्तलेख संग्रह से संकलित।



परम्परानुमोदित पद्धति से किया ।<sup>१</sup> यह सद्गुरु 'रामजी' रहे हों, 'रामानन्द' या रेदास, कोई फर्क नहीं पड़ता । इसमें देशकाल का कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।<sup>२</sup> अन्यत्र 'ब्रजनाथ' के साथ मीरा ने अपने 'स्वप्न-परिणय' का उल्लेख भी किया है—

माई म्हातो सुपना माँ परण्याँ दीनानाथ ।

छप्पन कोट्या धन पधार्याँ दूल्हो सिरौ ब्रजनाथ ॥

सुपना माँ म्हातो परण गया पावाँ अचल मुहाग ।

मीरा रौ गिरधर मिल्या दु ख जनम जनम रौ भाग ।<sup>३</sup>

रामभक्ति के प्रवर्तक आलवारों तथा जाच्चार्यों द्वारा सेवित श्रीरगनाथ ऐड्डा-कुओं के इष्टदेव थे । साम्प्रदायिक साहित्य में इनका मुक्तकण्ठ में गुणगान हुआ है । श्रीरगनाथ लक्ष्मीनारायण के प्रतिकरूप हैं ।<sup>४</sup> मीरा का एक पद इनकी प्रशस्ति में मिलता है—

श्रीरगजी की नार देखो याने साँवरो सेठ बुसावे ॥

आज की रन बसाँगी समदन हृदये ग्यान विसैली ।

कोकिल भास भरे लक्ष्मी जी मधुर बैन गवरी को ॥

मीरा कहै मियुलायन बोलर धाय भाग केवरी को ॥<sup>५</sup>

श्री रगनाथ की, साम्प्रदायिक सगुण रामभक्ति परम्परा के बाहर भी, अपार प्रतिष्ठा थी । यह मीरा के उपर्युक्त पद के अतिरिक्त नामदेव के निम्नांकित पद से भी विदित होता है—

१ वैष्णव भक्ताञ्ज भाष्कर—श्लोक १५२ ।

२ वैष्णव भक्तों में 'स्वप्नगुरु' की धरम्परा प्रचलित होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं । उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त महारामा बनावदास की अयोध्या में साधन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वप्न में बसों बेंकर रामकाव्य रचना की प्रेरणा भी थी । इस घटना का विवरण देते हुए वे लिखते हैं—

मिले हैं स्वप्न माहि कृपा करि दोने घर बद्धो अनुराग सुने सुम यानो है ।  
बनावदास गुर भाष माने हैं गोसाईं विधे ताने मति मेरी विनुबाम ही बिकानी है ।

—अमय प्रबोधक रामायण, गुरुचरण पृ० २१

३ मीरा पदावली—(बाकोर प्रति) पद ३६ ।

४ तुलसीदास ने भी भगवान् श्रीराम का आबरूपूर्वक स्मरण किया है और उन्हें राम का प्रतिरूप माना है—

बार बार बार माँगजै हरिय देहु श्रीराम ।

पद सरोज अनपायनी भक्ति सबा सतसप ।

—रामचरितमानस, उत्तर० १४ (ख)

५ रा० शो० स० चौपासनी जोषपुर, हस्तलेख सख्या—१०५७ ।

मैं बऊँरी मेरा राम भठार । रचि रचि ताकऊँ करऊँ सिंगार ॥

भले निंदळ भले बदळ लोगु । तनु मनु राम पियारे जोगु ॥

बाद विवाद काहू सिउ न कीजै । रसना राम रसायन पीजै ॥

असतुति निंदा करे बर कोई । नामे श्रीरंग भेटल सोई ॥<sup>१</sup>

श्रीरंग अथवा राम के प्रति नामदेव की यह आसक्ति मीरा और कबीर के तद्विषयक उद्गारों के सर्वथा मेल में हैं ।

मीरा के रामभक्ति सम्बन्धी पद प्रतिपाद्य-विषय के विचार से निम्नांकित शीर्षकों में रखे जा सकते हैं—

१. रामचरित २. रामकी भक्तवत्सलता ३. आत्म प्रबोधन ४. रामशरणागति ५. कैर्कर्य निष्ठा ६. रामभजन ७. रूपासक्ति ८. माधुर्य भाव ९. विरह निवेदन ।

आलोच्य पदों का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि मीरा के अतर्जगत में राम के प्रति गूढ़ आसक्ति थी जो समय-समय पर विभिन्न प्रसंगों और विविध रूपों में व्यक्त होती रही । वैष्णवभक्ति के जो संस्कार उन्हें पितृगृह मेरुता में चतुर्भुज विष्णु व अनन्योपासक अपने बाबा वूवाजी से प्राप्त हुए थे । उनकी प्रेरणा से वैषम्य और राणा द्वारा दी गयी घोर यज्ञाज्ञाओं को झेलते हुए वे सत्संग, पूजा और कीर्तन में लीन रहीं । भाव समाधि में परम तत्त्व से एकात्मता स्थापित कर लेने पर श्रीरंग, राम, और गिरिधर गोपाल का बाह्य स्वरूपगत भेद जाता रहा । उनके पदों में राम, रघुवर और रघुनाथ के साथ गिरधरनागर, गोविन्द, श्याम और हरि के अभेद भाव से उल्लेख का यही रहस्य है ।

मीरा के कृष्णभक्ति काव्य में, आराध्य को छोड़कर, कृष्णकथा के अन्ध किमी का पात्र नाम नहीं आया है, यहाँ तक कि राधा का भी नहीं । किन्तु रामभक्ति विषयक उनकी रचनाओं में राम, सीता, और लक्ष्मण के साथ रावण तथा मवोदरी की भी खर्चा है । यह इस बात का प्रमाण है कि कृष्णोपासना में एकांतिक भाव को महत्त्व देते हुए भी रामभक्ति के क्षेत्र में वे उसकी परम्परानुमोदित दार्शनिक मायताओं तथा लोकसंग्रही प्रवृत्ति की रक्षा में सजग रही हैं । तत्त्व-त्रय—ब्रह्म, जीव तथा अमृत के प्रतीक राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति एवं विश्व परितोषी रावण की कदर्यना इसी का चोकर है ।<sup>२</sup> ●

१. नामदेव के हिन्दी पद—सं० ४१ ।

२. दृष्टव्य—मीराबाई के रामभक्तिपरक पद (परिशिष्ट) ।

## रामभक्ति साधना में योग-तत्त्व

योग अध्यात्म-साधना का एक अनिवार्य तत्त्व है। ज्ञाता तथा ज्ञेय अथवा साधक एवं साध्य का तादात्म्य उसके अभाव में हो ही नहीं सकता। यही कारण है जिमने विश्व की सभी धर्म-साधनाओं तथा आस्तिक दर्शनों में उसका महत्त्व स्वीकार किया गया है और उनकी अध्यात्म-धर्मा में किसी-न-किसी रूप में उसकी व्याप्ति पायी जानी है। भारत की वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार की विचार-धाराओं से प्रभावित शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध, जैन आदि मतों ने योग-साधना के विभिन्न तत्वों को विविध रूप में अपनाया है। तात्पर्य यह कि भारतीय अध्यात्म-चेतना अनादि काल से योग के प्रकाश-स्तम्भ से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पथ-निर्देश प्राप्त करती रही और अपने दीर्घकालीन इतिहास के किसी भी युग में उसकी उपेक्षा न कर सकी। यह उसके सर्वानुशासी प्रभाव का ही परिणाम था कि त्रिकाण्ड साधना के सभी अंगों ने उसे अपना कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई और कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग के प्रवाह से सम्पूर्ण भारतीय सत्कृति आप्लावित हो गयी।

मध्यकालीन वैष्णवमत में भक्ति को सर्वोपरि मानकर कर्म तथा ज्ञान को उसका साधन स्वीकार किया गया था। ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख उपादान होने से योग भी एक परिसीमित साधन के रूप में उसमें स्थान पा सका। परिसीमित इसलिये कि योग का स्वतन्त्र अथवा साम्य भानकर बसने वाले योगिमी-कौल-मतानुयायी तथा सहज्यानी एवं वध्ययानी बौद्ध सिद्धों द्वारा धर्म के क्षेत्र में फैलाये गये अनाचार और पाशण्ड से समाज में तिरोहित होनी हुई धर्म-साधना का ये वैष्णव भक्त प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाय-पंथ ने आरम्भ में अपने उच्च योगिक आदर्शों से इस पतनोन्मुख स्थिति को बहुत कुछ संभाला था। गोरक्षनाथ के योग में हठयोग और राजयोग दोनों सम्मिलित थे। किन्तु परवर्ती नाथ सम्प्रदाय में हठयोग का एकाधिकार-सा हो गया। वह ध्यान, धारणा तथा समाधि के अत्यन्त उपादेय तत्वों से विरहित हो गया, जो भाव-साधना के लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत करते थे। चमत्कार-प्रदर्शन में फँस-

कर वे योग-शक्ति का प्रयोग लोक-सम्मोहन के लिये करने लगे । इससे समाज में योग के प्रति व्याप्त श्रद्धा का स्थान भय और जातक ने ले लिया । इस प्रकार मध्यकाल के आरम्भ में योग-भूलक सारे पूर्ववर्ती सम्प्रदाय अपने आदर्शों से गिर-कर निर्जीव-से हो गये थे । उनमें उस चेतना तथा स्फूर्ति प्रदायिनी शक्ति का स्पन्दन समाप्त हो चला था, जो इस्लामी शासन तथा सत्त्वृति के प्रबल आक्रमण का प्रतिरोध करता और पतनोन्मुख समाज का उपयुक्त मार्ग-दर्शन कर नवीन आशाकाशाओं का संचार करता ।

वैष्णवभक्ति आन्दोलन के प्रथम उन्मेष के समय तक प्रतीत होता है कि इन दुर्बलताओं के बावजूद समाज में योग-साधना को पर्याप्त समादर प्राप्त था । संभव है, इसका कारण उस काल तक पर्याप्त सख्या में उच्चकोटि के योगियों की उपस्थिति रही हो, जिनके विचारों तथा आचार-व्यवहार से समाज का बहुदश आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करता रहा हो ।

उत्तरी भारत में वैष्णव भक्ति आन्दोलन के पुरस्कर्ता स्वामी राघवानन्द और उनके लोक-विधुत शिष्य स्वामी रामानन्द की उपलब्ध रचनाओं से यह पता चलता है कि उन्होंने अपने युग में लोक-धर्म के रूप में प्रचलित नाम सम्प्रदाय की योग-प्रवृत्ति का सरकार कर रामभक्ति साधना में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया ।

### आरम्भिक रामभक्ति काव्यों में योग

रामभक्ति साधना में योग तत्त्व का समावेश सख्त में रचित आरम्भिक रामभक्ति काव्यों में ही हो गया था । इसका विस्तृत साक्ष्य भुगुण्डि रामायण में उपलब्ध है । आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विक-सित भक्ति-परक रामकथा काव्यों में भुगुण्डि रामायण प्राचीनतम है । इसके पूर्व खण्ड में 'सीता' को योगिनी परमाफला कहा गया है,<sup>१</sup> सहमन को योगी के रूप में प्रस्तुत किया गया है,<sup>२</sup> ज्ञानमोक्ष की महिमा प्रतिपादित है,<sup>३</sup> योगियों की वैराग्यवृत्ति का राम वे धरित्र में उत्कर्ष दिखाकर राम के वैराग्य गुण का वर्णन किया गया है,<sup>४</sup> योग और तन्त्रों में मान्य 'सहजा भक्ति' के ध्यान का

१. भुगुण्डि रामायण, पूर्व खण्ड ४७।४६ ।

२. वही, ४४।१८ ।

३. वही, ४१३।५७ ।

४. वही, ४१८ ।

उल्लेख है।<sup>१</sup> उसके पश्चिम खण्ड में योग, कर्म और ज्ञान साधनाओं में योग साधना की श्रेष्ठता प्रतिपादित है।<sup>२</sup> उत्तर खण्ड में ब्राह्म कर्मों के द्वारा शरीर को साधने और उसके बाद मानसी भक्ति या मानसी सेवा का विधान है।<sup>३</sup> इतना ही नहीं कुण्डनिनी-आमरण-विधि और सहस्रार-नेदन का भी उल्लेख किया गया है। भक्तिमूलक ग्रन्थ होने के कारण इनके रचयिता ने योग के मूल आधार को ग्रहण कर उसकी स्वमत अनुकूल व्याख्या की है। उसने योग के दो भेद किये हैं—स्वाश्रय और पराश्रय। स्वाश्रय योग ज्ञान है और पराश्रय योग भक्ति। इनमें परे समरथ की साधना का संकेत है। यह समरथयोग ही महायोग है।<sup>४</sup> भृगुविद् रामायण पर भाक्त तन्त्रों तथा महायान बौद्ध धर्म की परवर्ती शान्ताओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सीता को सारा देवी में अभिन्न माना गया है। यह ग्रन्थ परवर्ती राम भक्ति काव्यों का मुख्य उपजीव्य है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तन्त्र और योग साधनाओं का समावेश रामभक्ति धारा में बहुत पहले ही हो चुका था।

अध्यात्म रामायण मुख्यतः वेदान्त का प्रतिपादन करता है किन्तु इनमें भी योग साधना के तत्त्व पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं। मुनि अगस्त्य ने राम को साधु पुरुषों के जो लक्षण बताये हैं, वे सबके सब योगियों के हैं। इस लक्षणों में 'यमादि' गुणों का भी उल्लेख है। यहाँ निर्विवाद रूप में योग के आठ अंगों की ओर संकेत किया गया है। अगस्त्य मुनि कहते हैं—“सद्यः से जो लोग सम्पद्-विषय में समान चित्त, स्पृहा रहित, पुत्रवित्तादि की इच्छाओं से रहित, इन्द्रियों का दमन करने वाले, शान्तचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओं में शून्य, इष्ट तथा अनिष्ट की प्राप्ति में समान रहने वाले, सद्गुरुहीन, समस्त धर्मों का त्याग करने वाले, सर्वदा ब्रह्म परामर्श रहने वाले, धर्म आदि गुणों से सम्पन्न तथा जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहनेवाले होते हैं, वे ही साधु हैं।” बालकाण्ड

१. वही, ६१४।

२. वही, पश्चिम खण्ड, पृष्ठ ६८।

३. वही, उत्तर खण्ड, पृ० १६।

४. वही, पृ० २१।

५. भृगुविद् रामायण, उत्तर खण्ड, पृ० २१।

६. वही, (सीता सहस्रनाम) पृ० ४६।२६।

७. अध्यात्म रामायण, अरण्य काण्ड, श्लोक ३६-३६, पृ० १२०।

के आरम्भ में अपने अवतार की घोषणा करते हुए भगवान् स्वयं सीता को 'योगमाया' कहकर सम्बोधित करते हैं। अरण्य काण्ड में भगवान् राम, लक्ष्मण को मोक्ष के साधन का उपदेश देने हुए कहते हैं—'ग्राह्य और धान्तरिक' बुद्धि रखना, सत्कर्मों में उत्पन्न रहना, मन वाणी और शरीरिक संयम करना, विषयों में प्रवृत्ति न होना—'...ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं।' ये विशेषताएँ योग-साधना के 'अन्तर्गत' आती हैं।<sup>१</sup> इसी क्रम में आगे चलकर उन्होंने स्पष्ट कहा है—'जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त-चित्त, निर्मल हृदय, शान्तात्मा, विमल ज्ञान सम्पन्न और मेरे परम मत्तः योगिजनों का संग अनन्य बुद्धि से सर्वदा उनकी सेवा में उत्पन्न रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है।'<sup>२</sup> उत्तरकाण्ड में लक्ष्मण को ज्ञान का उपदेश देने हुए भगवान् राम ने ध्यान और समाधि योग की उत्कृष्ट स्थितियों का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> उन्होंने लक्ष्मण को समझाया है कि आत्म-चिन्तन करनेवाले पुरुष को चाहिये कि एकान्त देश में इन्द्रियो को उनके विषयों से हटाकर और अन्तःकरण को अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मा में स्थित होकर और किसी साधन का आश्रय न लेकर शुद्ध चित्त हुआ केवल ज्ञान दृष्टि द्वारा एक आत्मा की ही भावना करे। X X X समाधि प्राप्त होने के पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण पराधर जगत् केवल ओंकार मात्र है। इसी वाण्ड में माता कौसल्या को उपदेश देते हुए भगवान् राम ने मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप 'कर्मयोग', 'ज्ञानयोग' और 'भक्तियोग' का उल्लेख किया है। भक्तियोग के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार गंगाजी का जल समुद्र में लीन हो जाता है उसी प्रकार जब मनोवृत्ति मेरे गुणों के आश्रय से मुझ अनन्त गुणधर में निरन्तर लगी रहे, तो वही मेरे निर्गुण भक्तियोग का लक्षण है। इस प्रकार अर्थात् रामायण से योग साधना के तत्त्वों को महत्व देने के अनेक प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं। यह अवश्य है कि अर्थात् में 'योग' के तात्त्विक अर्थ—'मन को शुद्ध, विकार रहित, द्वातातित और समत्वबोधयुक्त करनेवाले प्रकार—' को ही महत्व दिया गया है।

१. अ० २१० बालकाण्ड, सर्ग २, श्लोक २८, पृ० २७।

२. अर्थात् रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ४, श्लोक ३३।

३. अर्थात् रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग, ४ श्लोक ५५।

४. यही उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६-४८।

५. अर्थात् रामायण उत्तर, काण्ड सर्ग ७, श्लोक ६४, ६५।

अध्यात्म रामायण के बाद रामभक्ति परम्परा में साधना-तत्त्व एवं पूजा-विधि की दृष्टि से 'अग्रस्त्य संहिता' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें परात्पर तत्त्व का ज्योति रूप में ध्यान करने का उल्लेख है।<sup>१</sup> सदाशिव संहिता में कर्णिका युक्त सहस्रार नामक महापद्म के मध्य सीता सहित (शक्ति रूप सीता) राम के रत्न सिंहासन पर स्थित होने की बात कही गयी है और यह भी बताया गया है कि राम के इसी रूप का ध्यान रामभक्तों के लिये विहित है।<sup>२</sup> 'सदाशिव संहिता' उपलब्ध नहीं है, किंतु इसका कुछ अंश रामचरणदास जी ने 'रामनवरत्नसार सग्रह' में उद्धृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिनका अंश रामभक्तों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण था वह स्मृति परम्परा में जीवित रह गया। इन साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि रामभक्ति साधना एवं तत्त्वसम्बन्धी साहित्य में तत्र एवं योग साधना के तत्त्वों का समावेश हिन्दी रामभक्ति की परम्परा के आरम्भ होने से पहले ही हो चुका था और रामभक्तों के सामने उसके उपजीव्य ग्रंथ पहले से विद्यमान थे।

### साम्प्रदायिक रामभक्ति काव्य में योग

भक्ति-साधना का उन्मेष दक्षिण के तमिल प्रदेश के आलवार भक्तों से स्वीकार किया गया है। इन भक्तों में शठकोप आलवार को रामभक्त अपना प्रथम आचार्य मानते हैं। इनसे पूर्व चार आलवार विष्णु के उपासक थे। 'शठकोप' का तमिल नाम 'नम्म आलवार' है। नम्म आलवार ने 'आत्मा' की उपलब्धि के लिये 'योगसाधना' का महत्व स्वीकार किया है। उनका कहना है कि आत्मा अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसे योग द्वारा ही पहचाना जा सकता है। नम्म आलवार ने ही 'सहस्रगीति' की रचना करके सबसे पहले रामभक्ति को साम्प्रदायिक आधार प्रदान किया था। नम्म आलवार को मधुर भक्ति का प्रवर्तक माना जाता है। इससे प्रकट है कि मधुर भाव की भक्ति के साथ ही योग को उसमें समाविष्ट किया गया था। इसी परंपरा में आगे चलकर राघवानन्द हुए। इन्होंने उत्तर भारत में आकर रामभक्ति का प्रचार किया। राघवानन्द की विचार-धारा पर नापयोग का प्रभाव स्पष्ट है। इधर स्वामी राघवानन्द रचित सिद्धान्त पञ्च-

१. अग्रस्त्य संहिता पत्र ८६।

२. सदाशिव संहिता (रामनवरत्नसार सग्रह में उद्धृत)।

३. A History of Indian Philosophy Vol III S N. Das Gupta  
Page 80.

माना' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका दान घाटी, गोवर्द्धन के हनुमान मंदिर के महंत एवं रामानुज सम्प्रदाय के साधु श्री रामचरणदास जी से प्राप्त हुई है। पुस्तिका नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका में लिखा है—'ईनि श्री राघवानन्द स्वामी की सिद्धांत पंचमात्रा संपूर्ण' यह पुस्तिका राघवानन्द के समय की नहीं है। इसमें बबौर का उल्लेख है। किंतु यह निरवयव ही उन्हीं की साम्प्रदायिक परम्परा के किसी साधु की रचना है। इसके अनुसार स्वामी राघवानन्द का साधना मार्ग योग और प्रेम का समन्वित रूप है जो सनत्कुमार आदि ब्रह्मा के चार मानव पुत्रों द्वारा बसाया गया था।

सनक सनन्दन सननकुमार। योग बसायो अपरमपार ॥

प्रेम मुन सनकादिक चार गुरु भाई। ङङ कमण्डल जोग बसाई ॥

पीठा में राखे जोगेगुरु मतवाला। उरजे ज्ञान ध्यान प्रेम रस व्याला।<sup>१</sup>

इस पुस्तिका से सिद्ध होता है कि राघवानन्द की योग-साधना में पूर्ण गति थी। इसमें 'मुद्र' 'गगन' 'सुनकार' (अनाहत नाद) आदि योग सम्बन्धी पारिभाषिक पदों का भी प्रयोग हुआ है। इसका रचयिता हठयोग की प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों से पूर्ण परिचित है। वह कहता है—

चंद्र सूरज जमी असमान तारा मंडल भये प्रकास।

अचुन जोगी यह सनकार ॥

सुन्न गगन में ध्वजा फराई, पुछो सबद भयो प्रकास।

सुन लो सीधो सबद का बास।<sup>२</sup>

नाभादास की परंपरा में वैष्णवदास के शिष्य मिहीलाल (अनुमानत. १७वीं शती में विद्यमान) ने अपने 'गुरु प्रकारी' नामक ग्रंथ में राघवानन्द को 'अवधूत वैषधारी' बताया है—

धनि-धनि सो मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं।

श्री अवधूत वैष को धारे राघवानन्द सोई।

तिनके रामानन्द जग जाने कलि कल्याण भई ॥

इससे भी राघवानन्द पर योगमत के महत् प्रभाव की सूचना मिलती है।

राघवानन्द के शिष्य और उत्तरी भारत में रामभक्ति के उन्मादक स्वामी रामानन्द की जो हिन्दी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि वे योगविद्या में पारंगत थे। 'रामरक्षा' नामक अपनी छोटी-सी रचना में

१. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, परिशिष्ट, पृ० ४२।

२. वही पृ० ४४।



उन्होंने चराचर में व्याप्त श्रीनाथ निरञ्जन देव को नमस्कार किया है। उनकी रचनाओं से कुछ ऐसे पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं जो योग मत के महान ज्ञान के साक्षी हैं—

### रामरक्षा

समदिष्टि सम धर आणी प्राण आन । १

उदान आन भित्ति अनहद शब्द की धर पाई ॥ २

झिल-मिसा ज्योति स्फुटकार झलकता रहे,

नाद बिंद मिल भया रंगरेखा ।

× × ×

निरति सो निरति मिलि निरति सागी रहे,

सुरति सँ सुरति मिलि सुरति आवै । ७

× × ×

चित्त सो चित्त मिलि चित्त चेतन भया,

उन्मुनी दिष्टि सो भाव देखे ।

× × × १

कुण कुणी रुणरुणी सुमा झुरमी नाद,

सुपमन काछके साज माजा ।

चाचरी भूचरी पेचरी अगोचरी उन्मुनी,

पाँच मुदा साधते सिद्ध राजा ।

रामानन्द की यह योग-साधना उनकी भक्ति साधना का अग मान थी।

अपने 'भगति योग ग्रन्थ' में वे कहते हैं कि भक्ति योग के लिये सबसे पहले सब कुछ त्याग कर दृढ़ वैराग्य धारण करना चाहिये और इष्टदेव के प्रति पूर्ण विश्वास प्राप्त करना चाहिये। इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना चाहिये फिर चाहे घर में रहे चाहे वनवास करे।<sup>१</sup> भाषा-मोह, आशा-तृष्णा कलक-कामिनी को त्याग कर समचित्त होकर अनन्य भाव से निरञ्जन देव की मानसी पूजा करनी चाहिये। इस मानसी-पूजा-विधि की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—

ग्यान दीप ले आरती उतारै, घट अनहद सबद उचारै ॥

तन मन सकल अरपन करही । दोन होइ फुनि पावन परही ॥

१ तुलसीदास ने भी प्रकारांतर से इसकी पुष्टि की है—

घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय ।

तुलसी घर बन ओच रह, रामप्रेमपुर छाव ॥

ज्युं पतिव्रता रहै पीव पासा । यूं साहिब के ढिग रहै दासा ॥

कोठ देस भूमि भति जावो । पतिवरताऊ पति ले निरबावो ॥

स्पष्ट है कि श्री रामानन्द ने योग को वैराग्य वृत्ति एवं समचित्तता प्राप्ति के लिये आवश्यक माना था और आराध्य के प्रति दृढ़ एवं अनन्य प्रेम की साधना के लिये इसे साधन रूप में स्वीकार करके योग और भक्ति का अद्भुत समन्वय स्थापित किया था ।

### हिन्दी निर्गुण रामभक्तिधारा में योग

रामानन्द के बाद हिन्दी साहित्य में निर्गुण और सगुण भक्तिधाराओं का विकास हुआ । रामानन्द दोनों के प्रेरणा-स्रोत कहे जा सकते हैं । निर्गुण धारा के प्रख्यात सत 'कबीर' में भक्ति के साथ योग का पूर्ण समन्वय है । उन्होने भी 'राम' को अपना आराध्य माना है । परमात्मा के अनेक नामों की खर्चा करते हुए वे अन्ततः 'राम' को ही महत्व देते हैं । वे बार-बार राम-रस पीने और राम से मिलकर 'एकमेव' होने की बात कहते हैं । उन्होने योगियों के बाह्याङ्गवत् का विरोध भले किया हो, किन्तु योग के तात्त्विक रूप को पूर्णतः स्वीकार किया । मन के उन्मन होने, जप के अजपा में समाने, मुरति के विरति में लीन होने, सहज समाधि लगाने, और शिव-शक्ति के मिलने की बात कहकर योग को पूर्णतः समर्पण दिया है । कबीर के पूर्ववर्ती सतों में नामदेव का महत्वपूर्ण स्थान है । कबीर ने उनका श्रद्धापूर्वक नामदेव का स्मरण किया है । नामदेव, रामानन्द के समकालीन माने जा सकते हैं । नामदेव यो तो विद्वल भगवान् के उपासक थे, किन्तु उनके कई पदों में 'राम' के प्रति श्रद्धा निवेदन का भाव स्पष्ट ललित होता है । अपने एक पद में वे कहते हैं कि रे मन ! राम के सम्मुख भाव और योग एवं वैराग्यवृत्ति धारण करके ज्ञान-चिन्तन कर । राम के सम्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, शंकर, काल, नारद, सैंतीसो करोड़ देवता आदि सभी नाचते हैं । उन्हें विश्वास है कि मन को समर्पित करके राम के सम्मुख कर देने पर परमपद की प्राप्ति होगी ।<sup>१</sup> अपने अनेक पदों में उन्होंने रामनाम की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है । वे बार-बार कहते हैं कि हे सतों ! रामनाम के तुल्य कोई नहीं है । वे स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि मैंने रामनाम की सजीवनी बूटी प्राप्त कर ली है—

पायी मैं राम सजीवनि भूरी । गुरु मिल्यो बैद बिया गई दूरी ॥<sup>२</sup>

१ सत नामदेव की हिन्दी पद्यावली, पृष्ठ १३० ।

२ वही, पृष्ठ १६८ ।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा की गई श्रीरंग वन्दना,<sup>१</sup> श्रीरैणव वेप का वर्णन<sup>२</sup> दशरथ पुत्र रामचन्द्रजी की स्तुति,<sup>३</sup> रामनाम महामंत्र को जप तथा प्रपत्तिविद्वान्त में एकान्तनिष्ठा श्री वैष्णव सम्प्रदाय से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध आदि के साक्षी हैं ।

अतः सत नामदेव को भी रामभक्तों में स्थान दिया जा सकता है । कहना न होगा कि नामदेव की साधना में भक्तिरत्न की प्रधानता होते हुए भी योग की स्वीकृति है । सत नामदेव बारकरी सम्प्रदाय के सत हैं । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सत ज्ञानेश्वर नाथ सम्प्रदाय की परम्परा के अंतिम महाम् साधक थे । हिन्दी निर्गुण सत-परम्परा में रामभक्ति धारा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है । बबीर के बाद निर्गुण संतों में सर्वाधिक प्रभावशाली नानक ने भी 'अंतिम राम' की भक्ति की है और उनकी यह भक्ति योगकी त्रास्तिक विशेषताओं से युक्त है ।<sup>४</sup> इधर भीरा के भी रामभक्तिभावित कुछ पद प्राप्त हुए हैं ।<sup>५</sup> अन्य अनेक संतों ने भी रामकथा का निर्गुण भावपरक प्रतीकात्मक मतम्ब प्रकट करते हुए अपनी रामभक्ति का परिचय दिया है । इनमें गरीबदास, धनीदास, रज्जब, सुन्दरदास, मारी साहब, जगजीवन साहब, पल्लूदास, दरिया साहब, तुलसी साहब, देवकी नन्दन साहब, रघुनाथ दास रामसनेही, नवनिधि, लाला शिवदयाल सिंह, शिवप्रतलाल, जगन्नाथदास, भगवान् बरसदास, शारदा राम उवासीन आदि प्रमुख हैं । इन संतों में कई ने उसकी योग-परक व्याख्या की है । इस प्रकार निर्गुण रामभक्ति धारा में न केवल योग साधना का समावेश है, बरन् रामकथा की योग-परक प्रतीकात्मक व्याख्या भी की गयी है । निर्गुण संतों में कई ने षट रामायणों की रचना की है । इन रामायणों की सृष्टि निश्चय ही योगदृष्टि के आधार पर की गयी है । कुछ परवर्ती संतों ने तो रामकथा के पौराणिक सगुण रूप को भी स्वीकार कर लिया है । इनमें मल्लूकदाम, जग-जीवनदास, शिवनारायण साहब, देवकी नन्दन साहब, रघुनाथदास राम सनेही विशेष उल्लेखनीय हैं । इन सभी संतों ने भक्ति के साथ योगसाधना को भी

१. सत नामदेव की हिंदी पदावली, पृ. २५५ ।

२. हिन्दी साहित्य की भरपूर संतों की चेन, पृ. ३५४ ।

३. बही, पृ. २५३ ।

४. सत नामदेव की हिन्दी पदावली, पृ. ३६ ।

५. नानक की योगनिष्ठा के लिये दे० नानक वाणी, पृ. ५६४ ।

६. रामभक्ति परम्परा और साहित्य, पृ. १०५ ।

महत्त्व दिया है। तात्पर्य यह कि निर्गुण सत्ता की साधना में योग-भावना अनिवार्य रूप में उसकी एक तात्त्विक विशेषता के रूप में समाविष्ट है और इस प्रकार वे 'राम' भक्ति से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए हैं।

**रसिक रामभक्तिधारा में योग**

रसिक रामभक्तिधारा में योग का महत्त्व निर्विवादरूप से मान्य है। यों तो रसिकभक्ति का उन्मेष नम्माळवार से ही स्वीकार किया जाता है, किंतु उत्तरी भारत में रसिक भाव की भक्ति को एक व्यवस्थित साधना-पद्धति के रूप में प्रवर्तित करने का श्रेय अग्रदास को है। अग्रदासजी ने भक्त नम्माळवार से लेकर कृष्णदास पपहारी तक रसिक भक्ति साधना के बिखरे-भूतों को संयोजित कर उसे एक व्यवस्थित साधना-पद्धति का रूप दिया। नाथ सिद्धों में साधनदेह के रूप में योग-देह की कल्पना की गयी है। अग्रदासजी ने उसे ही साधनदेह भावदेह अथवा वेन्दवदेह के रूप में मानसी ध्यान का मुख्य उपादान निश्चित किया और इसी चिन्मय साधन, शरीर को पञ्चभाषोपासना का आधार माना। गोरक्षसिद्धांत सग्रह में भी इस देह का स्पष्ट निर्देश है—

देवैरपि न लभ्यते योगदेहो महानलः ।

छन्दबन्धैर्विमुक्ता सो नानाशक्ति धरः परः ॥

(पृ० ५१)

मयाऽऽकाशस्तथा देहः आकाशदपि निर्मलः ।

सूक्ष्मारसूक्ष्मतरो देहः स्थूलास्स्थूलो जटाञ्जलः ॥

(गोरक्ष सिद्धांत सग्रह पृ० ५३)

इतना ही नहीं, इस शरीर के द्वारा ज्येष्ठ युगल तत्त्व भी योग धारा का ही प्रसाद है—

ओंकार बिन्दु संयुक्त नित्य ध्यायन्ति योगिनः ।

तस्मिन् मध्ये स्थित तत्त्वं प्रदर्शयति सद्गुरुः ॥

(गो० सि०, स० पृ० २७)

अग्रदासजी से पहले रसिक परम्परा में अनन्तानन्दजी उल्लेख्य हैं। युगल-प्रियाजी ने रसिक-प्रकाश-भक्तमाल में उनकी रसिक समाधि का वर्णन करते हुए लिखा है—

औसू चलत समाधि में अद्भुत गति विरही महे ।

शिष्य किये बहु विरति रति तिनके गुन गन को कहे ।<sup>१</sup>

यह समाधि, योग युक्त भक्ति साधना का ही परिणाम है। अंतिम पंक्ति में अनेक विरलित में रति करने वाले शिष्यों की दीक्षा देने की बात कही गयी है, जिसका सीधा संबंध योग साधना की ओर ही है।

अनन्तान्द के शिष्य कृष्णदाम पयहारी थे। 'रमिक प्रवाण भक्तमाल' के अनुसार इनकी रामोपासना साख्य योग समन्वित थी।<sup>१</sup> इनकी एक छोटी-सी रचना 'राजयोग' प्राप्त हुई है। इसमें शुद्ध स्थान पर बैठकर एकाग्रचित्त से प्राणावाग प्रश्विया द्वारा अन्तर्ध्याति दर्शन की अनुभूति का क्रमबद्ध एवं सांगोपांग वर्णन किया गया है।

स्पष्ट है कि योगियों ने जहाँ निव स्थान मानकर शिव रूप परमस्व में लीन होने का प्रह्लाधीन होने की बात कही है, वहाँ रमिक भक्तों ने अपने इष्टदेव राम को प्रतिष्ठित कर उनके स्वरूप में लीन होने की अनुभूति की है।

कृष्णदास पयहारी ने शिष्य अग्रदासजी थे। अग्रदासजी की 'ध्यान मञ्जरी' रचित रामभक्तों का एक माधव ग्रन्थ है। इसमें महद्य महापद के मध्य में सर्वदेव शिरोमणि भगवान राम को सीता सहित शोभित बताया गया है और रमिक भक्तों ने लिये उनका इसी रूप का ध्यान विहित माना गया है। अग्रदासजी ने 'ध्यान मञ्जरी' की रचना 'सदाशिव सहिता' के आधार पर की है, जो तब शास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अग्रदासजी की 'ध्यान मञ्जरी'<sup>२</sup> की एतद्विषयक कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

स्वर्णशेखरा मध्य लक्ष्मी मकर रत्न विहासन ।

विहासन के मध्य परम अति पद्म गुहासन ॥

ठाके मध्य गुदेन वसिता सुन्दर राने ।

अति अद्भुत तर्ह तेज यदि सम जामा ज्ञाने ॥

ता मयि लोहित राम लीन इन्दीवर शोभा ।

अगिष रूप अशोचि अजरम कम तन की शोभा ॥

१. भक्त राजगुरु गुरुद्वार धीर आगत मुगदारी ।

का मन्त्रिदानन्द वामनिधि स्वतः कुपारी ॥

अग्रदासजी के बाद उनके शिष्य प्रश्विया तथा रमिक भक्तिधारा के अन्य भक्तों ने इस 'ध्यान पद्धति' की स्वीकार करते अपनी साधना में योग एवं प्रेम का सामाज्य स्थापित किया।

१. १० प्र० अ०, पृ० १३ ।

२. मेतक के निम्नी हस्तलेख सादर हैं ।

मर्यादावादी रामभक्ति में योग

रामभक्ति परम्परा में राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक मर्यादावादी भक्त तुलसीदास ने भी योग को महत्त्व दिया है। गीतावली में जनकजी के व्यक्तित्व की विशेषता का उल्लेख करते हुए विश्वामित्र कहते हैं—

रागळ विराग, भोग-याग जोगवन्त मन,

जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है ।

साते न तरनि ते न सीरे सुधाकरहू तें,

महज समाधि निरुपाधि निरवही है ।<sup>१</sup>

ज्योध्या काण्ड के आरम्भ में शंकर की वन्दना के बाद राम की जिस स्वरूप की वन्दना तुलसीदास ने की है, वह योगियों के समतत्त्व की धारणा के अनुकूल है। तुलसी ने सुख-दुःख में एकरस या समरस रहने वाली राम की मुखौती की वन्दना की है।

प्रसन्ता या न गताभिपेक्षस्तथा न मन्ते वनवास दुःखत ।

मुक्ताम्बुजआ रघुनदनस्य मे सदांशु सा मजुल मगलप्रदा ॥

यह समाधिलीन योगी की मन स्थिति के सर्वथा अनुकूल है—

नाभिजानाति शीताण्ण न दुःख न सुख तथा ।

न मान नापमान च-योगयुक्त भमाधिना ॥

सकाकाण्ड के मगनाचरण में राम की वन्दना करते हुए उन्हें तुलसीदास ने योगीन्द्र कहा है। मानस के ही उत्तरकाण्ड में ज्ञान-तत्त्व निरूपण करते हुए उन्होंने ज्ञानदीपक की जिस अक्षण्ड ज्योति की कल्पना की है, वही अक्षण्ड ज्योति योगियों द्वारा ध्यय है—

सौहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा । दीपसिन्धु सोऽह परम प्रचण्डा ॥<sup>२</sup>

स्पष्ट है कि भक्ति के प्रबल समर्थक होते हुए भी तुलसीदास, योग साधना के तात्त्विक महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

तुलसीदास के बाद राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक केशवदास ने भी योग-तत्त्व के महत्त्व को स्वीकार किया है। 'राम' के जनकपुर पहुँचने पर महाराज जनक जी स्वयं राजा और योगी दोनों थे, उनके जिस स्वस्व को देखते हैं, वह योगियों के चित्त में निवास करनेवाला समाधि दशा में अनुभूत परम तत्त्व ही है। वे कहते हैं—

१. तुलसी प्रपावली, भा० प्र० स०, पृ० ३१४ ।

२. मानस, अयो० का०, श्लोक—२ ।

३. मानस, उ० का०, पृ० ६५४ ।

सिद्ध समाधि सज्जे अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई ।

केशव गाधि के नन्द हमें वह ज्योति सो मूरतिवत दिखाई ।<sup>१</sup>

आधुनिक रामभक्ति काव्यों में भी योग साधना के बीज विद्यमान हैं। राम-चरित चिन्तामणि में रामचरित उपाध्याय ने राम राज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि राम के राज्य में लोग इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखते थे।

जहाँ इन्द्रियो को दबाने समी थे,

प्रजा को न राजा सताने कभी थे ।<sup>२</sup>

‘निराला’ ने राम की शक्तिपूजा में राम को योग-साधनारत दिखाया है। अन्तर्-लीन राम का मन पदचक्रों को भेदकर सहस्रार तक पहुँचता है। वह समाधिस्थ होते हैं और इसी स्थिति में वे शक्ति की आराधना करते हैं। योगी की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर ही राम शक्ति का हृद आराधन करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक रामभक्ति-काव्यों से लेकर आधुनिक युग के राम काव्यों तक में योग-साधना के तत्त्व अबाधगति से प्रवाहित निहित हैं।

वस्तुतः भारतीय धर्म साधनाओं के मूल में ही योग की सत्ता विद्यमान है। ये समस्त साधनाएँ अन्तरावलम्बित हैं। सभी का लक्ष्य जीवात्मा को परमात्मा में लय कर देना है। यह स्थिति चित्त की एकाग्रता और मन की अन्तर्मुखता पर ही निर्भर है। भक्ति साधना भावमूलक है। किन्तु भावात्मक तादात्म्य भी एक प्रकार की योग प्रक्रिया ही है। वैष्णव मत के आधार ग्रन्थ ‘भागवत’ में भी योग को भक्ति साधना में सहायक स्वीकार किया गया है। भक्ति-सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करने से उसमें योग तत्वों का समावेश स्पष्ट लक्षित होता है। वैद्यी भक्ति के पाँच अंगों—उपासक, उपास्य, पूजाद्रव्य, पूजाविधि और मन्त्र-जप पर विचार करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। उपासक के लिये हृदय-शुद्धि और शरीर-शुद्धि दोनों ही आवश्यक हैं। शरीर-शुद्धि के लिये स्नान, तिलक, मासा, आसन, पादुका इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, हृदय-शुद्धि के लिये प्राणायाम, गायत्री-जप आदि की। इनमें प्राणायाम और गायत्रीजप योग की ही प्रक्रियाएँ हैं। रसिक सम्प्रदाय में प्रभु प्राप्ति के लिये जिन साधनों का विधान किया गया है, उनमें योग की स्वीकृति स्पष्ट है। इस साधना में पाँच उपायों से प्रभु प्राप्ति समभव मानी गई है—१. कर्म, २. ज्ञान, ३. भक्ति, ४. प्रपत्ति

१. रामचद्रिका, छठवाँ प्रकाश पृ० ७६।

२. रामचरित चिन्तामणि, २३ सर्ग, पृ० २१२।

और ५. आचार्याभिमान । इनमें कर्म साधना के अन्तर्गत यज्ञ, दान, तप, हवन, सयम, अध्ययन, सन्ध्योपासना, जप, पवित्रता, चातुर्मास्य व्रत, अष्टांग योग, उपवास, अर्घ्य, धाद्य, तर्पण, तीर्थाटन आदि का विधान है । इस प्रकार रसिक रामभक्तों के भिये अष्टांगयोग की साधना प्रथम आवश्यकता है । शुभ कार्यों के अनुष्ठान से ही ज्ञान का प्रकाश समभव है । ज्ञान का प्रकाश होने पर साधक को अपने मानस में दिव्य-सिंहासन पर आसीन मणिमय वस्त्राभूषणों से अलंकृत युगलस्वरूप का ध्यान करना चाहिये । यह भक्तिमय ध्यान, योग तथा ज्ञान साधना का सहकारी है ।

भारतीय साधनाओं का विकास-क्रम कुछ इस प्रकार का है कि एक साधना में विवृति आने पर दूसरी साधना उसके मूल एवं तात्त्विक स्वरूप को आत्मसात् करके अपने को विकसित करती है या अपने तात्त्विक आधार को इतना व्यापक बना लेती है कि अन्य समानान्तर प्रतिष्ठित साधनाओं के उपयोगी एवं अनिवार्य तत्त्व उसकी सीमा में आ जाते हैं । इसीलिये हम देखते हैं कि भक्ति साधना में योग, कर्म और ज्ञान और साधनाओं के बीज सन्निहित हैं । रामभक्ति धारा में भी यह विशेषता विद्यमान है । योग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तात्त्विक महत्त्व को कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इसीलिए रामभक्ति-साधना में उसका समर्थन सर्वत्र लक्षित होता है । 'गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग, निगम नियोग तो सो केलि ही छरो सोहै'—बासी तुलसी की उक्ति के आधार पर कुछ लोग रामभक्ति को योग साधना का विरोधी समझते हैं । किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्रकृत सद्दर्श में गोस्वामीजी का आक्रोश योग साधना के उत्कृष्टतम विवृत रूप के प्रसारक योगियों पर है, परंपरया प्रतिष्ठित योग-दर्शन पर नहीं ।



## तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन

तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का व्यापक प्रभाव उनके जीवनकाल में ही समाज पर पड़े लगा था। इसके बाह्य प्रमाण तो उपलब्ध हैं ही, तुलसी साहित्य में भी ऐसे अनेक आत्मोल्लेख हैं जो कवि की एतद्विषयक सजगता घोषित करते हैं। जहाँ तक व्यवस्थित अनुशीलन का प्रश्न है तुलसी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान का सूत्रपात निश्चय ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ, जिसमें पहला नाम एच० एच० विल्सन का है। विल्सन ने सन् १८३१ (स० १८८८) में ए० स्केच ऑन दि रेलिजस सेक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज नामक निबन्ध 'ऐशियाटिक रिसर्च' में प्रकाशित कराया था। इस निबन्ध में तुलसी की जौति जन्म-स्थान, कार्यक्षेत्र, गुरु परम्परा, जन्म-तिथि, मृत्यु-तिथि और रचनाओं पर प्रकाश डाला गया था। इसकी मूचनाओं का आधार सम्भवतः नामादास का छाप्य, उस पर प्रियादास की टीका तथा अन्य अनुश्रुतियाँ थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास की सर्वप्रथम रूपरेखा प्रस्तुत करने वाले फ्रांसीसी विद्वान् गार्सी द तासी ने 'इस्वार दि ला लितरेत्योर इन्दुई ए इन्दुस्तानी' के प्रथम खण्ड (सन् १८३६ ई०) में तुलसीदासजी का जो जीवन परिचय दिया है, वह बहुत कुछ 'विल्सन की मूचनाओं पर ही आधारित है। उस क्रम में एफ० एस० ग्राउज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्राउज ने सन् १८७६ से लेकर १८८१ तक अथक परिश्रम करके 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद से पाश्चात्य देशों में तुलसी के काव्य-गौरव का प्रसार हुआ। इसकी भूमिका में तुलसीदास का जो जीवन परिचय दिया गया है, उसमें विल्सन द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए उनकी भूलों की ओर भी कुछ संकेत हैं।

तुलसी सम्बन्धी अनुसन्धान काय में युगान्तर उपस्थित करने वाले विद्वान् जार्ज ए० ग्रियसन हैं। सन् १८८५ ई० में उन्होंने वेन की अन्तर्राष्ट्रीय आरियण्टल कांग्रेस में 'हिन्दुस्तान का मध्यकालीन साहित्य विशेष रूप से तुलसीदास' शीर्षक महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़ा था। तब से लेकर सन् १९२१ ई०

तक वे बराबर तुलसी विषयक अनुसंधान में प्रवृत्त रहे। पहली बार उन्होंने ही कवि के जीवन-वृत्त एवं रचनाओं के निर्माण काल से सम्बद्ध तिथियों की व्योतिष के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर गणना कराई, कृतियों की प्रामाणिकता पर विचार किया, कवि के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अनुश्रुतियों का संग्रह किया, उसमें आत्मादासों की ऐतिहासिक परीक्षा की, कवि और सुधारक रूप का मूल्यांकन किया और 'रामचरितमानस' की मौलिकता का प्रतिपादन कर विद्वानों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों में विल्सन के आरम्भिक प्रयास को प्राच्यविद् ग्रियर्सन ने पराजिता पर पहुँचा दिया।

भारतीय विद्वानों में तुलसी के जीवन-वृत्त तथा कृतियों के अनुसंधान का मूलपात करने वाला में श्रीमहेशदत्त शुक्ल और श्रीशिर्षासिंह सेंगर उल्लेखनीय हैं। इनसे पूर्व तामादास के भक्तमाल, उसकी विविध टीकाओं तथा संस्कृत-हिन्दी के अनेक कवियों द्वारा किये गये प्रशस्तिपरक उल्लेख तुलसी के व्यापक प्रभाव के साक्ष्य होने पर भी आधुनिक ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन की कोटि में नहीं आते। श्री सेंगर ने सन् १८७७ में अपने 'सरोज' में कवि के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और रचनाओं का उल्लेख करने के साथ ही पसका (जिला गोडा) निवासी बेनीमाधवदास रचित 'गोसाईंचरित' की सूचना दी और इस प्रकार तुलसी के जीवन-वृत्त के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। सन् १८८५ ई० से 'रामचरितमानस' के सम्पादन का इतिहास आरम्भ होता है। श्री भागवतदास धत्री ने सन् १९१४ ई० और १९०५ ई० की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'रामचरितमानस' का सम्पादन किया। सन् १९०२ में चिन्तामणि घोष ने १० सुपाकर, द्विवेदी, बाबू राधाकृष्णदास, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिक-प्रसाद धत्री और बाबू अमीरसिंह द्वारा सम्पादित कराकर विस्तृत भूमिका में घोष उल्लास प्रकाशन कराया। कृतियों के बावजूद यह संस्करण एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में गमाइत है।

उन्नीसवीं शती के अन्त तक तुलसी सम्बन्धी अनुसंधान की मुख्यतः तीन दिशाएँ थीं—(१) जीवन-वृत्त का अनुसंधान, (२) व्यक्तित्व का मूल्यांकन और (३) कृतियों की प्रामाणिकता का निश्चय तथा पाठ-शोध। तुलसी की टीकाओं की परम्परा का आरम्भ बहुत पहले ही हो चुका था। इन टीकाओं से तुलसी की विद्या के अध्ययन में सहायता मिलती है। टीकाकारों ने तुलसी की कृतियों की व्याख्या करते हुए उनके मूल मन्त्रों को प्रकाशित करने का दावा किया है। प्रमुक्त टीकाकार निर्गतिता हैं—

- (१) महात्मा रामचरणदास—‘आनन्द लहरी’ टीका, १८२१ ई०
- (२) सन्तमिह पजाबी—भाव प्रकाश टीका, १८२१ ई०
- (३) शिवलाल पाठक—श्रीमन्मानस अभिप्रायदीपक
- (४) काष्ठजिह्वा स्वामी—मानस परिचर्या, १८६८ ई०
- (५) ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह—मानस परिचर्या परिशिष्ट, १८६८ ई०
- (६) सौतारामीय हरिहरप्रसाद—‘रामायण परिचर्या परिशिष्ट प्रकाश’, १८६८ ई०
- (७) ज्ञानी सन्तमिह—१८८८ ई०
- (८) बैजनाथ कूर्मवशी—‘मानस भूषण’, १८९० ई०
- (९) प रामेश्वर मट्ट—१८९९ ई०
- (१०) बाबू श्यामसुन्दर दास—१९०२ ई०
- (११) मुग्धी शुकदेव लाल—१९१२ ई०
- (१२) प० विनायक राव—‘विनायकी टीका’, १९१४ ई०
- (१३) प० महावीरप्रसाद मालवीय—१९२५ ई०
- (१४) अजनीनन्दन शरण—मानस पीयूष टीका १९३४ ई०
- (१५) प० विजयानन्द निपाठी—विजया टीका
- (१६) हनुमानप्रसाद पोद्दार—गीता प्रेस, मानसाक टीका, १९४० ई०
- (१७) श्रीकान्तशरण—‘सिद्धान्त सिलक’, १९४४ ई०

इन प्रयासों के बाद तुलसीदास और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में सुनियोजित अनुशीलन नियोजित हुआ, जिसके फलस्वरूप विभिन्न दिशाओं में अब तक शनाधिक अध्ययन किये गये हैं। सुविधा के लिये इन्हे निम्नलिखित वर्गों में रखकर विचार किया जा सकता है—

- (१) प्रेरणा स्रोतों का अध्ययन, (२) जीवन-वृत्त का अध्ययन, (३) रचनाओं की सख्या, तिथिग्रम और प्रामाणिकता का अध्ययन, (४) धर्म और साधना का अध्ययन, (५) विचारधारा का अध्ययन, (६) काव्य-शास्त्रीय मूल्यांकन, (७) भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, (८) मनोवैज्ञानिक अध्ययन और व्यक्तित्व विश्लेषण, (९) पाठानुोधन, (१०) अर्थानुसंधान और टीकापरक अध्ययन, (११) तुलनात्मक अध्ययन, (१२) सांस्कृतिक अध्ययन, (१३) प्रभावपरक अध्ययन, (१४) समग्र अध्ययन और (१५) आधुनिकता के सन्दर्भ में किये गये अध्ययन।

स्रोतों के अध्ययन में सबसे अधिक विचार और अनुशीलन ‘रामचरित मानस’ को लेकर किया गया है। इस सन्दर्भ में श्रीशकुमार वृत्त ‘मानस : बालकाण्ड के स्रोत’ (१९५७ ई०), शालीत वादवीर वृत्त ‘तुलसीदास रचित रामचरितमानस

का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन' (१९५६ ई०) तथा श्री सीताराम कपूर कृत 'रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत' आदि उल्लेखनीय प्रयास हैं। मानस के अतिरिक्त तुलसी की अन्य कृतियों में विनय पत्रिका, गीता-वली आदि के आधार ग्रन्थों का भी अध्ययन हो सकता है। किन्तु इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रयास अभी तक देखने में नहीं आया।

जीवन-वृत्त सम्बन्धी अनुसंधान में विद्वानों ने अपेक्षाकृत अधिक उत्साह दिखाया है। इस सन्दर्भ में आरम्भिक प्रयासों के अतिरिक्त इन्द्रदेवनारायण, सिंह, शिवनन्दन सहाय, रामकिशोर शुक्ल, बाबू श्याममुन्दर दास, रामनरेश निपाठी, प० रजनीकान्त शास्त्री, रामबहोरी शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प० चन्द्रबली पाण्डेय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामदत्त भारद्वाज, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह तथा डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इन अनुशीलनों में तुलसी के जन्म एवं गुरुभूमि के निर्धारण में जितना धम किया गया है, उतना उनकी जीवनी के अन्य सत्वों एवं घटनाओं की प्रामाणिकता की जाँच में नहीं। इनमें तुलसी के जीवनवृत्त सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं तथापि कतिपय विशिष्ट प्रसंगों में उत्तरोत्तर उलझाव बढ़ता ही गया है। मात्र जन्मभूमि के विषय में देखा जाय तो अयोध्या, काशी, हाजीपुर (चित्र-कूट), हस्तिनापुर (गडमुक्तेश्वर के पास), राजापुर, तारी, सोरो (रामपुर) और बनिया जैसे अनेक स्थानों को उनके पक्षधरों द्वारा गौरव प्रदान करने की चेष्टा की गयी है। भविष्य में और कौन सा स्थान इसका दावेदार हो जायेगा, नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति उनकी आध्यात्मिक शिक्षास्थली की भी है—मूकरवेश (गोण्डा) और सोरो दोनों ही उन्हें अपनाने में सक्रिय हैं। जीवन-वृत्त सम्बन्धी अन्य तथ्यों में जन्म-सवत्, जाति और आस्पद, माता-पिता, मूल नाम, बचपन, गुरु और शिक्षा, गार्हस्थ्य जीवन, वैराग्य, गुरु-परम्परा, विरक्त जीवन, निषण-तिथि आदि के निर्णय का प्रयत्न किया गया है, किन्तु इनमें से किसी के भी सम्बन्ध में सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सका है। इस सन्दर्भ में तुलसी के पर्यटन और उस क्रम में अनेक व्यक्तियों से उनके सम्पर्क तथा विभिन्न स्थानों में उनके टिकने के प्रमाण भी मिलते हैं। सम्बन्धित कागजपत्रों तथा जनश्रुतियों की व्यापक जाँच होनी अभी शेष है।

जीवन-वृत्त की भाँति ही तुलसी की कृतियों के अनुसंधान की ओर भी विद्वानों का ध्यान आरम्भ से ही रहा है। कृतियों की सध्या, रचना-तिथि, रचनाक्रम तथा प्रामाणिकता सम्बन्धी अनेक अनुसंधान हुए हैं, जिनमें डॉ० प्रियर्सन, प० रामगुलाम त्रिवेदी, मिथबधु, प० रामनरेश निपाठी, सद्गुरुशरण अवस्थी, डॉ०

रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में मतभेदों के बावजूद तुलसी की ६ कृतियाँ—रामचरितमानस, जानकी-मंगल, पार्वतीमंगल, गीतावली, वृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, दोहावली, बरवे रामायण तथा कवितावली की प्रामाणिकता सर्वमान्य है और तीन कृतियाँ—वैराग्य सन्दीपनी, रामाज्ञा, रामलला नहछू की प्रामाणिकता बहुमान्य है। 'तुलसी सतसई' को अर्थ प्रामाणिक माना गया है। इन कृतियों के रचनाक्रम एवं रचना-विधियों के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है और अन्तिम निर्णय आज तक नहीं हो सका है।

तुलसीदास की विचारधारा के अध्ययन को मुख्यतः दो वर्गों में रखकर देखा जा सकता है—(१) दार्शनिक विचारधारा और (२) सामाजिक-नैतिक विचार-धारा। दार्शनिक विचारधारा से सम्बन्धित अध्ययनों में डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्रकृत 'तुलसी दर्शन' (१९४८), डॉ० उदयमानुसिंह कृत 'तुलसीदर्शन मीमांसा' (१९६१ ई०), श्रीशकुमार कृत 'रामचरितमानस का तरव दर्शन,' रामदत्त भारद्वाज-कृत 'तुलसी दर्शन' (१९७१ ई०) आदि ग्रन्थ महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानों ने स्फुट निबन्धों में तुलसी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन किया है। इनमें प० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तुलसी के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में अभी तक अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सका है। कुछ विद्वान् उनकी कृतियों में अद्वैतवाद की व्याप्ति बताते हैं किन्तु बहुमत उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी मानता है। कुछ लोगों ने उन्हें दार्शनिकसम्बन्धवादी भी कहा है। इधर तुलसी को 'एकात्मवादी' भी सिद्ध किया जा रहा है। यह मतभेद जहाँ एक ओर तुलसी के चिन्तन की गहराई और अध्ययन की व्यापकता प्रमाणित करता है वहीं दूसरी ओर अध्येताओं के अध्ययन की सीमा को भी रेखांकित कर देता है। वस्तुतः तुलसी के दर्शन की व्याख्या किसी पूर्वांगत सिद्धान्त की सीमा में नहीं की जा सकती। उसके स्वतन्त्र अनुशीलन की आवश्यकता है।

तुलसी की सामाजिक, नैतिक विचारधारा सम्बन्धी अनुसंधानों में महेशप्रसाद चतुर्वेदी कृत 'तुलसी का समाज दर्शन' (१९६१ ई०), श्री विष्णुशर्माकृत 'तुलसी का सामाजिक दर्शन' (१९६२ ई०) श्रीवेजनाथसिंह कृत 'मानस का सामाजिक दर्शन' (१९६४ ई०), श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी कृत 'तुलसीदास की दृष्टि में नारी' (१९६७ ई०) तथा श्री चरणदास शर्मा कृत 'तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य' (१९७१ ई०) उल्लेखनीय हैं। इन अध्ययनों में कहीं-कहीं आधुनिक सामा-जिक आदर्शों को आरोपित करने की चेष्टा भी मिलती है, जो बहुत उचित नहीं

। ये अध्ययन इस सध्य के साक्षी हैं कि तुलसीदास लोककल्याण की भावना से मग्न जीवन दृष्टि अपनाकर साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे ।

‘धर्म एव साधना’ की विवेचना करने वाले शोधग्रन्थों में जे० ए० कार-ण्टर कृत ‘पियोलाजी आव तुलसीदास’ (१९१८ ई०), जे० एम० मैक्फीकृत ‘दी रामायण ऑव तुलसीदास’ (१९३० ई०), डॉ० सत्य नारायण शर्मा कृत ‘रामचरितमानस में भक्ति’ (१९७० ई०) डॉ० वचनदेवकुमारकृत ‘तुलसी के मक्त्यात्मक गीत’ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त श्रीराम अवतार कृत ‘राम भक्ति और हिन्दी साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति’ (१९६० ई०) तथा श्री रामनिरजन पाण्डेय कृत ‘राम भक्ति शास्त्रा’ (१९६० ई०) जैसे अध्ययन भी इस दृष्टि से उपादेय हैं । इनमें तुलसी की भक्ति को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है । आनुपंगिक रूप से तुलसी की धर्मभावना एवं भक्तिसाधना का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ अनेक हैं । इन ग्रन्थों के ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय व्योरे को अलग करके देखा जाय तो सबका प्रतिपाद्य प्रायः एक-सा ही है । सभी ने यह निर्णय देने की चेष्टा की है कि तुलसी को व्यक्ति और लोक-धर्म की सच्ची पहचान थी और उन्होंने उसके मर्यादावादी, शास्त्रसम्मत एवं उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा की है । तुलसी की भक्ति भावना उनकी समन्वयशील दृष्टि का परिणाम है और उन्होंने सभी प्रकार के विरोधों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है ।

तुलसी की कृतियों के काव्यशास्त्रीय अनुशीलन दो प्रकार के हैं । प्रथम प्रकार के अध्ययन वे हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के विशिष्ट अंगों अथवा पक्ष-विशेष को सामने रख कर तुलसी की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है । दूसरे प्रकार के अध्ययनों में तुलसी की कृतियों के आधार पर उनके काव्य-सिद्धान्तों को विवेचित करने की चेष्टा की गयी है । प्रथम वर्ग में डॉ० राजकुमार पाण्डेय कृत ‘राम-चरितमानस काव्य का शास्त्रीय अध्ययन’ (१९६३ ई०), डॉ० भाग्यवती सिंह कृत ‘तुलसी की काव्य-कला’ (१९६२ ई०) । डॉ० रमिय राव कृत ‘तुलसी का कथा शिल्प’, डॉ० विनयकुमार कृत ‘तुलसी का प्रगीत काव्य’ (१९६२ ई०), डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू कृत ‘रामचरितमानस की काव्य कला’ (१९७३ ई०), श्री नरेन्द्र-कुमार कृत ‘तुलसी की अलंकार योजना’ और डॉ० अम्बाप्रसाद ‘सुमन’ का ‘रामचरितमानस : वाग्वैभव’ विशेष उल्लेखनीय हैं । द्वितीय वर्ग में डॉ० राम-साल सिंह कृत ‘तुलसी-काव्य-दर्शन’, डॉ० योगेन्द्रप्रताप सिंह कृत ‘हिन्दी ध्वज्य भक्ति-काव्यः काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त’ प्रमुख हैं । जैसे इनका सम्बन्ध पूरे भक्ति काल से है फिर भी इनमें तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया गया है ।

उपर्युक्त कृतियों के अतिरिक्त आनुपूर्वगिक रूप से तुलसी की रचनाओं का काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने वाली निबन्धात्मक कृतियाँ अगणित हैं। अध्ये-  
ताओं ने यह प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास को काव्यशास्त्र का पूर्ण ज्ञान था और उन्होंने 'कदिस विवेक एक नहि मोरे' की घोषणा के बावजूद मूढमत एव  
पूर्ण काव्य-विवेक का परिचय दिया है।

हिन्दीतर रामकाव्यों से तुलसी की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की  
परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। सन् १९११ ई० में श्री एल० पी०  
टैसीटरी ने 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की कथा का तुलनात्मक  
अध्ययन' प्रस्तुत किया था। इधर यह प्रवृत्ति बड़ी है। इस सम्बन्ध में डॉ०  
रमानाथ त्रिपाठी कृत 'कृतिनास का बगला रामायण और रामचरितमानस का  
तुलनात्मक अध्ययन' (१९५७ ई०), श्रीमती कमला साकृत्यायन कृत 'महाकवि  
भानुभक्त के नेपाली रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक  
अध्ययन' (१९५९ ई०), श्री शिवकुमार शुक्ल कृत 'रामायणोत्तर संस्कृत काव्य  
और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६१ ई०), श्री जगदीश-  
नारायण कृत 'रामचन्द्रिका और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन'  
(१९६२ ई०), श्री एम० जार्जकृत 'तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध  
मलयालम कवि एटुत्तच्छन का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६२ ई०), डॉ० राम-  
प्रकाश अप्रवाल कृत 'वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन' (१९६६  
ई०), श्रीमती विद्या मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का  
तुलनात्मक अध्ययन' (१९६३ ई०), श्रीमती तुलसी मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामा-  
यण, अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस के नारी पात्रों का तुलनात्मक  
अध्ययन' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन विस्तृत तुलनात्मक अध्ययनों के अति-  
रिक्त तुलसी का मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाली अन्य कृतियों में भी कथातत्त्व,  
विचारधारा, भाव सौन्दर्य प्रसंग-रूपता, चरित्र-चित्रण आदि का विवेचन करते  
हुए प्रसंगवश तुलसी कृत रामायण की अन्य रामकाव्यों से तुलना की गयी है।  
इस प्रकार के अध्ययनों से तुलसी की मर्यादावादिता, काव्यमर्मज्ञता, समन्वय-  
शक्ति, रामनिष्ठा एवं नाटकीय प्रसंगों की उद्भावनाशक्ति उभर कर सामने आयी  
है और प्रकारान्तर से वह अध्येताओं के हृदय में आलोच्य कवि के प्रति आदर  
भाव की वृद्धि में सहायक हुई है।

तुलसीदास के काव्य का अनुसंधानपरक मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा उनके  
व्यक्तित्व का विश्लेषण अभी बहुत कम हुआ है। इस सन्दर्भ में श्री अविकाप्रसाद  
वाजपेयी की 'तुलसीदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' (१९६२ ई०),

डॉ० धीर सिंह की 'तुलसीदास की कार्यान्वित प्रतिमा' (१९६६ ई०) और देवेन्द्रसिंह की 'तुलसी का अन्तर्जगत' उल्लेखनीय वृत्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त डॉ० हरदारीलाल शर्मा और डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने भी स्फुट निबन्धों में तुलसीदास के काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष का विश्लेषण किया है। तुलसी सम्बन्धी शोध का यह क्षेत्र अभी तक अपेक्षाकृत अपेक्षित रहा है। 'विनयपत्रिका', 'गीता-वली' और 'कवितावली' के गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। तुलसी की कथा-योजना, पात्र-परिकल्पना, सौन्दर्य-चित्रण, संवाद-योजना तथा अन्य सभी काव्योत्कर्ष विधायक तत्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अपेक्षित है। मध्ययुग के इस सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि के काव्य में वैयक्तिक तथा सामाजिक मनो-विज्ञान से सम्बन्धित प्रभूत सामग्री निहित है। उसके अनुसंधान तथा विश्लेषण का कार्य मूल्यवान् सिद्ध होगा।

तुलसी की वृत्तियों, विशेषतः रामचरितमानस के पाठशोध का कार्य उत्ती-सर्वां शती के मध्य से ही आरम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रयासों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। परवर्ती प्रयास दो प्रकार के हैं : सन्तों और भक्तों के द्वारा संपादित ग्रन्थ और साहित्यिक विद्वानों के द्वारा संपादित पाठ शोध प्रक्रिया से निर्णीतपाठयुक्त ग्रन्थ।

सन्तों और भक्तों के द्वारा किये जाने वाले पाठ शोध का आधार निष्ठा और अर्थमुक्तुमारता रहा है। साहित्यिक विद्वानों के प्रयास दो प्रकार के हैं : प्रथम वे जिनमें वैज्ञानिक पाठशोध पद्धति का अनुसरण करते हुए भी अर्थ सगति को धरियता दी गई है तथा द्वितीय वे जिनमें वैज्ञानिक पाठ-शोध-पद्धति को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस सदर्म में भाला सीताराम, बाबू श्याम-सुन्दरदास, बाबू अजरलदास, भाला भगवानदीन, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पं० शम्भूनाथ चौबे तथा पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानों की सेवाएँ विस्मरणीय हैं। सन्तों और भक्तों में कोदवराम, भागवत-दास, अजनीनन्दनशरण, रामबालकदास, श्रीकान्तशरण, पं० विजयानन्द त्रिपाठी आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इस सदर्म में यह उल्लेख्य है कि तुलसी के द्वादश ग्रन्थों में अभी तक विशेष बल 'रामचरितमानस' के पाठशोध पर ही दिया गया है। अन्य वृत्तियों में से कुछ के ही पाठशोध के स्फुट प्रयास हुए हैं, जिनमें श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामचन्द्र शर्मा, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री विद्योगी हरि आदि के कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। किन्तु अभी तुलसी की वृत्तियों के पाठानुसंधान का कार्य अपूर्ण ही है और हम दोन में बहुत सम्भावनाएँ हैं।



प्रभाव लक्षित करने वाले अध्ययनों की संख्या भी सीमित है। छोटपरक तथा तुलनात्मक अध्ययनों में यथावसर तुलसी पर पूर्ववर्ती कृतियों के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु प्रभाव लक्षित करना स्रोत और समता लक्षित करने से भिन्न प्रकार का कार्य है। कोई भी व्यक्ति प्रभाव उससे ग्रहण करता है, जिसके प्रति वह खड़ा होता है। तुलसी ने जन कृतियों एवं कृतिकारों से प्रभाव ग्रहण किया होगा, जो किसी अंश में उनकी विचारधारा, निष्ठा, जीवन-दृष्टि एवं आदर्शों के प्रतिमान रहे होंगे। मुमुक्षु रामायण के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करने के क्रम में हम पंक्तियों के लेखक ने अनुभव किया कि अनेकशः स्थलों पर मुमुक्षु रामायण की उत्क्रिया और वाक्यांश ही नहीं, प्रसंग तक अविकल रूप में मानस में प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ववर्ती कृतियों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी तुलसीदास ने अपने आदर्शों के अनुकूल प्रभावित प्रसंगों में कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया है और वे परिवर्तन अनेक स्थलों पर मूल से भी अधिक आकर्षक बन पड़े हैं। विभिन्न प्रकार के पुष्पों से रस ग्रहण कर उसे विलक्षण स्वादयुक्त मधु का रूप देने में ही तुलसी के गूढ़त्व की सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम भक्त कवियों को प्रभावित भी किया है। अभी तक उनके प्रभाव क्षेत्र का अनुशीलन तो दूर, उसका सम्यक् सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है। निर्गुण एवं सगुण धारा के उत्तर मध्यकालीन काव्य पर तुलसी की गहरी छाप है। रामभक्तिधारा का ममत्त्व परवर्ती काव्य तो तुलसीरस से सर्वांगसिक्त है ही, १८वीं तथा १९वीं शती के राधा या कृष्णभक्त कवियों की रचना शैली पर भी तुलसी का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। तुलसी के काव्य एवं जीवन-दृष्टि पर भिन्न कृतियों एवं कवियों का प्रभाव है और तुलसी ने जिनको प्रभावित किया है, वे दोनों ही प्रकार के अध्ययन विवेकसदर्भ एवं अध्यवसाय साध्य हैं। इस दिशा में अभी भी शोध की पर्याप्त गुंजाइश है।

तुलसी की भाषा का अनुशीलन यो तो उनके कृतित्व के अध्ययन के साथ ही आरम्भ हो गया था, किन्तु उसके भाषा शास्त्रीय, वैज्ञानिक, काव्यशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक पक्षों का विस्तृत विवेचन बहुत पीछे आरम्भ हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम डॉ॰ बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी भाषा के विकास' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी के स्वरूप पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया था। डॉ॰ देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने 'तुलसी की भाषा' (१९५७ ई०) का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। श्री शिवपूजन सहाय ने अपने एक निबन्ध में तुलसी द्वारा प्रयुक्त त्रियायों पर उपयोगी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित तथा 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिकाओं में प्रसंगवश तुलसी की भाषा का सक्षिप्त किंतु गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। तुलसी और जायसी के समय में बहुत कम अन्तर है। रामचरितमानस और पद्यावत के रचना-स्थल भी पास-पास हैं। दोनों की भाषा भी प्रायः एक ही क्षेत्र की है। किंतु जहाँ तक उनमें प्रयुक्त अपभ्रंश शब्दों के स्वरूप एवं मात्रा का प्रश्न है, दोनों में पर्याप्त अन्तर दिखायी देता है। पद्यावत पर अपभ्रंश का जितना गहरा प्रभाव है, उतना मानस पर नहीं। इन दोनों कवियों की भाषा का तुलनात्मक अनुशीलन करके इसके कारणों की भीमासा होनी अभी शेष है। तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दों के कोशनिर्माण के भी छिट पुट प्रयत्न हुए हैं। इस संबंध में पहला उल्लेखनीय कार्य डा० सूर्यकान्त शास्त्री का है। डा० शास्त्री ने सन् १९३७ ई० में 'इडेक्स वर्बोरम ऑव दितुलसी रामायण' प्रस्तुत किया था। न्यूनताओं के बावजूद यह ग्रंथ आज भी उपयोगी है। डा० भोलानाथ तिवारी का 'तुलसी शब्दकोश' भी एक सत्प्रयास है। मानस के शब्दों की गणना करके उसका प्रकाशन ओरछा नरेश की आज्ञा से टीकमगढ़ के प० बालकृष्ण देव तैलंग ने किया था। इसके अनन्तर प० रामनरेश त्रिपाठी ने गीता प्रेस की प्रति के आधार पर मानस की शब्द सख्या निश्चित की। दोनों में बहुत अन्तर है। इधर श्री बागोशदत्त पाण्डेय का 'मानस सदर्म कोश' प्रकाश में आया है। तुलसी साहित्य के अनुशीलन में इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। मोहिनी श्रीवास्तव ने 'रामचरितमानस की वर्णानुक्रमिका' प्रस्तुत की है। इन सभी कार्यों से तुलसी की भाषा की प्रकृति की अवधारणा में सहायता मिल सकती है। वस्तुतः भाषा-प्रयोग की दृष्टि से भी तुलसी ने युग-विधायक का कार्य किया है। उनके भाषा-प्रयोग के पीछे समस्त वैष्णव भक्तिआन्दोलन का संस्कार निहित है। वैष्णव भक्ति आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप परिवर्तित युगचेतना के परिप्रेक्ष्य में उनकी भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है।

तुलसी की कृतियों के अर्थानुसंधान और टीकापरक अध्ययन की परंपरा भी पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। इस क्षेत्र में दो प्रकार के प्रयत्न हुए हैं— साम्प्रदायिक और साहित्यिक। साम्प्रदायिक टीकाएँ प्रायः साधनागत निष्ठा के आधार पर लिखी गयी हैं। इनमें सर्वाधिक संख्या तुलसी की लोकविश्रुत कृति 'रामचरितमानस' की टीकाओं की है। महात्मा रामचरणदास, प० शिवसाल पाठक, काष्ठजिह्वा स्वामी, प० रामकुमार, महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह, हरिद्वारदास, वैजनाथ कूर्मवशी, ज्ञानी सत सिंह, भुगी शुकदेव लाल, प०

रामेश्वर भट्ट, रामप्रसाद शरण, प० विनायक राव, बाबू श्यामसुन्दरदास, अजनीनन्दन शरण, श्रीकांतशरण, प० विजयानन्द त्रिपाठी, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि मानस प्रेमियो द्वारा तुलसी का मर्म उद्घाटित करने की दिशा में किया गया अशदान अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इनमें से समन्वित दृष्टि से लिखी गयी टीकाओं में श्री अजनीनन्दन शरण की 'मानस पीयूष' और 'विनय पीयूष' टीकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। तुलसी की अन्य कृतियों की साहित्यिक टीकाओं में लाला भगवान दीन, बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री वियोगी हरि, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, श्री देवनारायण द्विवेदी, श्रीवान्तशरण तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओं का नाम लिया जा सकता है। इनका अध्ययन भी तुलसी साहित्य के अनुशीलन का एक आनुषंगिक पक्ष है। श्री त्रिभुवननाथ चौबे ने मानस की टीकाओं का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो अभी तक अप्रकाशित है। वस्तुतः टीकाओं का अध्ययन स्वयं में एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है। अभी तक मात्र 'रामचरितमानस' की केन्द्र में रह कर ही टीकाओं का अध्ययन किया गया है। अन्य कृतियों को टीकाओं का अनुशीलन अवश्य ही उपादेय होगा।

तुलसी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन अधिक नहीं हुआ है। प्रायः मध्य-कालीन काव्यों के सांस्कृतिक मूल्यांकन के सदर्भ में तुलसी का अध्ययन भी आनुषंगिक रूप में किया गया है। स्वतंत्र रूप में तुलसी साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन के सदर्भ में डॉ० रघुराजशरण शर्मा द्वारा 'तुलसीदास और भारतीय संस्कृति' (१९६१ ई०) उल्लेखनीय कृति है। तुलसीदास की रचनाओं में मध्य-कालीन संस्कृति का अक्षय कोष निहित है। पूर्व मध्यकालीन साधनाओं, विशेषतः छान्दिक नायपदी एवं निर्गुण संप्रदाय ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में तुलसी साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका सम्यक् आकलन होना चाहिये। तुलसी साहित्य पर समसामयिक सामन्ती संस्कृति का प्रभाव भी कम नहीं है। उनकी कृतियों के विषय तथा शैली दोनों पक्षों पर लोक संस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव है। तुलसी का मन जातीय संस्कारों के वर्णन में बहुत रमा है। उनकी प्रवृत्ति एवं प्रेरणा-स्रोतों को हृदयगम किये बिना मगल काव्यों की भीमासा हो ही नहीं सकती। रामलला महल के मूल्यांकन में गण्यमान्य विद्वानों द्वारा प्रबन्ध दोष, ठेठ शृङ्गारिकता आदि को लेकर तुलसी की काव्य-प्रतिभा पर किये गये आरोप बहुत-कुछ इस सखित दृष्टि के ही प्रतिफल हैं।

तुलसी साहित्य के अध्येताओं में कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जिन्होंने उसका समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनमें मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, प०

रामनरेश त्रिपाठी, प० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० राजपति दीक्षित, डॉ० उदयमानु सिंह प्रमुख हैं। आलोच्य कवि की रचनाओं का जितना अध्ययन हुआ है, वह उस अकूत सम्भावना को देखने हुए नगण्य कहा जा सकता है जिसको तुलसी-साहित्य अपने में छिपाये हुए है। प्रस्तुत सन्दर्भ में इस बात की ओर ध्यान बरबस जाता है कि तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञों में एक ऐसा व्यक्ति भी रहा है, जिसका तथ्यपरक शोध का कोई मुखर दावा तो नहीं है, किन्तु तुलसी के जन्म-स्थान, उनके माता-पिता, कृतियों की मूल्या, पाठ आदि के सम्बन्ध में प्रसंगत किये गये उसके संकेत बड़े-बड़े शाब्द प्रयत्न की प्रेरणा बन सकते हैं, और बनते रहे हैं। इसी प्रकार भारतीय धर्म माधना की सुदीर्घ परम्परा में तुलसी का स्थान रेखांकित करने से लेकर उनके अन्तर्जगत् का विशद उद्घाटन करने तक का काम उसी एक व्यक्ति के द्वारा सर्वाधिक गौरवास्पद रूप में सम्पन्न हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नाम आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का है। इस प्रकार के आलोचनात्मक प्रयासों में तुलसी सम्बन्धी अध्ययनों का विरलेपण और तुलसी साहित्य के अध्ययन के आधारों की परीक्षा के साथ ही उनके जीवन-वृत्त, कृतियों का पाठ, कृतियों का काल-क्रम, शैली, दर्शन, युग-प्रभाव, काव्य-सिद्धान्त, भाषा, समाज-दर्शन आदि विभिन्न तत्वों पर विचार किया गया है। आलोचकों का निष्कर्षित मत है कि तुलसीदास महाकवि थे। सौन्दर्य और मंगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दर्शन का सामन्तत्व उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह संतोष का विषय है कि जहाँ तुलसी के जीवन-वृत्त सबंधी तथ्यों में किसी पर भी विद्वानों का मतैक्य नहीं है, वहाँ उनके काव्य-गौरव के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं।

तुलसी साहित्य का अध्ययन आधुनिकता के सन्दर्भ में भी किया जा रहा है। अनेक गोष्ठियों में तुलसी की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया गया है। यह शुभ लक्षण है। इस प्रकार के प्रसंगों का उठाया जाना ही तुलसी की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आधुनिकता के सन्दर्भ में किये गये अध्ययनों में डॉ० चन्द्रभान रायस वृत्त 'तुलसी साहित्य : बदलते प्रतिमान', डॉ० रमेश कुन्तल मेघ वृत्त 'तुलसीदास : आधुनिक वातायन से' तथा डा० युगेश्वर वृत्त 'तुलसी-दास : आज के सन्दर्भ में' उल्लेखनीय हैं। आलोचकों का नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होना स्वाभाविक है और नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होने पर प्राचीन कृतियों को भी उसी दृष्टि से देखना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि इस प्रकार के अध्ययनों में तुलसी साहित्य के वे तत्व असंगत प्रमाणित हो जायें जिनका समावेश तत्कालीन परिस्थितियों के आद्द से किया

गया था किन्तु यह भी सम्भावित है कि उसमें निहित कालजयी तत्व इन अभिनव प्रकाश किरणों से और भी आलोचित हो जाएँ ।

तुलसी के व्यक्तित्व विश्लेषण के प्रसंग में कुछ अनुसंधितगुणों ने उनके अद्यावधि उपलब्ध विभिन्न चित्रों की प्रामाणिकता पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं । इस क्षेत्र में धीरे कवि तथा प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के प्रयास विशेष महत्व के हैं । नागरी प्रचारिणी सभा, (फाँसी) द्वारा प्रचारित भद्रवेश धासा चित्र अब प्रायः सर्वमान्य हो गया है किन्तु अवधूत बेध बासा किशनगढ़ शैली का जटायुक्त चित्र भी आकृति साम्य के कारण स्वीकार्य हो सकता है । रामानन्दीय वैष्णवों में भद्र तथा अवधूत दोनों बेध विहित माने जाते हैं । तुलसी के सम्बर्धन में उक्त दोनों बेधों के चित्रों को मान्यता इस आधार पर दी जा सकती है कि एक मध्य वय का और दूसरा परिणत वय का प्रतीत होता है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मूल उद्देश्य तुलसीदास और उनके साहित्य से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य की विविध दिशाओं की ओर संकेत मात्र रहा है । इस महाकवि के विराट् व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आकलन का प्रयास अत्यन्त व्यापक तथा दीर्घकाल व्यापी रहा है । सब का मूल्यमंकन इस छोटे-से निबन्ध की सीमा में सम्भव नहीं है । विभिन्न पक्षों से सम्बद्ध शोध-कार्यों का निर्देश करते हुए संक्षेप में उनकी उपादेयता और महत्त्व की ओर भी इंगित कर देना अपना लक्ष्य रहा है ।

अन्त में तुलसी साहित्य के उन पक्षों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा जिनमें शोध के लिए पर्याप्त अवकाश है ।

तुलसी के जीवन-वृत्त पर आप्रहस्युक्त होकर विचार करने की आवश्यकता है । उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में निर्णय करते हुए ऐसे भाषा प्रयोगों पर ध्यान देना अपेक्षित है जो परिनिष्ठित अवधी या ब्रज के रूप में न होकर ठेठ बोली के प्रयोग हैं । ऐसे प्रयोग उनकी आरम्भिक कृतियों में लक्षित किये जा सकते हैं । बोली में क्षेत्रीय संस्कारों की गंध होती है । इस गंध को पहचानकर तुलसी की जन्मभूमि और बाल्यकालीन निवास स्थान के सम्बन्ध में निर्णय किया जा सकता है । तुलसी साहित्य के समस्त स्रोतों की शोध अभी पूरी-पूरी नहीं हो सकी है । तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी रचना-प्रक्रिया और उनकी कृतियों में परम्परा और प्रयोग के स्वरूप का यथोचित विश्लेषण भी अभी तक नहीं हुआ है । तुलसी का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । इस प्रभाव की मीमांसा होनी चाहिए । तुलसी के सम्बन्ध में परवर्ती कवियों ने जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे उनके व्यापक प्रभाव की सूचना देती हैं । इन प्रशस्तियों का सक-

सन एवं विवेचनात्मक अनुशीलन अपनेआप में एक स्वतंत्र शोध-कार्य का विषय है। तुलसी की प्रेरणा से रामलीला-साहित्य की एक अलग परम्परा ही चल पड़ी थी। कुछ ने तुलसी मानस को ही लीला के अनुसार रूपान्तरित कर लिया और कुछ ने उनके द्वारा सयोजित घटना-क्रम को ज्यो-का-त्यो स्वीकार करके स्वरचित छंदों के माध्यम में रामलीला-काव्य की रचना की। तुलसी के सामाजिक सघटन सम्बन्धी कार्यों का मूल्यांकन इन लीलाओं के स्वरूप और इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है।

तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में भी अभी शोध की आवश्यकता है। 'गीतावली', 'दोहावली', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' आदि कृतियों को अन्तिम रूप कब मिला, इसका निर्णय अभी तक नहीं किया जा सका है। तुलसी के साहित्य पर तत्त्व-दृष्टि से भी विचार और अनुसंधान हो सकता है। इस महा-कवि ने न केवल भारतीय काव्य-सिद्धान्तों के श्रेष्ठ उपादानों से अपनी रचनाओं को अलङ्कृत किया है वरन् अपनी प्रतिभा के बल पर काव्यशास्त्र के निर्माण की प्रचुर सामग्री भी प्रस्तुत की है। उनकी कृतियों को दृष्टि में रखकर लक्षण-निर्माण करने से एक संक्षिप्त काव्यशास्त्र तैयार किया जा सकता है। इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ भी है। तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य के सम्बन्ध में शोध के अगणित वातायन अब भी खुले हैं। कृतसकल्प, अध्यवसायी और विवेकशील अनुसंधाताओं के लिये आज तुलसी का साहित्य एक चुनौती है। तुलसी विषयक खोज को वृत्ति के लिये स्वीकार करने के स्पृही अर्थार्थी अनुसंधारसुओं की एक लम्बी कतार दिखायी दे रही है, किन्तु प्रवृत्ति के रूप में उसे अपनाने वाले जिज्ञासु साधक विरल हैं। तुलसी ने भक्ति साहित्य के शोधार्थियों के निमित्त स्वयं कुछ अर्हताएँ निश्चित की हैं। मेरे विचार से उनके अभाव में तुलसी के व्यक्तित्व तथा साहित्य के अन्तः एव बाह्य स्वरूप का समीक्षात्मक हो ही नहीं सकता—

भर्मो सज्जन सुमति कुदारी । जान विराग नयन उरगारी ॥

भाव सहित छोदैं जो प्रानी । पाव भगति भनि सब सुख छानी ॥

भारतीय सत्सृष्टि के सज्जन प्रहरी इस क्रान्तदर्शी कवि के भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की गहराइयों में निहित असंख्य सत्त्वरत्न अब भी इन उपकरणों में सुसज्ज खोजी की बाट जोह रहे हैं।

सरल सुधीस भाव के भूखे घरम नेम घत धारी ।  
नाचत गावत परम हर्ष से बैठि बजावत तारी ।  
कोळ पसारत कोळ सिंगारत कोळ चँवर कर डारी ।  
कोळ गावत कोळ बरय बटावत ललित कथा ।  
चरण शरण सब विधि से जिनु  
जान 'देव' इनके माँगन रे

इससे मिथिला के विस्थापित  
सकता है ।

राम-भक्तों का भागो मे भी उनका प्रसार हुआ ।  
प्रथम रसिकाचर्य अग्रदास के शिष्य  
रैवासा (राजस्थान) से आकर चि-  
बनाई थी । प्रसिद्ध है कि  
वहाँ देवी ने स्वप्न मे दर्शन  
श्रीगृष्णदास की कृपा प्राप्त करने की  
दास-विरचित 'भ्यानमजरी' का  
जिसके फलस्वरूप इन्हें अविरत रा-  
और सारा कृतास्त गुरुचरणों मे निवेदन  
इन्होंने अयोध्या होते हुए मिथिला की  
सद्वर्ती 'चिरान' को अपनी  
से लौटकर ये इती  
एक

स्वा  
इनके  
ने शिष्य ऐनोराम  
है । ये  
विद्रोही सामंत का दमन  
चिरान के समीप वहीं

- १ मिथिलाबिन्दु (
- २ रसिकप्रकाश भक्तमास,

दासजी की गद्दी की पूजा मानी । नाव सकुशल पार हो गई । शत्रु को पराजित करके ऐनीराम चिरान की गद्दी का दर्शन करने गये । इसी समय उन्हें पुत्र की मृत्यु का दुःख समाचार मिला । उनके मन में इस समाचार ने तीव्र विरक्ति उत्पन्न कर दी । सेना को उच्च कर्मचारियों के साथ बिदा करके वे चिरान में रह गये । बादशाह ने इनकी कार्य-कुशलता पर प्रसन्न होकर भरण-पोषण के लिए जलपुर और जलालपुर नामक दो गाँव दिये । ऐनीराम ने उन्हें, गद्दी को, सत्-सेवा के लिए समर्पित कर दिया । इनके दो पट्टशिष्य थे—भगवानदास और कृपाराम अथवा भगनीराम । भगनीराम के शिष्य भोजीराम गद्दी के उत्तराधिकारी हुए । बिहार में कतिपय रसिक-परंपराओं के संस्थापक रामगुलेला इन्हीं के शिष्य थे ।

श्यामदासजी के प्रशिष्य और चितामणिदास के शिष्य तेजाराम ने खलपुरा में अपनी अलग गद्दी स्थापित की । मूरदास इन्हीं के शिष्य थे । इन्होंने चरणदास को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । चरणदास के प्रथम शिष्य रामेश्वर खलपुरा के पीठाचार्य हुए और द्वितीय शिष्य ब्रजमोहन चिरान के । इनके शिष्य एवं प्रशिष्य क्रमशः देवादास और गंगादास भी यहीं बस गये ।

बिहार में द्वितीय रसिक गद्दी की स्थापना मिथिला में हुई । इसके प्रवर्तक महारामा सूरकिशोर थे । मिथिला के लुप्तप्राय तीर्थों के उद्धार का श्रेय इन्हीं को है । जीवाराम जी ने इन्हें अग्रदासजी के बड़े पुत्र-भ्राता कील्हदासजी का पौत्र शिष्य बनाया है । किन्तु, इनकी मिथिला-स्थित गद्दी की जो परंपरा इन पत्रिकाओं के लेखक को प्राप्त हुई है, उसमें ये कील्हदाम की पंचवी पीढ़ी में आते हैं ।<sup>१</sup> श्रियर्चन महोदय ने इन्हें सं० १७०३ के आसपास वर्तमान माना है ।

इनका जन्म जयपुर के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था । तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह द्वारा गनता के आचार्य मधुराचार्य के प्रति किये गये दुर्व्यवहार से लज्जित होकर वे सीकर चले गये और सती की किसी जमात में रहने लगे । जानकीजी के प्रति इनकी वात्सल्य-निष्ठा थी । भावावेश में पुत्री के विग्रह को साथ लिये हुए बाजारों में वे प्रायः उनके लिए खिलौने, मिठाइयाँ आदि खरीदने निकल जाया करते थे । इनके सहवासी साधुओं को जगन्माता में पुत्री का भाव रखकर उन्हें साथ लिये इतका धूमना अच्छा न लगा । एक दिन इन लोगों ने यह भूति गायब कर दी । सूरकिशोरजी 'पुत्री' की वियोग-व्यथा से उद्विग्न होकर

१. कील्हदास—परमानंददास—माधवदास—खेमदास—सूरकिशोर । (मिथिला विज्ञान का परिशिष्ट १)



मिथिला चले आये और यहाँ साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे । साम्प्रदायिक प्रयो के अनुसार जानकीजी की वह मूर्ति मिथिला में एक बट-वृक्ष के नीचे पुन प्रकट हुई । उन्होंने उसे अपनी कुटी में स्थापित किया, उनके एक छंद में इस घटना का संकेत मिलता है—

मिथिला कलि काल प्रसी सगरी तब जानकी जू झट दै उधरी ।

सतसग विलास कया चरबा नित आनंद मंगल होत सरी ॥

अनसोधन सो पट मूपन सो मुखसपति मंदिर आन घरी ।

कह 'सूरकिशोर' वृषा सिय की यकवारहि बात सबै सुधरी ॥'

जनक-भावापन्न होने के कारण ये जब कभी अयोध्या जाते, तब वहाँ का अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे । सम्बन्ध-गौरव का निर्वाह ये आजीवन करते रहे । कहते हैं, एक बार इष्टदेव द्वारा वर-याचना का अनुरोध करने पर इन्होंने 'दामाद' से कुछ माँगना कुल-परम्परा के विरुद्ध बताते हुए कहा था—

निबही तिहूँ लोक में 'सूरकिशोर' बिजै रज में निमि के कुल की ।

जस जाइ लग्यो सत दीप लौं कान कया कमनीय रसातल की ॥

मिथिला बसि औष सहाय चहै ती उपासक कौन कहै भल की ।

जिनके कुल बीच सपूत नहीं करें आस दमादन के बल की ॥

इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'मिथिला-विलास' है । इसके सरस छन्दों में वात्सल्य-भाव की अभिव्यक्ति के साथ ही तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति की झलक मिलती है ।

सूरकिशोरजी के उत्तराधिकारी एवं सर्वाधिक ख्यात शिष्य प्रयागदास थे । रसिकसाधना में ये 'जनकपुर के सखा-भाव' के प्रवर्तक माने जाते हैं ।<sup>१</sup> गुरु के सम्बन्धानुसूल ये भाव से अपने को निमिचरी और सीताजी का भाई मानते थे । इस नाते राम इनके बहनोई हैं । इस सम्बन्ध का निर्वाह इन्होंने आजीवन किया । इनकी जन्मभूमि का पता नहीं चलता । रसिकप्रकाश भक्तमाल के अनुसार वान्यावस्था में ही में विरक्त होकर ये प्रयाग तथा काशी होठ हुए जनकपुर पहुँचे और महात्मा सूरकिशोर से श्रृङ्गारो उपासना का रहस्य प्राप्त किया । इसके पश्चात् ये कुछ दिनों तक नर्मसखा के रूप में मिथिमा के गाँवों में बानकों के साथ खेलते रहे । बड़े होने पर

१. मिथिला विलास, छ० ६३ ।

२. वही, छ० १८ ।

३. रामभक्ति में रसिक-सप्रवाय, पृ० ४०३ ।

सूरकिशोरजी ने इन्हे करवा लेकर 'पुत्री' का हाल-चाल लेने के लिए अयोध्या भेजा। यहाँ इनका मन रम गया। अयोध्या के दास्य-भावना के भक्तों तथा अन्य नागरिकों में ये 'मामा प्रयागदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनकी विरक्ति माशना इतनी तीव्र थी कि अयोध्या-वास करते समय ये सदैव निःसंग और निर्लस रहे। किसी के आश्रय में रहना इन्हें पसंद न था। गुरु का दिया हुआ करवा ही इनके पास एकमात्र पात्र था, नीम के वृक्ष की छाया ही अकेला आश्रय और आकाशवृत्ति ही एकमात्र उदर-पूर्ति का साधन। उन्हीं के नीचे बाराहो महीने इनकी चारपाई पड़ी रहती थी। ये मौज में आकर गाया करते थे—

नीम के नीचे छाट पड़ी है छाट के नीचे बरवा।

'प्रयागदास' अलबेला भोवै रामलला के सरवा ॥

अयोध्या में कुछ वर्षों तक इस प्रकार मेहमानों करके प्रयागदाम पुनः मिथिला लौट गये। वहाँ से गुरु की अनुमति लेकर ये प्रयाग आये और त्रिवेणी-संगम पर रहने लगे। एक दिन रामचरितमानस की कथा में इन्होंने व्यास के मुख से रामवन गमन का प्रसंग सुना। बहल और बहनोई के वनवास का समाचार समाचार सुनते ही ये व्याकुल हो गये। कहते हैं, इन्होंने तत्काल ही राम लक्ष्मण और सीता के लिए तीन जोड़े फूले और तीन चारपाइयों की व्यवस्था कराई और उसे सिर पर लादकर चित्रकूट की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर कुछ विनोदी साधुओं ने इनसे कहा कि अब वे चित्रकूट छोड़कर पचवटी की ओर चले गये हैं। एक क्षण की भी देर किये बिना प्रयागदास ने पचवटी की राह ली। मतो का विश्वास है कि दोनों वनवासी राजकुमारों और अपनी 'बहम' ने उनकी भेंट मार्ग में ही हो गई। प्रयागदास के अनुरोध से आराध्य-युगल ने चारपाई पर बैठकर पूजा पहना। इस प्रकार, अपनी साध पूरी कर वे अयोध्या होते हुए मिथिला चले गये। इनकी कोई स्वतंत्र कृति नहीं मिलती। सग्नो में इनके कुछ छंद प्रचलित हैं, जिनकी भाषा टेढ़ा अवधी है। इसमें पता चलता है कि ये पढ़े लिखे नहीं थे। प्रयागदास के पश्चात् सूरकिशोर द्वारा स्थापित गद्दी पर जनकविदेही आसीन हुए। इनकी परम्परा अब तक जनकपुर में चली आ रही है।

### रामप्रियाशरण

महात्मा रामप्रियाशरण सूरकिशोरजी के प्रायः समकालीन थे। इनका आत्मसम्बन्धी नाम 'प्रेमकमी' था। ये माधोपुर (मिथिला) में रहते थे। इनके गुरु 'मेहकली' नामक कोई रसिक महात्मा थे, जो उसी प्रदेश के निवासी थे।

रामप्रियाशरण सखी-भाव के उपासक थे। इन्होंने मानस के आदर्श पर सं० १७६० में 'सीतायन' नामक एक विशाल प्रबन्ध-काव्य की रचना की। यह सात काण्डों में विभक्त है—वासकाण्ड, मधुरमालकाण्ड, जयमालकाण्ड, रसमालकाण्ड, सुखमालकाण्ड, रसालकाण्ड और चन्द्रिकाकाण्ड। रसिक सती के सिद्धांतानुसार इसके अन्तर्गत जानकीजी की केवल वात्सल्य एवं कैशोर लीलाओं का ही वर्णन है। वन-गमन का प्रसंग छोड़ दिया गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर मंदिर (अयोध्या) में सुरक्षित है।

### रामलला

बिहार में रसिक साधकों के साम्प्रदायिक संगठन में सर्वाधिक योग महारमा रामलला ने दिया। ये लश्चरी शाखा के प्रवर्तक बालानन्द (जयपुर) के बड़े गुस्माई थे। मिथिला की अधिकांश गढ़ियाँ इन्हीं की चेतनी हुई हैं। तराई, मटिहानी, मिर्जापुर, रामपट्टी, बघनगरी, बसहिया, बराही, बिहारक, सिमरदेही, विसनपुर, निपनिया, पुसरैनी, विपरा आदि की स्थापना इन्हीं की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा से हुई। इन गढ़ियों के आचार्यों तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा बिहार में रसिक-साधना का व्यापक प्रसार हुआ।

### शकरदास

पश्चिमी बिहार में शताब्दियों पूर्व महारमा श्यामदास ने 'राममक्ति' की जो स्रोतस्विनी बहाई थी, उसी के परिणामस्वरूप कालान्तर में अनेक पढ़ूँचे हुए सतों का प्रादुर्भाव हुआ। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवारामजी के पिता महारमा शकरदास ऐसे ही महापुरुष थे। इनका जन्म छपरा जिले के 'हसुमापुर' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम ५० सोभाराम चतुर्वेदी था। वे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और उसी वृत्ति से अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते थे। बात्स्यवास्था में ही पिता का देहान्त हो जाने में उनकी शिक्षा-दीक्षा माता की देख-रेख से हुई। जीविका का कोई अन्य साधन न होने में माता गायें पालकर कुटुम्ब का निर्वाह करती थीं। दुर्भाग्यवश, इसी समय बिहार में एक भीषण अकाल पड़ा। अयोध्या से आनेवाले किसी साधु से ज्ञात हुआ कि यहाँ मुकाल है। अतएव, गाँव के कुछ लोगों के साथ माता और बहन को लेकर वे अयोध्या चले गये। कुछ दिनों बाद माता का वहीं देहावसान हो गया। बहन को एक निकट सम्बन्धी के यहाँ भेजकर वे बदरीनाथ चले गये। चारों धाम की यात्रा करके वे नैमिषारण्य आये और व्यास-वृत्ति से रहने लगे। यहीं इनका

विवाह रमन दुये नामक किसी ब्राह्मण की पुत्री से हुआ । कुछ समय तक वहाँ रहकर ये स्त्री-सहित जन्मभूमि को चले गये और खेती तथा पड़िताई द्वारा जीवन-मापन करने लगे । इनके चार पुत्र हुए—रामकिंकर, प्रयागदत्त, गंगा-गोविन्द और जीवाराम । यही जीवाराम आगे चलकर 'युगलप्रिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए । घर पर कुछ दिनों तक रहकर ये सपरिवार आरा जिले के 'बोध-धारा' गाँव को गये और वहाँ किसी महात्मा से दीक्षा ग्रहण की । जब पुत्र घर का काम-काज संभालने योग्य हो गये, तब शंकरदास गृह त्याग कर गंगातट पर (धारा) जाकर रहने लगे । कुछ दिनों बाद जीवाराम भी विरक्त होकर पिता के पास चले आये और उन्हीं के शिष्य हो गये । इसी स्थान पर इन्होंने अपनी ऐहिक सोला सवरण की । शंकरदासजीदास्य-भाव के उपासक थे । इनकी केवल एक रचना 'रामनाममासा' है जो स० १६०१ में इनकी गद्दी के तत्कालीन आचार्य महात्मा जानकीचरण के प्रयत्न से प्रकाशित हुई थी । इसकी भाषा मगही-मिश्रित भोजपुरी है ।

### जीवाराम 'युगलप्रिया'

शंकरदासजी के पुत्र जीवाराम रसिक-परम्परा के प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं । पञ्च भक्ति-भावों के पूर्ववर्ती एवं समकालीन रामोपासक सत्तों का वृत्त 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में संकलित कर इन्होंने साहित्य तथा संप्रदाय की स्मरणीय सेवा की । इस दृष्टि से रसिक सत्तों में ये विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं । आरम्भ में पिता की इच्छा इन्हें पंडित बनाने की थी । अतः इन्हें व्याकरण और ज्योतिष की शिक्षा दी गई । किंतु, इनका मन पड़िताई सीखने में नहीं लगा । इसी समय धारा जिले के खरोद गाँव-निवासी मसाराय के संपर्क में आकर इन्होंने भट्टांगयोग और स्वरोदय की क्रियाएँ सीखी । शंकरदासजी को जब इसका पता चला, तब उन्होंने इन्हें योग-साधना से विरक्त होकर भक्ति-मार्ग का अवलंब लेने की सलाह दी । पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके ये चिरान चले आये और उन्हीं का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया । शंकरदासजी ने रामोपासना में इनकी प्रवृत्ति देखकर अप्रदास-विरचित 'व्यानमञ्जरी' का पाठ करने की आज्ञा दी । आगे चलकर उन्हीं की अनुमति से शृंगारी साधना की प्रक्रिया भीषण करने के लिए ये अयोध्यावासी रसिकाचार्य रामचरणदास की शरण में गये । कुछ काल तक कथ्य ब्राम करके ये पुनः चिरान सोन आये और ठिकारी-राज्य (गया) की सहायता से मित्राजी के आश्रम पर एक मठिया बनवाई तथा गद्दी स्थापित की । इनकी गणना चन्द्रबन्धनपरम्परा के मुख्य आचार्यों में होती है । कहते हैं, इनके

गुरु रामचरणदासजी की निष्ठा चारुशीला-परत्प में थी, किन्तु उन्होंने विशेष परिस्थिति में इनकी भाव मिद्धि को देखकर चन्द्रबला-परत्प की अनुमति दे दी थी। युगलप्रियाजी ने 'शृंगार-रस-रहस्य-दीपिका' में इस घटना की ओर संकेत किया है। इस प्रकार रसिक-सम्प्रदाय में जीवारामजी के समय में ही उल्लिखित घटना के अनुसार दो गृथक्-गृथक् परम्पराओं में हनुमदवतार श्रीचाल-शीलाजी तथा भरतावतार श्रीचन्द्रबलाजी की प्रधानता दी जाने लगी। रसिक-साहित्य के प्रणयन और माधुर्य-भक्ति के प्रसार में आजीवन व्यस्त रहकर सं० १६१४ में युगलप्रियाजी ने सावेत-यात्रा की।

उत्तरी भारत के रसिक सन्तो में इनकी शिष्य-परम्परा सर्वाधिक समृद्ध हुई। उत्तर प्रदेश और बिहार में इनके गृहस्थ तथा विरक्त शिष्य-प्रशिष्यों ने सैकड़ों गढ़ियाँ स्थापित की। जीवारामजी की चार वृत्तियाँ उपलब्ध हुई हैं—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पदानवली, शृंगार रस-रहस्य और अष्टयाम-वार्तिक।

### जानकराजकिशोरीशरण

श्रीजनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली' जीवाराम के गुरुभाई थे। मिथिला इनकी साधना-भूमि थी। इनका जन्म काठियावाड़ में सुदामापुरी के पास एक नागर ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। सड़कपन में ही किसी साधु के साथ वे अयोध्या चले आये। यहाँ इन्होंने महात्मा राजराजवदास से दीक्षा ले ली। वे मधुर दास्य-भाव में उगासक थे। जनकराजकिशोरीशरण की आस्था शृंगारी भाव में थी, अतः गुरु ने उन्हें रामचरण दासजी से माधुर्य-भाव का सम्बन्ध लेने के लिए भेजा। संयोगवश उसी दिन चिरान में जीवारामजी भी जानकीघाट पर आ गये। रामचरणदासजी ने दोनों शिष्यों को एक साथ ही माधुर्य-भक्ति की दीक्षा दी। 'रसिक अली' नाम इसी समय पड़ा। इसके अनंतर वे रस-साधना में दृढ़तापूर्वक प्रवृत्त हुए और अष्टयाम तथा नित्याभावना में मग्न रहने लगे। इसी दिने रामचरणदासजी की प्रेरणा में टिकारी के राजा इनके शिष्य हो गये। रसिकअलीजी ने उन्हें दिव्य कमल-भवन के स्वरूप का उपदेश किया। राजा साहब ने माधुर्य भावना के अनुसार नव वनो तथा अष्ट कुञ्जों सहित कमल-भवन का निर्माण कराने की इच्छा प्रकट की। रसिक अलीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने दस हजार रुपये कमल-भवन के निर्माण के लिए दिये। रसिक अलीजी ने बड़े समारोह के साथ कार्य आरम्भ किया। कारीगरों को मुंहमांगी मजदूरी देने, उन्हें साधनानुकूल तस्त्रों से विभूषित और व्यजनों से सृष्ट करने, दर्शकों में मधुर प्रगाढ़ वितरण करने आदि में आधे में अधिक रुपये व्यय

हो गये। शेष रामविवाह के आयोजन में लग गये। बड़ी मुश्किल से दस हजार रुपये में अष्ट कुजों में से एक कुज का केवल एक द्वार निर्मित हो पाया। महात्मा राजराघवदाम इस अव्यय से बहुत अप्रसन्न हुए। राजा साहब भी हिम्मत हार बैठे। अर्थभाव के कारण काम बन्द हो गया। इससे रसिक अलीजी बहुत खिन्न हुए। उनका मन अयोध्या से उचट गया। वे जालीन चल गये। वहाँ उन्होंने एक निर्जन स्थान में बारह वर्ष तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भक्ति का प्रचार किया। इस प्रदेश में उनके हजारों शिष्य हो गए। इन्हीं में एक साठवींपालशरण थे। उन्हें साथ लेकर वे पुनः अयोध्या चले आये। कुछ दिन गृह-सेवा करके वे वहाँ से मिथिला चल गये और फिर आजीवन वहीं रहे। बनकपुर में बिहारकुंड में दक्षिण और बलवाटोम से पूर्व दिशा में स्थित 'रसिक-निवास' आश्रम की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसी स्थापना पर स० १९०६ की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पार्थिव शरीर त्याग कर इन्होंने प्रियतम की दिव्य सीला में प्रवेश किया।

भौक्तिकता तथा विचार-स्वतंत्रता की दृष्टि से १९वीं शती के श्रृंगारी सती में इनका स्थान अग्र्यतम है। इन्होंने रसिकों के परम्परागत तत्सुखी सिद्धान्त के विपरीत स्वसुखी सिद्धान्त का प्रवर्तन किया था। अब तक इनकी २४ रचनार्ण प्रकाश में आ चुकी हैं, उनमें प्रमुख हैं—सिद्धान्त-मुक्तावली, आत्म-सम्बन्ध-दर्पण, राम-रास-दीपिका, मिथिला-विलास और अमर रामायण। अयोध्या तथा मिथिला में इनके द्वारा स्थापित गृहियों की परम्पराएँ आज तक चली आ रही हैं।

### रामशरण

रसिक अलीजी की ही भाँति महात्मा रामशरण ने भी अन्य प्रदेश का निवासी होने हुए भी अपना मुख्य कार्य-क्षेत्र बिहार को ही बनाया और इसी पुण्यभूमि को अपना शरीर अर्पित किया। इनका जन्म अवध के तिलोई राज्य में समता नदी के तट पर पडितपुरवा नामक ग्राम में स० १८६४ की आषाढ़ शुक्ला त्रितीया को हुआ था। इनके पिता, स० रामस्वम्भ ज्योतिषी थे। वे दीक्षास्थान में ही गुरुहीन हो गये। दादी ने पावन-पोषण किया। पिता ने रामदत्त नामक पंडित द्वारा इन्हें कुछ शिक्षा दीलाई। किंतु, इनका मन पढ़ने में न लगा। सोनह वर्ष की आयु में ही घर-बार छोड़कर वे विरक्त हो गये। प्रयाग होते हुए अयोध्या आये और मुषीवटीसा पर गरीबदास नामक किसी साधु ने मन्त्र दीक्षा में ली। इसके पश्चात् बई वर्षों तक वे भारत के विभिन्न तीर्थों

का पर्यटन करते रहे। इसी यात्रा में इन्होंने चित्रकूट, पंचवटी, श्रीरंगपुरी, कन्याकुमारी, तिरुपति और जगन्नाथपुरी के दर्शन किये। पुरी में ही इन्होंने सीतारामीय हरिहरप्रसाद से सख्य-रस का सम्बन्ध लिया। यहाँ से ये भृगु आश्रम होते हुए बक्सर गये। बक्सर के निकट पंचारी नामक गाँव में भी कुछ दिनों तक इनके रहने का प्रमाण मिलता है। यहाँ पर सुरसरि के बाबू राम-उदारसिंह इनके दर्शन को आये। सेवकों के अनुरोध करने पर इस स्थान से ये नौआही गये। इसके पश्चात् ये जनकपुर चले गये और वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। यही वैशाख कृष्ण चतुर्दशी (सवत् अज्ञात) को इनकी परधाम-यात्रा हुई।

इनके रचित्र दो ग्रंथ हैं—रामतरंग-सिद्धान्त-संग्रह और मैथिली रहस्य-पदावली। प्रथम, सिद्धान्त-ग्रंथ है और दूसरा समय-समय पर लिखे गये भावात्मक छन्दों का संग्रह। जीवन का अधिकांश बिहार में व्यतीत करने के कारण, मूलतः अवधवासी होते हुए भी इनकी कृतियों में भोजपुरी का पुट अधिक मिलता है। इनकी रचनाएँ प्रायः भोहर छन्द में हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—जनक का हल-यज्ञ, जानकी-जन्म, फुलवारी-लीला आदि।

### युगलानन्दशरण 'हिमलता'

महा मा युगलानन्दशरण की साधना-भूमि अयोध्या थी, किन्तु जन्म तथा गुरुभूमि दोनों बिहार ही थी। इसलिए, इनकी गद्दी के अनुयायियों का अधिकांश बिहार में ही पाया जाता है। इनका आविर्भाव स० १८७५ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी को फल्गु नदी के निकट पटना जिले के इस्लामपुर गाँव के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो गया। घर पर ही कृष्ण नामक विद्वान् से इन्होंने शास्त्राध्ययन किया। फारसी भाषा बिना किसी शिक्षक के स्वतः सीखी। इसी समय इन्होंने मल्लयुद्ध और संगीत का भी अभ्यास किया। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही ये चिरान के महन्त 'युगलप्रियाजी' में मन्त्रदीक्षा लेकर विरक्त हो गये। कुछ काल तक काशी और चित्रकूट में निवास कर अयोध्या आये और १४ महीने तक मोन धारण करके घृणाची-कुण्ड पर तपस्या की। इसके अनन्तर ये पुनः चित्रकूट गये और जानकीघाट पर ठहरे। रीवा के महाराज विश्वनाथसिंह इनकी ख्याति सुनकर दर्शनार्थ उपस्थित हुए। युगलानन्दशरणजी ने श्रृङ्गारी उपासना के रहस्यों की व्याख्या कर उनकी जिज्ञासा निवृत्त की। चित्रकूट से ये पुनः अयोध्या लौट आये और निर्मली-कुड पर रहने लगे। हमी समय १८५७ ई० की प्रसिद्ध क्रांति हुई। इनके आश्रम

के ममीप ॥ गोरी पल्टन की छावनी थी। शिष्यों के अनुरोध करने पर भी इन्होंने वहाँ से तत्काल हटना स्वीकार न किया। कुछ ही दिनों में अश्रम के निकट बड़ी संख्या में गोरे सैनिकों के कैम्प पड़ गये। इससे अपवित्रता बढ़ गई अतः, उस स्थान को छोड़कर ये त्रयोध्या नगर में आ गये और लक्ष्मण किला पर आसन लगाया। आजीवन-ग्रंथ-रचना और धर्मोपदेश करते हुए इसी स्थान पर स० १९३३ की भागशीर्ष शुक्ला सप्तमी को ये आराध्य की दिव्य साकेत-लीना में प्रविष्ट हुए।

पुगलानन्यशरणजी संस्कृत और हिन्दी के तो अधिकारी विद्वान् थे ही, अरबी और फारसी में भी उनकी अद्भुत गति थी। सूफी साहित्य के वे मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते थे। उनकी वेद-भूषा भी सूरफियों जैसी ही थी। उनकी रचनाओं की संख्या ६० के लगभग है। पूरे सम्प्रदाय में किसी अन्य कवि की इतनी विपुल राशि में रचना नहीं मिलती। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—रघुवर गुण-दर्पण, मधुरमधुमाला, श्रीसीताराम नाम-प्रताप-प्रकाश, उज्ज्वल-उत्कठा-विलास, अर्थ-पत्रक, सीताराम मेह-वाटिका, पारस-भाग और सत-वचनावली।

### सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला'

रूपकलाजी का जन्म सारन (छपरा) जिले के मुबारकपुर गाँव में श्रावण कृष्ण ६, सं० १८६७ में कामरूप-कुल में हुआ था। इनके पिता मुशी तपसीराम और चाचा मुशी तुनसीराम रामानदीय त्रैलोक्य थे। उनके सम्पर्क से भगवद्भक्ति के बीज इनके हृदय में धातुपावस्था में ही अंकुरित हो गये। आरम्भ में इन्हें कुल-परम्परानुसार फारसी की शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् प्राइमरी परीक्षा पास कर ये छपरा के राजकीय स्कूल में अंगरेजी पढ़ने के लिए भेजे गये। यहाँ से इन्होंने एण्ट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय शिक्षा-विभाग में नौकरी के लिए इन्होंने आवेदन-पत्र दे दिया। साक्षात्कार के समय इनकी योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर डॉ० फेनेल ने इन्हें सब-इन्स्पेक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया। स० १९२४ में डिप्टी-इन्स्पेक्टर बनाकर ये पूर्णिया भेजे गये। नौकरी करते हुए भी इनका भजन भाव चलता रहा। इनकी रुचि माधुर्य-भाव में थी। इस संबंध में परम (जिला-आयन) के सहायक रासचरण-दाम ने इन्हें विशेष पथ-निर्देश प्राप्त हुआ। वामान्तर में ये उन्हीं के शिष्य हो गये। स० १९३८ में इन्होंने गुहहटा ठाकुरवाड़ी (भागमपुर) के महात्मा 'हंस-रत्ना' में श्रृंगाररस का संबंध ग्रहण किया। इनके साधना-शरीर को 'रूपकला' की संज्ञा इसी समय प्राप्त हुई। भागमपुर से बदसवर ये पटना आये। यहाँ कुछ



अलौकिक घटनाएँ घटी, जिनसे प्रभावित होकर इन्होंने दो बार सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दिया। किन्तु दोनों ही बार शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर तथा खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामदीन सिंह के अनुरोध से इन्हें इस्तीफा वापस लेना पड़ा। स० १९५० के आश्विन मास में सेवावधि समाप्त करके ये अयोध्या चले आये और हनुमत्-निवास में महात्मा गोमतीदास के साथ रहने लगे। स० १९५७ में प्रमुख शिष्यो तथा प्रेमियो ने इनके लिए नयाघाट पर 'रूपकलाकुज' का निर्माण कराया। इस वर्ष की जानकी नवमी के एक मास पूर्व वे हनुमत्-निवास में आकर मरयू-तट पर स्थित इस नये आवास में स्थायी रूप से रहने लगे। यही पर ४० वर्ष अखण्ड अवध-वास करके ६५ वर्ष की आयु में स० १९८६ की पीप शुक्ला द्वादशी को नरवर शरीर छोड़कर इन्होंने प्रियतम का चिरकैर्य प्राप्त किया।

रूपकलाजी की लिखी हुई कुल १७ पुस्तकें मिली हैं। इनमें से ७ लौकिक शिक्षा-संबंधी हैं शेष १० भक्ति-विषयक। इनकी सर्वाधिक ख्यात कृति नाभादास-जी के भक्तमाल की टीका है। प्रसिद्ध तुलसीमर्मज्ञ मर जॉर्ज ग्रिमर्सन ने इसे अपना मुख्य सदर्भ-ग्रन्थ माना है। इसी से इसका महत्त्व आका जा सकता है। 'हरिनाम-सकीर्तन' और 'जानकी-जयन्ती' में रूपकलाजी की बड़ी निष्ठा थी। इनके अनुयायी अब तक प्रतिवर्ष उक्त उत्सवों की बड़े समारोह के साथ मनाते हैं।

### रामाजी

रामाजी छपरा जिले के निवासी थे। इनकी जन्मभूमि बिटाय नामक ग्राम सिवान के निकट स्थित है। यही के एक कामस्य-परिवार में स० १९२८ की भाद्र कृष्णा सप्तमी को इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम मुशीराम लाल और माता का रामप्पारी देवी था। मुशीजी पटना की किसी अदालत में मफलनशीम थे, यहाँ वे बाकरगंज मुहल्ले में बाबा भीमदास के स्थान पर रहते थे। वे रामाजी को अपने साथ पटना ले गये और वही इनकी शिक्षा हुई। छोटी आयु में ही राम के दूलह रूप में इनकी भावासक्ति हो गई। अतः, खेलते और पढ़ने समय निरंतर ये विवाह सीना के ही ध्यान में मग्न रहने लगे। धीरे-धीरे इनका मन पढ़ाई में उधटता गया। इसके परिणामस्वरूप एण्ट्रेंस की परीक्षा में अमफल होने के साथ ही शिक्षा समाप्त हो गई। पिता ने इन्हें नौकरी करने को कहा, किन्तु इनका मन उसमें भी न लगा। विवश होकर उन्होंने इनको घर भेज दिया। वहाँ कुछ दिनों तक रही के बाद एक समीपवर्ती गाँव बगौरा में इनका विवाह हुआ। गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी इनकी भाव-साधना

में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ। उस प्रदेश में रामविवाह-लीला को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से इन्होंने मठवा ग्राम में रामरक्षाप्रसाद तिवारी के द्वार पर एक विशाल मण्डप बनवाया। इसी प्रकार अपने इष्टदेव की जन्मभूमि तथा विवाह-लीला से सम्बद्ध स्थानों—अयोध्या, बनारस, सीतामढ़ी और जनकपुर—की स्मृति को स्थायित्व देने के विचार से इन्होंने सरैया (छपरा) ग्राम में चार विवाह-मण्डप बनवाये। इसके अतिरिक्त अपने जीवन-काल में ये प्रतिवर्ष अयोध्या में श्रीरामचरितमानस का विवाहोत्सव बड़े धूमधाम से करते रहे। इनकी स्मृति को चिरतन बनाने के लिए बाद को पुजारी रामशकरशरण ने तुलसी-उद्यान (बिक्टोरिया-पार्क) के समीप 'विग्रहती' भवन स्थापित किया। यहाँ अब तक रामविवाह के अवसर पर सत्ता बा विशाल भोज दिया जाता है। चाहीस वर्ष तक पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार के लोक-जीवन को राम की माधुर्य लीलाओं से अनुरजित कर १९५५ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को रामाजी ने दिव्य दूल्ह की नित्यलीला में प्रवेश किया।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने पर भी रामाजी ने उपास्य की मधुर लीलाओं का वर्णन करने के लिए ग्राम मोती की ही शैली अपनाई। इनकी लिखी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। विवाह-लीला के अवसरों पर इनके द्वारा गाये गए भोजपुरी के कुछ स्पूट गीत ही उपलब्ध हैं। रसिकों में ये मधुर दास्य-भाव के आदर्श भक्त माने जाते हैं।

इन रससिद्ध साधकों के अतिरिक्त बिहार-प्रदेश के विभिन्न भागों में ऐसे अनेक रामोपासक हुए हैं जिनके अब केवल नाम शेष रह गये हैं। साम्प्रदायिक साहित्य में इनका जो वृत्त सुरक्षित है, वह सिद्धियों और चमत्कारों के गहरे कुहासे से आच्छादित है। उसके आधार पर उनके जीवन की धुंधली रूप-रेखा भी प्रस्तुत नहीं की जा सकती। ऐसी दशा में हमें उनके यथोपलब्ध निम्नांकित वृत्त से ही संतोष करना पड़ता है—

१. कृपासखी—ये रसिक-सम्प्रदाय के प्रवर्तक अग्रदासजी के शिष्य थे। गुप्त की अनुमति लेकर ये परमाराध्या की जन्मभूमि का दर्शन करने मियिला गए। वहाँ कौशिकी नदी के तट पर जानकीनगर में इन्होंने अपनी गुफा बनाई और कई वर्षों तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत किया। कहते हैं, सीताजी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें वृत्तार्पण किया था। इनकी गद्दी अब तक रखायित है।

२. रघुनाथदास—ये जनकपुर में रत्नसागर पर कुटी बनाकर रहते थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन इन्होंने सखियों-समेत समीपवर्ती धान के खेत में विचरती हुई स्वामिनी का साक्षात्कार किया था। इस घटना की चर्चा इन्होंने अपने शिष्य

हरेराम जीवन से की थी ।

३. सीताप्रसाद—ये मिथिलावासी महात्मा दयाराम के शिष्य और सीता-मढ़ी की गद्दी के आचार्य थे । चित्रकूट से 'मिथिला-महात्म्य' लाकर सर्वप्रथम इन्होंने ही उसके आधार पर जनकपुर की परिक्रमा स्थापित की थी । इसके अतिरिक्त जानकूप तथा सीताराम-व्याहवेदी जैसे अनेक गुप्त तीर्थों के पुनर्गठन का भी श्रेय इन्हीं को है ।

४. मूरदास—इनकी भी गणना मिथिला के चुतप्राय महत्व के पुनः स्थापकों में की जाती है । ये पिपरा में निवास करते थे । कहा जाता है, मूरकिशोरजी के मिथिला-विलास के अनुसार इन्होंने उस पुरी की बृहत् परिक्रमा की रूपरेखा निश्चित की थी ।

५. हरिसनदास—ये नरघोषी गद्दी (मिथिला) के महंत थे । इनके गुरु सम्बत. रामलालजी थे । नरघोषी गद्दी की साम्प्रदायिक परम्पराओं में निर्दिष्ट हरिकृष्णदास से ये अभिन्न जान पड़ते हैं । मानसी साधना अथवा ध्यान-योग के ये निष्णात आचार्य माने जाते हैं । इनके शिष्य अलखरामदास भी अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं । विवाह सीसा में इनकी बड़ी निष्ठा थी । कहते हैं, रामचरितमानस में वर्णित विधान के अनुसार एक बार इन्होंने जनकपुर में बड़े समारोह के साथ राम-विवाह का आयोजन किया था ।

६. भिक्षुराम—ये कोल्हस्वामी के द्वारे के शिष्य और मैथिल ब्राह्मण थे । विमला नदी के तट पर बलहा नामक गाँव इनकी जन्मभूमि था । युगलप्रियाजी से रसिक-भावना का सम्बन्ध लेकर ये आजीवन जनकपुर में साधना-रत रहे । मिश्रावृत्ति से जीवन-यापन करने के कारण ये 'भिक्षुराम' नाम से प्रसिद्ध थे । हरेराम और बूंदीराम इनके दो पुत्र थे । इन्होंने गाँव में ही रामजानकी-मंदिर स्थापित करके आजीवन युगलसरकार की सेवा करते हुए काल-यापन किया था ।

७. नत्पूदास—ये पटना के किसी रामजानकी-मंदिर के महंत थे । इष्टदेव की माधुर्य-लीलाओं के आयोजन में इनकी दक्षता लोक-प्रसिद्ध थी । मागवत-कथा के मर्मज्ञ व्यास प० जगन्नाथदास इनके शिष्य थे । नत्पूदासजी के तृतीय शिष्य रसिक जानकीदास थे । इन्होंने रामानुजदास नामक किसी रसिक महात्मा से श्रृंगारी रामोपासना का सम्बन्ध लिया था । प्रसिद्ध है कि रैपुरा ग्राम की विवाह-लीला में इन्हें खली-भाव की उपलब्धि हुई थी ।

८. जनगोविन्द—ये रामानन्दजी के शिष्य मुरशुरानंद की परम्परा में आविर्भूत हुए थे और बिहार में गंगातट पर वरराम में निवास करते थे । कहते

हैं कि एक बार ये मंदिर की व्यवस्था का भार शिष्य पूर्णदास को सौंपकर दर्शनार्थ जगन्नाथपुरी गये। इनके जाने के कुछ ही दिनों बाद बिहार के सूबेदार ने किसी कारणवश रुष्ट होकर उस गाँव पर चढ़ाई कर दी। पूर्णदास ने इसकी सूचना गुरु के पास भेजी। जनगोविन्द ने पत्रोत्तर में एक साखी लिख भेजी। उसे पढ़ते ही माही सेना में आग लग गई। इससे धबकाकर सारे सैनिक भाग खड़े हुए। पूर्णदास के शिष्य सहजराय और प्रशिष्य मोहनदास क्रमशः उस गद्दी के आचार्य हुए।

६. रामदास कायस्थ—ये मिथिला-प्रदेश के सैदपुर ग्राम में रहते थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम तिरहुत में रामचरित-मानस का प्रचार किया था। प्रसिद्ध सतसेवी मंगनीराम इन्हीं के पुत्र थे, जो घर में उत्पन्न मोटा अन्न बेचकर सतों की सेवा के लिए गेहूँ-चावल खरीद लाते थे। सुना जाता है, एक बार इन्होंने हम कार्य के लिए अपनी स्त्री के आभूषण बेच डाले थे, जिन्हें भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं आकर छुआया था।

१०. रामसेवक—ये प्रसादराम के शिष्य थे और समस्तीपुर के निवृत्त किसी गाँव में रहते थे। विवाह-लीला के आयोजन में ये बड़ी रुचि रखते थे।

११. श्रीभगवान्—इनकी गद्दी आरा में थी। कुटी में कोई संपत्ति नहीं लगी थी। अतः आकाशवृत्ति ही जीविका का एकमात्र साधन थी। इनके शिष्य महन्त बालकृष्णदास बड़े सतसेवी थे।

१२. रामचर्न—ये जाति के क्षत्रिय थे। कुछ-काल तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर इन्होंने विरक्त वैष धारण कर लिया था। पक्षे इन्हें संगीत में बड़ी दिव्य-बल्यो थी। चित्रकूट में कई वर्षों तक सत्संग करने के पश्चात् ये मिथिला लौट आये और यही राम की माधुर्य-लीलाओं पर छंद-रचना करते हुए रहने लगे। परदा के महारत्ना प्रसादीराम इन्हीं के शिष्य थे।

१३. मिथिलादास—ये जीवारामजी के शायक शिष्य थे। मिथिला में कमला नदी के तट पर इनकी गुफा थी। कहा जाता है, उस प्रदेश के गौरव की पुनः स्थापना में इनका विशेष हाथ था।

बिहार के रसिक संतों द्वारा परिनिष्ठित रसिक भक्तिधारा ने उस प्रदेश की रामोपासक जनता को ही प्रभावित नहीं किया—औरों और शृष्णमक्तों के भी हृदय में रामोपासना के बीज आरोपित दिये। इनके परिणामस्वरूप १८वीं और १९वीं शताब्दी में इन संप्रदायों के अनेक अनुयायी रसिक-संप्रदाय में दीक्षित हो गये। रामचरित-मानस और राम-भक्ति में ये सभी बड़ी आस्था रखते थे। नीचे इनका पृथक् रूप से संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

क शैव (दशनामी) रामभक्त

१ सुखरामगिरि—ये शालिग्रामी नदी के तट पर मोरिया ग्रामवासी शैव थे ।

२ ततगिरि—इनकी गद्दी मठिया गाँव में थी ।

३ केसरिगिरि—ये अगोपरि (मिथिला) के दक्षिण महुवा नामक गाँव में रहते थे । इनके गुरुभाई कस्तूरीगिरि भी रामोपासक थे ।

४ मणिगिरि—ये सिसिनी नामक गाँव में निवास करते थे ।

५. हर्षभारती—इनकी कुटी कबनारि ग्राम में थी । इनके बाबागुरु पयहा-रीजी अपने समय में सिद्धि के लिए प्रख्यात थे ।

६. गुरु वसन्तभारती—ये जनकपुर में अमनौरि गाँव के निवासी थे ।

ख कृष्णोपासक रामभक्त

१ रामबदास—ये गोस्वामी हितहरिवंश की परम्पराक महात्मा बशीलाल के शिष्य थे । इनकी जन्मभूमि भोजपुर-प्रदेशातर्गत जमिरा गाँव थी । ये राम-कृष्ण में अभेद-भावना रखते थे ।

२ अभयसिंह—ये भी हित-वंश में ही दीक्षित थे ।

३ संतोषमणि—ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण और हितहरिवंश की परम्परा के शिष्य थे । भागवत के व्यास-रूप में इनकी बड़ी क्वालि थी ।

४. हरिलाल—ये पटना-स्थित राधाकृष्ण-मंदिर में रहते थे । मल्लूजी के द्वारे के शिष्य पटना-वासी हरेराम इनके अमित्र मित्र थे । उन्हीं के प्रभाव से ये रामभक्ति की ओर आकृष्ट हुए थे ।

५. धनरामदास—ये हरिव्यासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे । रायबदास नामक एक अन्य महात्मा के साथ ये गडकी के तट पर मुजफ्फरपुर में निवास करते थे । मिथिला भूमि में इनकी अगाध निष्ठा थी ।

इन महात्माओं के अनिरुद्ध कुछ ऐसे भी रहसिक सत हैं, जो न तो बिहार के निवासी थे और न यह प्रदेश जिनका साधना क्षेत्र ही था । किन्तु, उन्हें सिद्धि इसी भूमि में प्राप्त हुई थी । रसिकाचार्य वृषानिवास, प्रेमसखी और जानकीचरण इसी श्रेणी में आते हैं । साम्प्रदायिक साहित्य में जो वृत्तांत वर्णित हैं, उससे ज्ञात होता है कि हनुमान्जी ने मिथिला में श्रीप्रसादसखी के रूप में प्रकट होकर वृषानिवासजी को दिव्य लीला का दर्शन कराया था । इसी समय से उन्होंने प्रसादसखी को अपना गुरु माना और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति में

साधना की ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार शृंगवेरपुर-वासी महात्मा प्रेमसखी ने दहवत करने हुए चित्रकूट से मिथिला की यात्रा की थी, उस समय जानकीजी ने उनकी निष्ठा पर मुग्ध होकर प्रत्यक्ष रूप में उन्हें अपनी सखी कहकर अपनाया था । युगलप्रियाजी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है । अयोध्यावासी महात्मा जानकीचरण को भी रगभूमि की दिव्य झाँकी का दर्शन यहीं हुआ था । यह आश्चर्य की बात है कि इन्होंने साम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार रसिक भाव का सम्बन्ध प्राप्त करने के पहले ही इस प्रकार की भावसिद्धि प्राप्त कर ली थी । महात्मा दयाराम से शृंगारी उपासना का सम्बन्ध इन्होंने इस घटना के बाद ग्रहण किया था ।<sup>१</sup>

इन सतों के द्वारा बिहार में स्थापित पीठ आज भी शृंगारी रामोपासना के प्रमुख केन्द्र-रूप में प्रतिष्ठित हैं । इस प्रदेश के निवासी शृंगारी रामभक्त स्नेह-लता मोदलता तथा की वाणी में रसिक-साहित्य की धारा अब तक अविरल, श्री सीतारामशरण रूप में प्रवाहित है । समाज के सभी वर्गों के सहयोगों जिनासु आज भी रसिक सतों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर आध्यात्म-मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।



१. इनकी विलोकि बड़ झूट को प्रभाव काहू कियो न जनाव उठि गए बलि मोर हो ।  
गुह अपमान को विषाद जिय जानि उर आनि हनुमान बले मिथिला की ओर हो ॥  
बोध-बीध बास करि सीतामढ़ी आए भूमि देखे सुख पाये शृंगलता नित मोर हो ।  
आगे बलि पुरी छवि नैनन प्रत्यक्ष देखी धनुष बरस बरसावत किसोर हो ॥  
रही कछु वासना उपासना की वृद्धता में करत ही ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू ।  
भीप्रसाद रूप निज अलख सखाओ उर ताप को मिटायो जन जानिके नवान जू ॥  
जनक भयन को त्यक्त्य बरसायो भयो मिथिला में तैंसोई अवध परमान जू ।  
इस्ट के मिलाइवे में हमहीं को गुहमानो आलिन के मुत्थ चादतोला हैं प्रधान जू ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ३५ ।

२. रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ६४ ।

## तुलसीमत और वर्तमान जीवन-संघर्ष

जीवन संघर्ष मानव की नियति है। अनादि काल से मनुष्य अपने को स्थापित करने के प्रयत्न में संघर्ष करता आया है। यह संघर्ष दो स्तरों पर होता रहा है। एक तो प्राकृतिक शक्तियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता के सहारे उनसे जूझता आया है, दूसरे मानव समाज के बीच अपनी स्थिति दृढ़ करने, समाज को व्यवस्थित करने और मर्यादा और मूल्यों को स्थापित करने के लिए भी वह बराबर संघर्ष करता रहा है। ये दोनों ही संघर्ष भौतिक स्तर पर होते आये हैं। एक दूसरे प्रकार का संघर्ष मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर भी करता आया है। यह संघर्ष अपने मन का उन्नयन करने अपने शुद्ध स्वरूप को पहचानने और अपने को विश्व की केन्द्रीय चेतना (ब्रह्म) से एकाकार करने के लिए किया जाता रहा है। ये दोनों ही स्तरों पर किये जानेवाले संघर्ष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत मनुष्यों ने (संत महात्मा आदि) सामाजिक मर्यादा एवं नैतिक मूल्यों के लिए भी अधिक व्यापक सार्थक और प्रभावी संघर्ष किये हैं।

जिस समय तुलसीदास का आविर्भाव हुआ, संघर्ष के दोनों स्तरों पर विघटन, अनास्था और अवमूल्यन की स्थिति थी। आध्यात्मिक संघर्ष के क्षेत्र में, प्रवचना, अहंकार आडम्बर और पाखण्ड का बोलबाला था। अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनकी दृष्टि सकीर्ण थी। अध्यात्म साधना का क्षेत्र बचको से भर गया था। भौतिक जीवन व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गयी थी। वर्ण और आश्रम दोनों की मर्यादाएँ टूट गयी थी। सारा समाज अनेक जातियों उपजातियों में बँट गया था। समाज की जीवनी शक्ति का हास हो गया था। व्यक्ति के लिए निरन्तर टूटते रहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। तुलसीदास ने रामचरित-मानस के आरम्भ में उत्तरकाण्ड के कलियुग प्रसंग में और कवितावली के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन विघटन और मूल्यहीनता का यथार्थ चित्र अंकित किया है।

आज का जीवन संघर्ष भी लगभग उसी कोटि का है जिस कोटि का तुलसी

के आधिर्भाव काल में था । मनुष्य बदल अवश्य रहा है किंतु उसकी मूल मनो-वृत्तियाँ आज भी उसे पीछे की ओर खींच रही हैं । विज्ञान ने प्रकृति के साथ हमारे संघर्ष को तीव्र कर दिया है । मनुष्य एक सीमा तक प्रकृति पर विजय प्राप्त कर चुका है । लेकिन उसकी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं और वह इनकी पूर्ति के प्रयत्न में मानवीय मूल्यों को तिमिजसि देता जा रहा है । आज का मनुष्य भौतिक सुख सुविधाओं को ही जीवन का लक्ष्य मानकर उन्हें पुंजीभूत करने में अपनी सारी शक्ति लगा रहा है । एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से, एक समुदाय दूसरे समुदाय से और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से स्वार्थ प्रेरित होकर संघर्ष रत है । प्रत्येक को मात्र अपना ध्यान है । जीवन में नैतिक मूल्यों का महत्त्व घट गया है । वे सारे तत्त्व जो मनुष्य की उच्चतर सांस्कृतिक यात्रा के साक्षी थे, आज अपना अर्थ खो चुके हैं । दम्भ, तनाव, कुठा, सत्रास-अजनबीपन, अन्याय आदि शब्द आज के जीवन संघर्ष के प्रतीक बनकर साहित्य के क्षेत्र में अपनी सार्थकता प्रमाणित कर रहे हैं । मनुष्य अनेक स्तरों पर विभक्त होकर असहाय हो रहा है । उसके कार्यक्षम लक्ष्यहीन और असंगत प्रतीत हो रहे हैं । आज किसी भी प्रकार के आदर्शात्मक चिन्तन को अस्वीकार किया जा रहा है । तर्क यह दिया जाता है कि आदर्शवादी चिन्तन से जुड़ा हुआ व्यक्ति रुढ़िवादी होता है और वह सामाजिक मेल-मिलाप में बाधक सिद्ध हो सकता है । आज के साम्राज्यवादी और कट्टर राष्ट्रवादी जीवन व्यवस्था के हिंसात्मक संघर्ष से ऊबकर पुषापीडी सभी प्रकार के आदर्शवादी विचारों का बहिष्कार कर रही है । सब मिलाकर स्थिति अत्यन्त शोचनीय है । रामायण के पूर्व रावण तथा उसके सहायक राक्षसों ने समाज का लगभग इसी स्थिति में पहुँचा दिया था । उनके कृत्यों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने प्रकारान्तर से अपने युग की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष का ही चित्रण किया है । उदाहरण के लिए तुलसीदास द्वारा वर्णित कुछ चित्र नीचे दिये जा रहे हैं :—

धर्म विरोध—

जेहि विधि होइ धरम निर्मूना । सो सब करहि वेद प्रतिकूला ॥

अनाचार—

बरनि न जाय अनोति, घोर निसानर जे करहि ।

हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापन कवन मिनि ॥

मर्यादाहीनता—

बाढ़े खन बहु घोर जुआरा । जे लपट पर धन पद दारा ।

मानहि मानु विज्ञा नहि देवा । साधुन्ह सन करवावहि सेवा ॥



कलियुग-वर्णन के प्रसंग में तुलसीदास ने निश्चित रूप में अपने समय की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष को ही प्रकट किया है—

## लोभ की प्रधानता

भये लोग सब मोह बस, लोभ प्रसे तुम कर्म ।

दिशाहीनता

भारग सोइ जा कहैं जोइ भावा ।

अवस्था एवं विश्रुतलता—

वरन धर्म नहि आश्रम जारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ।

द्विज श्रुति वेचक भूप प्रशासन । कोई नहि माननिगम अनुसासन ॥

आर्थिक विपन्नता—

कलि बारहि धार दुकास परै । दिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

उच्चवर्ग में दुराचार और पाखंड की वृद्धि—

घनवंत कुलीन भलीन अपी । द्विज बिहू जनेउ उधार तपी ॥

कवितावली के उत्तरकाण्ड में भी तुलसीदास ने अपने युग जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । उस समय भी बेरोजगारी ऐसी ही थी जैसी आज । देखिए—

खेती न किसान को भिखारी न भीख बलि,  
वनिक को बनिज न चाकर को चाकरी  
जीविका विहीन लोग सीद्धमान सोच बस,  
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई का करी ।

तात्पर्य यह कि आज के जीवन-संघर्ष की छाया तुलसी के आविर्भाव काल में भी विद्यमान थी । तुलसी ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से सभी प्रकार की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया । उन्होंने स्पष्ट रूप से अपने मठ का उद्घाटन किया । अब देखना यह है कि उनका मन क्या है और आज के जीवन में वह कहाँ तक समाधान के रूप में स्वीकार्य हो सकता है ?

## केन्द्रीय आस्था : राम में विश्वास

तुलसी की जीवनसाधना की चरम उपलब्धि राम हैं । राम ही उनके जीवनाधार हैं । मारे संसार को वे राममय मानते हैं । जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति में वे राम का ही आश्रय लेते हैं । राम के बलपर वे कलियुग के

समस्त विरोधो एव अनीतियों को चुनौती देते हैं। वे राम से ही याचना करते हैं। वे ससार के सारे सम्बन्धों को राम के नाते ही स्वीकारते हैं। दोहावली में राम के प्रति अक्षुण्ण विश्वास व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निर्वान ।  
 ज्ञानवत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ विधान ॥  
 जरउ सो सपति, सदन, सुख, सुहृद मानु पितु भाइ ।  
 सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥  
 पुन्य, पाप, जस, अजस के, भावी भाजन भूरि ।  
 सकट तुलसीदास को, राम करहिगै दूर ॥

तुलसी की सारी साधना इस सत्य को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ी है कि वे राम के हो जाएँ और राम को अपना मान लें।

सबै कहावत राम के, सबहि राम की आस ।

राम कहै जेहि आपनो, तेहि भणु तुलसीदास ॥

राम के प्रति इस अखंड आस्था का रहस्य क्या है? वस्तुतः 'राम' भारतीय मनीषा के चिन्तन की चरम उपलब्धि है। वह एक ऐसा 'तत्त्व' है जिससे ऊँची धारणा मनुष्य की बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना की सीमा के बाहर की बात है। राम से ऊँची सरय की धारणा नहीं हो सकती। शुभ की चरम कल्पना भी राम है। सौन्दर्य का चरम रूप भी राम है। जिसके जीवन में 'राम' आ जाता है, वह सत्यनिष्ठ हो जाता है, वह सारे संसार की कल्याण कामना से भर उठता है, उसकी वाणी, विचार और कार्य सब कुछ सुन्दर हो जाता है। राममय होकर हम सारे विकारों से परे हो जाते हैं। राम में आस्था जीवन के सर्वोच्च मूल्यों में आस्था का ही नामान्तर है। राम परम तत्त्व है। राम ज्ञानियों का ज्ञेय, ध्यातियों का ध्येय, उपासकों का उपास्य और कर्मयोगियों की प्रेरणा का मूल स्रोत है। जीवन संघर्ष तो बराबर रहेगा। पहले भी था आज भी है और आगे भी चलेगा। किसी केन्द्रीय विश्वास से प्रेरित होकर उस में दूरने पर मनुष्य हार-जीत एवं आशा निराशा के द्वन्द्व को मनुष्य झेल लेता है किन्तु आस्था विहीन होकर संघर्ष करता हुआ व्यक्ति टूट जाता है, बिखर जाता है। इसीलिए आज के जीवन संघर्ष में भी किसी आस्था-बिन्दु के प्रति अर्पित होना अत्यन्त जरूरी होगा।

सत्यनिष्ठा

जीवन के संघर्षों को झेलने और जीवन को सार्थक परिणति देने के लिये

सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है। रामकथा का प्रत्येक पात्र सत्यनिष्ठ है। राम तो सत्यसंध (सत्यप्रतिज्ञ) हैं ही। गुरु वशिष्ठ के शब्दों में—

सत्यसंध पासक श्रुति सेतू । राम जनम भग भंगल हेतू ॥

महाराज का दशरथ महत्त्व भी इसीलिए है कि वे 'सत्य' को सर्वोपरि 'धर्म' मानते थे—

तुलसी जान्यो दसरथाहि धरमु न सत्य समान ।

राम सजे जेहि सागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥

भरत के चरित्र की महिमा सर्वविदित है। वे सत्य के उपासक थे। जिस 'सत्य' की रक्षा के लिए राम वनवास कर रहे थे उसी सत्य की रक्षा के लिए भरत नन्दि ग्राम में पर्णकुटी बनाकर निवास कर रहे थे।

कहत सुनत सति भाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ॥

आज हमारे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि हम 'सूठ' को व्यावहारिक सफलता का सूत्र मान बैठे हैं।

मर्यादाप्रियता—व्यावहारिक जगत् विविध नामरूपात्मक पदार्थों का पुत्र है—जहाँ अनेक प्रकार के जीव जन्तु विवास करते हैं, अनेक स्तरों पर जीनेवाले लोग हैं। जहाँ अनेक प्रकार की सीवानों में मनुष्य बँटा हुआ है, वहाँ जीवन की मार्यकता इसी में है कि सब लोग एक-दूसरे ही मर्यादा का ध्यान रखें। व्यावहारिक स्तर पर सबको एक या समान कर देने का स्वप्न अभी विश्व के किसी भूखण्ड में माकार नहीं हो सका है। ऐसी स्थिति में सबकी मर्यादा का ध्यान रखकर सह अस्तित्व के सिद्धान्त को बरीयता देना उचित होगा। तुलसी का मर्यादावाद ही आज सह-अस्तित्व के रूप में प्रचारित हो रहा है। तुलसी द्वारा चित्रित आदर्श समाज में राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, सम्य-असम्य, जड़ चेतन सभी अपनी मर्यादा के भीतर अनुशासित हैं। जिसने मर्यादा भंग की है, उसी का मान-भर्दन हुआ है। राम राज्य की मर्यादानिष्ठ समाज व्यवस्था का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

वरनाथम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग ।

चलाहि सदा पावहि सुखाहि, नहि भय सोक न रोग ॥

×

×

×

सता दिव्य पनि मधु खवही । मनभावतो धेनु पयसवही ॥

×

×

×

सरिता सकल बहहि बर बारी । भीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥

सागर निज मरजादा रहही । डारहि रत्न सटाहि नर लहही ॥

विष्णु महि पुर मगूखन्हि, रबि तपि जेतनहि काज ।

मणि बारिद देहि बल रामचन्द्र के राज ॥

जब प्रकृति अपने स्वभाव में स्थित है तो मनुष्य का मर्यादित न होना अमभव है। 'मर्यादा' अपने स्वभाव में स्थित होना ही है। आज हम इतने व्यग्र, आकुल, ग्रस्त और उद्विग्न हैं कि सोमा और स्वभाव के सम्बन्ध में सोचना ही नहीं चाहते, आचरण तो दूर की बात है। तुलसी का मर्यादावाद आज के जीवन संघर्ष में भी सार्थक समाधान दे सकता है।

**धर्मसौलता**—तुलसी ने वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर धर्म को सर्वोपरि महत्व दिया है। तुलसी की धर्म चेतना सर्वव्यापी और शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित है। रावण जैसे दुर्धर्म शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए भगवान् राम के जिस धर्म रथ का वर्णन किया गया है, उसके संयोजक तत्त्वों पर ध्यान देना आवश्यक है। शौर्य और धैर्य धर्मरथ के पहिये हैं। सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताका हैं। बल-विवेक, दम (इन्द्रियों का बश में होना) और परोपकार उसके चार घोड़े हैं। ये घोड़े क्षमा कृपा और समता की रज्जुओं से धर्मरथ से जुड़े हुए हैं। ईश्वर का भजन ही धर्म रथ का चतुर सारथी है। वैराग्य डाल और सतोष कृपाण है। दान परशु और बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति है। विज्ञान ही धनुष है। निर्मल और स्थिर मन ही तरकस है। समता, दम, नियम आदि उस पर सज्जित अनेक प्रकार के बाण हैं। ब्राह्मण और गुह के चरणों में पूज्य भाव रखना ही अजेय कवच है। इस प्रकार श्रेष्ठ मानवीय गुणों तथा शाश्वत जीवन-मूल्यों के श्रेष्ठ तत्त्वों से उस धर्मरथ की रचना हुई है, जिस पर आरुढ़ होकर राम रावण जैसे लोकपीडक और प्रचण्ड शत्रु का सहार करने में समर्थ होते हैं। धर्माह्व होने से ही राम विजयी होते हैं और धर्म रहित होने के कारण ही रावण पराजित होता है। तुलसी ने समग्र रामकथा में एक ही घात पर बल दिया है कि धर्माचरण सभी प्रकार से कल्याणकर है। भरत के चरित्र की महिमा का उद्घाटन करते हुए तुलसी ने बार-बार उन्हें सभी प्रकार के धर्मों की घुरी कहा है।

होत न भूतल माळ भरत को । सकल धरम धुर धरनि भरत को ॥

तुलसी की कृतियों में व्यक्ति, परिवार समाज, प्रजा, सभी वे धर्म पर प्रकाश डाला गया है। यह धर्म भाव मिथ्यादम्बर नहीं विवेक पुष्ट है। आज की यथार्थवादी जीवनदृष्टि भी सहसा इसका विरोध नहीं कर सकती। इसकी व्यावहारिकता और ब्राह्मता के संदर्भ में मतभेद हो सकता है किन्तु इसकी धारणा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के व्यापक भ्रष्टाचार को

धर्म भाव के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। धर्म जीवन की बहुत बड़ी प्रेरणा है। तुलसी ने अपनी कृतियों में इसके मर्म को स्पष्ट करके मानवता का सच्चा पथ-प्रदर्शन किया है।

### लोक-व्यवहार एवं नीतिमत्ता

किनी भी युग में जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये 'नीति-मत्ता' एवं लोक-व्यवहार का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इसके अभाव में ऊँचे-से-ऊँचा आदर्श भी आचरण में नहीं आ पाता। तुलसी की कृतियों में नीतिमत्ता एवं व्यवहार ज्ञान के अनेक सूत्र लक्षित होते हैं। इन सूत्रों को दो प्रकार में उपलब्ध किया जा सकता है। एक तो रामकथा के पात्रों के आचरण से और दूसरे तुलसीदास की स्फुट उक्तियों से। तुलसी की कुछ प्रेरक उक्तियाँ उद्धृत हैं ..

जानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार ।  
 केहि कै लोभ बिडबना, कीन्ह न यहि ससार ॥  
 सहवासी कायो मिलहि, पुरजन पाल प्रवीन ।  
 कालक्षेप केहि मिलि करहि, तुलसी खग मुग मीन ॥  
 मृगनयनी के नयनसर, को अस लाग न जाहि ।  
 अति ऊँचे भूषरन पर, भुजगन को प्रस्थान ॥  
 × × ×  
 तुलसी अति नीचे मुखद, अन्न ऊष ओ पान ॥  
 कोउ निश्राम कि पाव, तात सहज सतोष बिनु ?  
 चले कि जल बिनु नाव, कोटि जलन पचि-पचि भरिय ॥  
 दिये पीठि पाछे लगे, सनमुख होत पराय ॥  
 तुलसी सपति छाँह-ऊयो, लखि दिन बैठि गँवाय ॥  
 वचन वेप ते जे बनें, ते बिगरेँ परिनाम ।  
 तुलसी जे निज ते बनें, बनी बनाई राम ॥  
 माखी, काक, उल्लूक, बक, दादुर से गए लोग ।  
 मले ते सुक पिक मोर से, कोउ न प्रेम पष जोग ॥  
 मिथ्या माहुर सज्जनहि, खतहि गरल सभ साँच ।  
 तुलसी छुवत पराई ज्यो, पारद पावक आँच ॥

तुलसी की कृतियों के आधार पर लोक-व्यवहार एवं नीति बोधक सूत्रों का एक कोष बनाया जा सकता है। ये सूत्र आज भी जीवन सघर्ष में हमारी सहा-

पता कर सकते हैं। इनमें मानव जीवन के अनुभव का सार तत्त्व एकत्र किया गया है। अनुभव से प्राप्त सत्य ही यथार्थ है। अतः इन अनुभूत सूत्रों की उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

जहाँ तक राम कथा के पात्रों की नीतिमत्ता का प्रश्न है वह पद-पद पर सक्षित की जा सकती है। राम, भरत, वशिष्ठ, हनुमान, जामवत, विभीषण सभी नीतिज्ञ हैं। इनके कथन एवं आचरण दोनों से ही हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। राम कथा के अतर्गत आने वाले वे स्थल जहाँ इन नीतिज्ञों के सवादों की योजना की गयी है, इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। चित्रकूट की सभा में लोक-व्यवहार एवं नीतिमत्ता के श्रेष्ठ उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार के अन्य अवसर भी हैं। जहाँ कहीं जीवन की विषम परिस्थिति के बीच से पात्रों को गुजरना पड़ा है वही उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ और नीतिमत्ता का परिचय दिया है। आज के जीवन संघर्ष में भी हम इन स्थितियों में मानस के पात्रों द्वारा लिये गये निर्णयों से लाभ उठा सकते हैं।

## संतुलित जीवन-दृष्टि

राम चरित मानस में संतुलित जीवन दृष्टि पर विशेष बल दिया गया है। तुलसी के पूर्व धर्म-साधना एवं साहित्य रचना दोनों क्षेत्रों में संतुलित दृष्टि का अभाव सक्षित होता है। साधना के क्षेत्र में ज्ञान-साधना, कर्म-साधना, योग-साधना सभी का विकास अलग-अलग हुआ था। सभी की अपनी सीमाएँ बन गयी थी। ज्ञान साधना ने साधकों के बीच अहंकार एवं दम्भ का विकास किया। कर्म-साधना मिथ्यादम्बर की ओर ले गयी थी। योग साधना प्रदर्शन की वस्तु बन गयी थी। स्वयं उपासना के क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गयी थी। तुलसी ने इन सभी का सामंजस्य करते हुए श्रुति सम्मत एवं विरति विवेक-युक्त हरि भक्त पथ पर बल दिया। उनकी जीवन दृष्टि एक पूर्ण जीवन पद्धति का निर्माण करने में समर्थ है। उसमें ज्ञान है, किन्तु अहंकार नहीं, अन्धता है, किन्तु अन्ध विश्वास नहीं, योग है, किन्तु प्रदर्शन नहीं, कर्म है, किन्तु आडम्बर नहीं। इस प्रकार उन्होंने सारी विकृतियों से अलग शुद्ध एवं पूर्ण साधना पथ का निर्माण किया है। आज के जीवन संघर्ष में यह जीवन दृष्टि की पूर्णता हमारे लिये अत्यन्त श्रेयस्कर हो सकती है।

उपर्युक्त प्रमुख बातों के अतिरिक्त स्पष्टवादिता, तेजस्विता, आत्मविश्वास, दृढ़ता, आत्मालोचन, सामान्य जन के प्रति स्नेह, अनासक्ति आदि अनेक ऐसे तत्व हैं, जो तुलसी की विचारधारा एवं जीवन दृष्टि के अंगिष्ठ अंग हैं। किसी

भी युग के सघर्षशील मानव के लिए इन गुणों की आवश्यकता पड़ सकती है। इनके अभाव में न हम अच्छे नेता बन सकते हैं, न अच्छे अनुयायी।

## चेतना का परिष्कार

आध्यात्मिक स्तर पर किया जाने वाला सघर्ष मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के परिष्कार का मूल आधार रहा है। आज की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सम्पत्ता से ऊँचा हुआ मनुष्य अध्यात्म के प्रति जिज्ञासु हो रहा है। विश्व के ऐसे राष्ट्र जहाँ वैभव की कमी नहीं है, किन्तु जो भौतिक सुख सुविधाओं से ऊँच चुके हैं आज अध्यात्म तत्त्व के रहस्य को समझना चाहते हैं। ऐसा समझा जा रहा है कि आज के सघर्षशील मानव के लिये अध्यात्म ही एकमात्र विद्याम केन्द्र बन सकता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे ऋषियों और धर्मसाधकों ने बहुत पहले इस रहस्य को समझ लिया था। अध्यात्म के स्तर पर चलने वाला सघर्ष चेतना का जड़ता से, मूढमता का स्थूलता से और निम्नतर मनोभूमि का उच्चतर मनोभूमि से होने वाला सघर्ष है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में इस सघर्ष की सभी स्थितियों को व्यक्त किया है। दैन्य की सारी भूमिकाएँ इसी सघर्ष को स्पष्ट करती हैं। इस सघर्ष की समाप्ति उनके पूर्ण मनोप्राप्त के साथ हो जाती है। इसकी पहचान मात्र इतनी हो है कि सघर्षशील साधक का मन प्रभु के चरणों में लीन हो जाता है। वह सत्कार से विभूत हो जाता है। उसका सारा कर्मप मिट जाता है। वह हानि-भाग, सुख-दुःख, उभय स्थितियों में अविचलित रहकर समरसत्व प्राप्त कर लेता है। विनय पत्रिका में तुलसी ने कहा है—

तुम अपनायो सब जानिहीं, जब मन फिरि परिहै ।

जेहि सुभाव विषयनि लग्यौ, तेहि सहज नाथ सों नेह धाड़ि छल करिहै ॥

हरपिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।

हानि लाभ दुख-मुख सबै सम चित हित अनहित, कलि कुचान परिहरिहै ॥

मनका यह उपग्रयन ही तुलसी का लक्ष्य नहीं था। वे मनके इस परिष्कार के बाद उससे प्रभु के प्रति पूर्ण रागात्मक समर्पण भी चाहते थे। वे आगे कहते हैं।

प्रभु गुन सुनि मन हरपिहै, गीर नयननि ढरिहै ।

तुलसीदास भयो राम को विस्वास प्रेम लखि आनन्द उपगि उर भरिहै । राम के प्रति यह पूर्ण समर्पण ही तुलसीदास के आध्यात्मिक सघर्ष की चरम स्थिति है। मनका उपग्रयन चेतना का परिष्कार और समरसत्व प्राप्त करने के

वाद किसी उच्चतम मूल्य के प्रति समर्पण को आज भी आध्यात्मिक स्तर के सघर्ष की चरम उपलब्धि माना जा सकता है ।

सात्पर्य यह कि तुलसी ने जिन जीवनादशों का प्रतिपादन किया है, और जिन जीवन मूल्यों को अपने मत का मूलधार माना है, वे आज भी हमें प्रेरणा और शक्ति दे सकते हैं । तुलसी का मत गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर आज भी प्रासंगिक है । अतः एव बाह्य द्वन्द्व अथवा सघर्ष जीवन की प्रक्रिया है, लक्ष्य नहीं । इस सघर्ष की अनिवार्यता स्वीकारी जा सकती है । इसके सातत्य की बात कही जा सकती है, किन्तु इसे जीवन की उपलब्धि या लक्ष्य नहीं माना जा सकता । श्रद्धा और विश्वास के बिना किसी सघर्ष में विजय नहीं प्राप्त की जा सकती । वह श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी का सम्बल था । उनके मत के मूल में, उनकी जीवनपद्धति के केन्द्र में और उनके समस्त जीवन सघर्षों की प्रेरणा भूमि के रूप में श्रद्धा और विश्वास को सर्वोपरिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । श्रद्धा ही आनन्द की भूमिका तक ले जाती है । आज का सशयप्रस्त मानस भी अन्तिम निर्णय के लिये श्रद्धा और विश्वास का सहारा लेता है । उसे लेना पड़ता है । भले ही यह श्रद्धा किसी परोक्षा, पूर्ण, का अखण्ड, अनादि, अन्तः, सत्ता में न होकर कोटि-कोटि जनो के प्रति हो, इतिहास के प्रति हो या किसी व्यवस्था-विशेष के प्रति हो ।





## मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद

मामा प्रागदास<sup>१</sup> सत्ताभाव के रामोपासक थे। उनकी सख्यासक्ति विलक्षण थी। भक्तिशास्त्रों में निर्दिष्ट नर्म, प्रिय और सुहृद् भावों के कगार उसकी वेगवती धारा को बाँध रखने में समर्थ न हो सके। विरहृत के सुप्तप्राय तीर्थस्थलों के उद्धारक, जनक-भावापन्न महात्मा सूरकिशोर से दीक्षा ग्रहण कर निमिषशी कुमार के रूप में रघुवशी रामचन्द्र से साले-बहनोई का सम्बन्ध जोड़ इन्होंने मिथिला अवध के पुराने नाते को अपने भावामृत से सींचकर फिर से हरा कर दिया। सम्बन्ध की पुष्टि के लिए ही ये यात्रा के अनेक कष्ट सहते हुये अयोध्या आये और जनक-भवन में अपनी दिव्य बहन का नित्य दर्शन करते हुए उसी के समीप एक नीम के पेड़ के नीचे कई वर्षों तक कठोर साधना की। 'रामलला के सरवा' होने से अयोध्यावासी इन्हें मामा कहते थे। इनके जीवन-काल में ही यह उपाधि इनके नाम के साथ जुड़ गई और ये सर्वत्र मामा प्रागदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

युगलप्रियाजी ने रसिकप्रकाश भक्तमाल में इनकी लोक-यात्रा के विषय में केवल इतना लिखा है कि ये महारमा सूरकिशोर के शिष्य थे और सत्ताभाव से सीताराम की उपासना करते थे। इनकी विरक्ति-भावना इतनी तीव्र थी कि लोक-सपर्क की दूषित प्रवृत्तियों से बचते हुए ये आजीवन नीम के पेड़ के नीचे आसन जमाये रहे। बैठने के लिए एक चारपाई और पानी पीने के लिए एक

---

१ 'रामभक्ति में रसिक संप्रदाय' (पृ० ४०२-४०३) में इसका परिचय प्रयाग-दास नाम से दिया गया है, किन्तु इधर इनकी जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनमें प्रागदास नाम आया है। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में इनके नाम का यही रूप उल्लिखित है। लोक-व्यवहार में भी सोयेंराज प्रयाग को 'प्रागराज' अथवा 'परागराज' कहा जाता है। संभवतः, इसीलिए मामा 'प्रयागदास' ने अपनी छंद रचनाओं में परागदास' छाप रखी है और साहित्यिक कृतियों में ध्वनानुरोध के कारण 'प्रागदास'।—से०

करवा के अतिरिक्त इन्होंने कभी अपने पास कोई अन्य वस्तु रखी ही नहीं। (किसी रामायणी से) राम-वनवास के प्रसंग में युगल राजकुमारों के सीता-सहित मगे पाँच दन जाने का वृत्तांत सुनकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। भावावेश में इन्होंने तीनों पयिकों के लिए जूते बनवाये और उन्हें सिर पर रखकर अपने अलौकिक सम्बन्धियों को ढूँढते हुए पंचवटी जा पहुँचे। वहाँ आराध्य ने साक्षात् प्रकट होकर इनके द्वारा अर्पित जूते पहने।<sup>१</sup> वामुदेवदास ने पाद-टिप्पणी में छप्पय की टीका में इन प्रसंगों को स्पष्ट करते हुए कुछ नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि एक बार प्रयाग में त्रिवेणी-तट पर निवास करते हुए इन्होंने कई शीघ्रमतावलम्बियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर अपना शिष्य बनाया था।<sup>२</sup>

‘रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय’ के लिए सामग्री सकलित करते समय इन पक्तियों के लेखक को बहुत प्रयत्न करने पर भी, इनकी कोई लिखित रचना उपलब्ध न हो सकी थी। अयोध्या और मिथिला के सतों में मौलिक परंपरा से प्रचलित केवल चार छंद मिले थे। अतः उक्त ग्रंथ में इनकी काव्य-शैली के उदाहरणस्वरूप उन्हे ही उद्धृत कर सटीक करना पड़ा था। इनकी भाषा ठेठ अवधी है। प्रागदास की काव्य प्रतिभा के विकासात्मक अध्ययन के लिए वे चारों छंद नीचे दिये जाते हैं—

नीम के नीचे साठ पदी है खाट के नीचे करवा।

‘प्रागदास’ अलबेला सोवे रामसाल के सरवा ॥

१. भाविक सूरकिशोर के प्रागदास साधक विशद।

प्रिय संबंध उबार सस्यपद निमि बसो हैं।

नीमतरे नवसाट विद्यो करवा बिलसो हैं ॥

सोत्र त्याग अनुराग अवधि पनहीं सिरपारो।

पंचवटी दन कुंभगली भेटे दिय प्यारो ॥

बचन भावयुत कहि सरस पहिराई पनही सुखद।

भाविक सूरकिशोर के प्रागदास साधक विशद ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० २२।

२. रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ २३।

मुहियो ने परपच रचा है हमें काम का मेलो मे ।  
 'परागदास' रघुवर को लैके पड़े रहेंगे डेलो मे ॥'  
 'परागदाम' जो पीपर होते राघौ होते भुतवा रे ।  
 आठ पहर छाती पर रहते वै दसरथ के पुतवा रे ॥  
 धुनि धुनि कैसवा कहें महेसवा पार न भावै सेसवा ।  
 'परागदास' पहलदवा के कारन रचवा होइगे बघवा ॥

मेरी यह धारणा थी कि प्रागदासजी की अन्य कृतियाँ इनके फलकबपन और भ्रमणशीलता के कारण नष्ट हो गई होंगी । किंतु, इधर अकस्मात् मिथ्वाचार्य रामसखे की रचनाओं के प्राचीन हस्तलेखों में प्रागदास के तीन छंद प्राप्त हो गये हैं, जिनमें दो सवैये हैं और एक पद ।<sup>१</sup> वे इस प्रकार हैं—

दामिनी सी सिय सग विराजति मोती दिए थग पाँति छए हैं ।  
 हेम जनेऊ मनो धनुइन्द्र को पीत पिछौरी के रूप जए हैं ॥

१ मामा प्रागदास मैलों को धैरागियो द्वारा भीली-भासी जनता को ठगने के लिए रचा हुआ प्रपञ्च कहते थे । इसलिये, अयोध्या में जब कार्तिक पूर्णिमा तथा रामनवमी के अवसर पर लाखों की भीड़ होती थी, तो ये नगर छोड़कर रामघाट के आगे सरयू नदी के किनारे में जाकर रहा करते थे । उस समय राम का एक चित्र इनके साथ रहता था । मेला समाप्त होने पर ये पुनः अपने पुराने आसन पर नीम के पेड़ के नीचे बसे जाते थे । —ले०

२ इन्हीं के साथ इनके गुरु सुरकिशोरजी का भी निम्नांकित छंद मिला है  
 आतपास सहचरी नूपुर मनकार करे,  
 चपा कैंसो कली मानी फूली बेसमत की ।  
 सौधे की लपटे दपटें भरि भँवरन की,  
 शोनादिक बजन लागे उघटि कसगान की ॥  
 मोहन झरोखन के परवा उधारि शोन्हे,  
 सतत सुभाइ सखी कोटि सतभान की ।  
 मिटिगी अमंगल भयो मंगल 'विसोर सूर'  
 अगमगाइ उद्यो महल जागी जब जानकी ॥

बैन कढें मुम्हते अमीधार सो दीनन कीं बरसाइ दए हैं ।  
 भावें सदा 'प्रागदास' मयूर कीं रामलला धन से उनए हैं ॥  
 स्याही सिताई ललाई लिए जहाँ जात निछावर भैन धने हैं ।  
 कुडल लाल लसैं अलकें दिग पीनें कपोल सुगध सने हैं ॥  
 मोती विराजति नासिका में बरनों कहीं रूप के तबू तने हैं ।  
 सोहैं सदा 'प्रागदास' कीं भावत रामलला जू के नैन बने हैं ॥  
 आछे प्यारे रामजी लला ॥ तुम्हारे बदन पर अनत कला ॥  
 मुल मे बीरी नैना बिसाल । जित चितए सित करे निहाल ॥  
 जहाँ पडे भक्तन वे भीर । हरषत आवें सिय रघुबीर ॥  
 छोटीसी धनुम्याँ छोटी छोटी तीर । खेलन निकसे सरजू के तीर ॥  
 'प्रागदास' बले सरजू तीर । बीच मे मिलि गए सिया रघुबीर ॥

इन तीनों छंदों में 'प्रागदास' की छाप और अभिव्यक्त भाव मामा प्रागदास की पूर्वप्राप्त रचनाओं से सर्वथा अभिन्न हैं । ऊपर से देखने में यद्यपि दोनों कवियों की भाषा-शैली में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है, किंतु मामाजी की गलदन्तु भावुकता और पांडित्य के प्रकाश में उनका समीक्षात्मक अनुशीलन करने पर यह भ्रांति दूर हो जाती है । प्रस्तुत छंदों में उन्होंने अपने आराध्य 'रामलला' का स्मरण जितनी आत्मीयता तथा तन्मयता के साथ किया है, उसमें उनकी प्रगाढ़ सख्यासक्ति स्पष्ट झलकती है । रहा अभिव्यजना-प्रणाली एवं भाषा-विषयक अंतर । इस सम्बन्ध में अपना यह विचार है कि प्रागदास की जो रचनाएँ पहले मौखिक परम्परा से सकलित की गई थीं, वे समय-समय पर भस्ती में कही गई उनकी उत्तिर्या-मात्र हैं, जो अपनी विचित्रता के कारण इतनी आकर्षक हो गई थी, कि सत्-समाज उन्हें धृति-परंपरा में सुरक्षित किये रहा । उनकी ठेठ अवधी अयोध्या के दीर्घ निवास का प्रमाद है । इनके अतिरिक्त उन्होंने सत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-भाषा व्रज में भी सरस रचनाएँ की थीं, किंतु उनका अधिकांश प्रागदास की मायावरी वृत्ति के कारण तथा गद्दीधारी सत् न होने से नष्ट हो गया । प्रतीत होता है कि सजातीय सख्योपासकों ने उनकी कृतियों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था । अद्वारहवीं सदी के प्रसिद्ध सख्याचार्य रामसखे के हस्तलेखों के साथ प्रागदास के उपर्युक्त छंदों की प्राप्ति इस धारणा की पुष्टि करती है । हो सकता है, खोज करने पर इसी स्रोत से उनकी कुछ और कृतियाँ प्रकाश में आये ।

शिवसिंह सेगर और प्रियसन ने इनके कुछ सुरक्षितोद्धार का समय सन्

३२४ :: रामकाव्यधारा—अनुगमन एव अनुचितन

१७०४ ई० के आसपास निश्चित किया है।<sup>१</sup> इस आधार पर इन्हें अठारहवीं शती के प्रथम चरण में विद्यमान मानना असंगत न होगा।



- 
१. इन दोनों विद्वानों में सर्वप्रथम सेंगरजी ने इनके एक कविस में, जो 'सरोज' में उद्धृत है, 'किशोर सूर' छाप बैठकर भ्रमवश उसे ही इनके नाम का शुद्ध रूप मान लिया था। सरोज के दूसरे छंद में दो गई इनकी वास्तविक सत्ता 'सूरकिशोर' की ओर उनका ध्यान नहीं गया। प्रियर्सन साहब ने इस विषय में सरोज का ही अनुगमन किया है। देखिए, शिवातिह सरोज (सप्तम संस्करण) पृ० ३६४ तथा 'ब मोहन वर्माव्युत्तर तिलकेश्वर ऑव हिन्दुस्तान, (हिन्दी-अनु०) पृष्ठ २१४।

## बाबा लक्ष्मीनारायणदास पौहारी

गोरखपुर देवरिया जनपद भगवान बुद्ध की निर्वाण भूमि और गोरक्षनाथ की साधना भूमि के रूप में विख्यात है। भारतीय धर्म साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह भूभाग प्राचीन काल में वेदब्राह्म साधनाओं का प्रधान केन्द्र रहा है किन्तु मध्यकाल में यह भागवत धर्म का मुख्य गढ़ बन गया। सरपूषारीण ब्राह्मणों की आदिभूमि के रूप में इसकी प्रतिष्ठा इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इसके फलस्वरूप वैदिक कर्मकांड, उपासना तथा ज्ञान के प्रसार का द्वार खुल गया और संहृत के अध्ययन-अध्यापन का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। अयोध्या से निकट होने के कारण रामोपासना यहाँ के लोकधर्म के रूप में चिरकाल से प्रतिष्ठित थी किन्तु इसके सांप्र-दायिक संगठन का श्रेय महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी को है। पौहारी जी अयोध्या के प्रसिद्ध रामभक्त बिन्दुकाचार्य महात्मा रामप्रसाद की परंपरा में उनकी चौथी पीढ़ी में विराजमान महात्मा अवध प्रसाद जी के शिष्य थे। इनका प्रारम्भिक नाम लक्ष्मी नारायण था किन्तु साधना काल में अन्न त्याग कर सदैव दुग्धपान एवं फलाहार वृत्ति से जीवन यापन करने के कारण ये पौहारी (पयहारी) नाम से प्रसिद्ध हुए।

पौहारीजी का जन्म देवरिया जिले में राप्ती नदी के तट पर स्थित महेन नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम प० शिवराम पाण्डेय था। लक्ष्मीनारायण जी के घर के निकट ही 'महेन्द्रनाथ' महादेव का मन्दिर था। बाल्यावस्था में ही इनकी उस विग्रह में श्रद्धा हो गयी और ये प्रायः दिन भर मन्दिर में ही शिव-नाम का जप किया करते थे। बड़े होने पर पिता ने इनका विवाह कर दिया किन्तु गार्हस्थ्याश्रम में उनकी वृत्ति नहीं रमी और ये उत्तरोत्तर विरागोन्मुख होते गये।

एकबार की बात है, चन्द्रग्रहण के अवसर पर ये अयोध्या गये। वहाँ 'नारायण' नामक किसी महात्मा ने इनकी मेंट हो गई। उनके सम्पर्क से इनके हृदय में रामभक्ति का बीज बपन हुआ। वहाँ से घर आने पर इनकी विरक्ति

भावना और भी उद्दीप्त हो गयी। फिर तो ये माता-पिता, माई-बन्धु, वित्त-धनिता—सबसे नाता छोड़कर 'महेन्द्रनाथ' के मन्दिर में ही स्थायी रूप से निवास करते हुए भजन करने लगे। इस अवधि में ये कत्ताहार करते थे और कभी-कभी निर्जल घन भी रखते थे। इस प्रकार कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन इन्हे आकाशवाणी हुई कि 'हे प्रिय ! तुम्हारे मन में सियाराम के प्रति अगाध श्रद्धा है, अतएव तुम सप्रेम रामस्मरण ही करो।' भगवान् शंकर की यह आज्ञा पाकर लक्ष्मीनारायण ने वन की राह ली। कहते हैं कि वहाँ एक दिन ये गायत्री मन्त्र का जप कर रहे थे। इतने में एक हाथी आया। उसने इनको सूँढ़ से उठा कर अपने कंधे पर चढ़ा लिया। वह इन्हे लेकर पहले पैकोली गया। वहाँ से बैकुण्ठपुर और बड़हनगज होता हुआ उसने पुनः इनको पैकोली लाकर उतार दिया तथा स्वयं लुप्त हो गया। पयहारी जी की परंपरा के रामभक्तों का विश्वास है कि हाथी रूप में स्वयं श्री कृष्णदास जी पयहारी पधारे थे। इसी वदना के आधार पर संप्रदाय में उक्त तीनों स्थान पूज्य माने जाते हैं और वहाँ इस शाला की गहियाँ स्थापित हैं।

इस घटना के उपरान्त लक्ष्मीनारायणजी गुरु दीक्षा के लिए अयोध्या गये। वहाँ बड़ा स्थान के तत्कालीन महत् महात्मा अवध प्रसाद से दीक्षा प्रग्रहण की। अन्तः साश्य से भी अवध प्रसाद जी के इनके गुरु होने की बात पुष्ट होती है—

सतगुरु ही मैं अधम भिन्नारी।

कामक्रोध मोहि अधिक सदावत सोम मोह अति भारी ॥

ताते आज जियो शरणागत सुनि लीजे असुरारी ॥

अवध प्रसाद अवध के वासी देखो नयन पसारी ॥

लक्ष्मीनारायण दास तुम्हारो आरत बचन उचारी ॥'

दीक्षोपरांत ये कुछ समय तक अयोध्या में ही रह कर गुरु सेवा और साधु सगति में लीन रहते हुए साधना करते रहे। इनके एक पद से यह प्रकट होता है कि इन्हे ज्ञान भी यही प्राप्त हुआ था—

हो मैं हरि चरन की दासी।

ता दिन ते हरि सरन आये मेटल सकल उदासी।

गुरु की सेवा साधु की सगति मिलि गये मोहि अविनासी ॥

तब ते काम क्रोध भय छूटेउ होइ गयेउ मुख रासी।

ज्ञान विराग आये बहु बाढत भक्ति भई हिय वासी ॥

होइ अनुराग परम पद पावत भये अवध के वासी ।  
तन ते मोम भयो नहि तृप को जानेउ निजपुर बासी ॥  
प्रभु कर कमल सीम पद परसत जम-मुख लागत मासी ।  
अस संयोग पूर करि रघुपति सीय सखन सग वासी ॥  
सदमी नारायण दास तुम्हारो छूटि गइल जग लासी ॥

इनकी साधना से पूर्णतः सतुष्ट होकर महात्मा अवध प्रसाद जी ने इन्हे रामभक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी । गुरु आज्ञा पाकर ये भवसागर में डूबते हुए प्राणियों के उद्धारार्थ निकल पड़े । विचरण करते हुए ये देवरिया जिले में पैकोली के समीपस्थ गुर्ना नदी के तट पर आये और वही 'ठकुरही' के वन्य प्रदेश में छ वर्ष तक घोर तपस्या करते रहे । वहाँ से सन् १८६० में ये पैकोली आये और एक बरगद-वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे । पैकोली के निवास काल में पैहारी जी की कई सिद्धियों की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । अनेक औषधों, डाकिनी-शाकिनी आदि पर विजय प्राप्त करने की कहावतें आज भी उक्त भूभाग में श्रद्धा के साथ कही और सुनी जाती हैं ।

सन् १८७७ में पौहारी जी ने सत्तो की जमात के साथ चित्रकूट की यात्रा की थी । वहाँ कुछ दिन रहकर जानकी कुंड, कामदगिरि आदि स्थानों का दर्शन करके पुन पैकोली लौट आये । इसमें अतिरिक्त हरद्वार, ऋषीवेश, आदि स्थानों पर भी इन्होंने कुछ समय तक निवास किया था ।

कहा जाता है कि एक बार ये अपने भक्तों के साथ घर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए नेपाल के तराई अंचल में पहुँच गये । वहाँ इन्हें एक महाजन मिला । उसके एकमात्र पुत्र का सर्प काटने के कारण दहात हो गया था । उसने बड़े ही आर्तभाव से पौहारी जी से सब समाचार कह सुनाया और शव को लाकर उनके सम्मुख रख दिया । पहले तो इन्होंने उसे भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया किंतु उसने एक न सुनी । वह पुन पुन भूत बालक को प्राणदान देने की प्रार्थना करता रहा । अंत में इन्होंने उसकी स्थिति पर दया करके हरि-स्मरण करके पाँच बार मंत्र पढ़ा । दुर्भाग्य से मंत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । तब पौहारी जी ने दुःखित होकर यह पद गाया—

प्रभु तुम बड़ी ध्योर कहायो ।

वेद पुराण सव अस गावत गिब सारद मन भायो ।

जह जह गाढ़ परत जीवन पर तह तह बार न सायो ।

गज के बाज तुरत उठि धाये द्रोपदी थीर बढायो ।

पाँचों पाँइव सदयागृह में तहाँ भणि नम को सोनि बियायो ।



नामदेव के भवन ध्वामो तिलोचन दरसायो ।  
 खम फारि हरनाकुस मारे जन प्रह्लाद बचायो ।  
 अम्बरीष अत राशि लियो हैं दुर्वासा दुख पायो ।  
 चक्र सुदर्शन जारन लाग्यो त्राहि त्राहि गोहरायो ॥  
 एकबार अजामिल तुव जन नारायण मुधि पायो ।  
 जम के दूतनि भारि निकार्यो निजपुर बेगि बोलायो ॥  
 कीकलठ मह बुढ भयो हो की, चक्र चोरायो ।  
 की कहु राक्षस बाग्नि लियो है ताते मुधि बिसरायो ।

भक्त के इस कातरतापूर्ण पद की ध्वनि कर्णासिंधु भगवान के कानों में पड़ी और उनकी कृपा से महाजन का सटका उठकर बैठ गया । तब पौहारी जी ने इन पक्तियों को रच कर पद को पूरा किया—

गावत गावत पार न पावत निसिदिन बग्दि छोडायो ।

‘लक्ष्मीनारायण’ जन यहि अवसर प्रभुता देखि परम मुस पायो ।

पर्यटन समाप्त होने पर यह पैकोली लौट आये और वहीं आजीवन निवास करते रहे । इनका साकेत वास आपाह शुक्ला सुतीया, सोमवार संवत् १९०८ को हुआ ।

पौहारीजी की गहियाँ अब भी पैकोली, बैकुण्ठपुर और बडहलगज में चल रही हैं । इनमें प्रतोत्सव मनाने की जो परिपाटी पौहारीजी ने चलायी थी वह अब भी उसी रूप में प्रचलित है । आज भी पैकोली में रामजन्म तथा कृष्णाष्टमी बडहल गज में रघुयाना और बैकुण्ठपुर में राम विवाह का उत्सव बड़े धूम से मनाया जाता है । पौहारी जी के उत्तराधिकारी अपने पूर्वजियों की भाँति आज भी बिरक्तिपूर्वक कालयापन करते हुए रामभक्ति का प्रचार कर रहे हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर-देवरिया जनपद के आध्यात्मिक इतिहास में पौहारी जी का वही स्थान है जो मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास में गलता गद्दी (राजस्थान) के प्रवर्तक श्री कृष्णदास पयहारी का था ।

परिशिष्ट



## परिशिष्ट मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

### १. रामचरित

(क) प्रसंग—लका पर राम की चढाई और उससे भयभीत मन्दोदरी द्वारा रावण की भर्त्सना—

फीर गई राम दुआई लका मे फीर गई राम दुआई रे ।

वैहूत मन्दोदर सुन पीया रामण ऐसी कुनछ चलाई रे ॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल लपटाई रे ॥<sup>१</sup>

(ख) राम की अष्टयाम लीला—राम की शयनकक्षा में जाने की तैयारी और मन्त्रियों द्वारा उनका शृङ्गार। निम्नलिखित पद शयन समय की आरती का है। शृंगारी रामभक्ति की तत्सुखी भाषा में, प्रिया-प्रियतम की बिहार लीला का जालरघो से दर्शन और ध्यान हो गावक (सखी) का अभीष्ट होता है। मीराबाई उसी आनन्द (तत्सुखगुणित्व) को प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करती हुई कहती हैं—

मरिच पीठिये रघुराई ॥

कचन को महन वचन को दुसिया रेसम बरन बनाई ॥

फूलन सेज फूलन के गिदवा फूलन लूब लगाई ॥

चोबा चदा अगर कुमकुमा केसरि अंग लपटाई ॥

सीताराम दोउ सग पीडे बलि जाय मीरा बाई ॥<sup>२</sup>

१. रामस्थान प्राच्य विद्या शोध संस्थान जोधपुर, हस्तलेख सं० ६२६६ पत्रांक ६ ।

२. रा० प्रा० बि० शो० प्रतिष्ठान जोधपुर हस्तलेख सं० १८८२ पत्र ६८ ब तुलसीय—पीठिये रसिब जानकि रमन ।

सूर्यश्रु के भोग यामें महल अति मन हरन ॥

विविध रचना बनो कहूँतहें विधि निपुणया हूँसन ।

मेज रचना बनन बहि नहिं मनहूँ मनतिज मयन ॥

पिया ध्यारी ताहि ऊपर केति बर मुख सदन ।

यहै दाता कछ तसियन मुछन बच तति ससन ॥

— छप्परास पदावली, पद सं० १०

## ४ • रामकाव्यधारा—अनुसन्धान एवं अनुचितन

### २ राम की भक्तवत्सलता—

राम जी बिना कूँण हरे म्हारी भीर ।

ऐक समे गजराज उबार्यो कान्हा जहूर जे भीर ।

ऐक समे प्रह्लाद उबार्यो धारियो नृसिंह सरीर ॥

ऐक समे द्रोपति पत राखी लँचत बाढ्यो धीर ॥

राँका भी त्यारा रामजी बाँका भी त्यारा, त्यारा है कालू कीर ।

भीराँ के प्रभु हरि अवनसी वै साहि गहूर गँभीर ॥

### ३. आत्म प्रबोधन—

अपराधी तैं राम न जान्यो रे ।

हारा सी तन छाडि के रम मो बिस छाग्यो रे ॥

जठराग्नि ते काढ़ि के बाहर लै आन्यो रे ।

उहाँ ते आयो कौल करि इहाँ बिसरान्यो रे ॥

मात पिता सुत बँधवा इन सौं मन मायो रे ।

मीराँ प्रभु गिरधर बिना कोठ बख न समान्यो रे ॥

### ४ राम शरणावधि—

रघुवर माघो री मुरत सील बरन धनश्याम ।

सीयावर माघो री मूरत ।

परण कर तारत सबको दाता मनसा री पूरन काम ॥

जनक मुतावर लक्ष्मण राजीद क्रीट मुकुट अभिराम ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल निज धाम ॥

### ५ कैकर्य निष्ठा—

राखी राम हज्वरी बाला हमम बडी सबूरी ।

अयोध्यापुर मे चाव न्याने तो राखी राम हज्वरी ॥

हे जी । सेर हू सेरी बजरी दीज्यो नातर दीज्यो कुरी ।

पचा अमृत कर कर मनु मानूँ हमने घडी सबूरी ॥

हे जी । बोझनको कारी कामरी दीजे नातर दीज्यो कुरी ।

मेरा जीव सो लागि धरत न मेले कमल की दूरी ॥

हे जी । चारो ल्यासूँ पूलो ल्यासूँ-मैंस दुवासो भूरी ।

जीमन जूठन करि करि मेलू क्षारी लेर हज्वरी ॥

हे जी ! मोर मुकट करना कुडल सोहे और बैजंती माला ।  
आठ पहर दरबार खड़ी रहै काटो जीव का जाला ॥  
मीराबाई हरिगुन गावे चरन कँवल की दासी ।  
चरन कँवल की सेवा करसूँ चरनाम्न की प्यासी ॥<sup>१</sup>

#### ६ राम भजन—

रसनां तू राम बिना भति बोल ।  
ओर बोल्या अपराध सगत है पडत भजन माँहि शोल ॥  
मुखरत सुभिरण कर ले री आँधी में दोष बात अमोल ।  
अगत तणी बात सब सूँठी राम नाम मुख बोल ॥  
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर कीया छै गरम माँहिँ कोल ॥

पड गई रे भाने राम भजन की बाँण जी ।  
साध सगन बीनो बाहो दिन बीता हो आय पडी है मोहि हाण जी ॥  
देय कूँक में पाव चरुंगी पाणी पीउँगी मैं छाण जी ।  
घर धधा मा भेरो मण नहि लागै साधा मैं बैठूँगी आण जी ॥  
मेरो तो मन हर सू जी लागै छाड़ डाली कुलकी काँण जी ।  
पाँव दीपा चल सतसग कर ले हाण दीया कर दान रे ॥  
नेण दीया साधु दरसन कर ले कान दिया सुण भ्याँन जी ।  
मीराँ कहै प्रभु भतगुर सरणै हरमु पडीछ पिछाण जी ॥<sup>२</sup>

जो दुप घाय सो पाज्यो रे हम राम जी न भजत ।  
पीड जाय तो रापव कीजो जीव आय तो मायो रे ॥  
उवा बाध तल अगनी पूजालो भार समेला री पाज्यो रे ।  
लोक नीदे ताने निदवा दोजे राज दडे तो डंढाज्यो रे ॥  
मीराँ कहै दुप कोट सहीजे गुण गोविन्द जी पाज्यो रे ॥<sup>३</sup>

- 
१. राजस्थान प्रा० वि० शो० प्र० जोधपुर, हस्तलेख सं० १८६०, पत्र ८६-६० ।
  २. अनूप स० पु० लालगढ़ बोकानेर हस्तलेख सं० ११२ ।
  ३. राजस्थान प्रा० वि० शो० प्र० बीकानेर हस्तलेख सं० १०४५७ से संकलित ।
  ४. संत साहित्य मण्डल बीकानेर के हस्तलेख संग्रह से ।

### ७. रूपासक्ति—

रघुवर भोहि परनाई अमां मोरी ।  
 सुन्दर सुधह मुजान साँवरो जनम-जनम भरतार ॥  
 मोर मुकुट पीताम्बर सोहै मल मोतीयन की माल ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कंबल चित लाई ॥<sup>१</sup>

माई मोरे नयन धसे रघुवीर ।  
 कर सर-चाप कुसुम सर सोधन ठाढ़े भए मन धीर ॥  
 ललित लवग लता नागर लीला जब देखो तब रणधीर ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर बरसत कचन मीर ॥<sup>२</sup>

### ८. मधुर-मिलन—

तव नाव तीषाणो बाणो रामायो हीवैडो हारे  
 भुगत रो भाल सोहीयो ॥  
 मारे सीले सतोकै छुदहे बाणो रामायो ही सासुडा री कोरे ।  
 सहेल्या हे धाणो पेरियो चीते चीतने बुडेणो बाणो ॥  
 रामायो हे चालेया जी रे लुबै झुबै बाजु बदि बाणा  
 रामायो हे बाजुबादे री लुबै ॥  
 सहेल्या हे मै तो कारणो रो काजाने सारियो सील पैसा साद ।  
 ईतरी गणो जी पैहारे नीकैनी रामाया री सेजे ॥  
 बाई मीरा ने सास गिरधारे मीस्या पुरी पुरी  
 य मनैडा री आसा ॥<sup>३</sup>

धु तो मेरा राम मीस्या दीलजानी, मेर उपर मेरबानी  
 देस देस और मुलक मुलक मे पाई नही तरी निमानी ॥  
 जगकी आस बास सब तज दी, लाब होवो चाहै हानी ।

१. रा० शो० सं० बीपासनी (जोधपुर) हस्तलेख सं० २८८४ ।

२. मीरा माधुरी—परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २५६ ।

३. रा० शो० सं० (जोधपुर) हस्तलेख सं० ८३६६ से संकलित ।

काए मेर ताइया जय मे तेरी सुरत मन भानी ॥  
मुणीए साम काम जलदी कर कहा पत्री लघु छानी ।  
वाई मीरा भणें साम से मु जाचक शु दानी ॥<sup>१</sup>

## ६. विरह निवेदन

कोई राम पिया घर सावे रे ।  
तलफत प्राण दुखी अति मेरो जरती अगन बुझावे रे ॥  
हे कोई मीत हमारो ऐसो जाय सदेसो मुणावे रे ।  
ब्रह्म अगन भई अति आतुर आगत रेण बिठावे रे ॥  
तलप तलप सन तालावेली सास कलप सम जावे रे ।  
मीर बिना पछी किम जीवै बीछडिया मर जावे रे ॥  
अब तो किरपा कर जावो मनमोहन दरस देखि देखावो रे ।  
जन मीरा ब्रह्म अति व्याकुल मरतक जान जियावो रे ॥<sup>२</sup>

मीरे घर आज्यो राम पियारा ।  
मैं निगुणी मे गुण महि कोई मो मैं बोगण सारा ।  
तन मन धन सब अरपण करसूं भजन करूं मैं धारा ॥  
बोहा गुणवता साहिब मेरा गुना बकस ज्यो सारा ।  
मीरा तो चरणन की दासी तुम बिना नैन दुखारा ॥<sup>३</sup>

राम जी मिलावे तो फेर मिलेंगे मिल बिछडी मत कोई हो ॥  
लगन अगी जब लाज कहाँ रही निंद्या करो सब कोई ।  
प्रीत करी मैं सुख के कारण प्रीत किया दुख होई ॥  
आप तो जाय विदेस धसे हो मिलण किसी बिध होई ।  
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हैं मते सो होई ॥<sup>४</sup>

१. अनूप सं० पु० सासगढ़ (बोकारनेर) हस्तलेख सं १७० में संकलित ।

२. " " " " " " ११३ संकलित ।

३. " " " " " " हस्तलेख सं० ११२ से संकलित ।

४. राजारामान शोध संस्थान धोपासनी, जोधपुर हस्तलेख सं० ७१४३ में संकलित ।



## १०. भाषासक्ति—

राम दिवानी हो गई मैं तो राम दिवानी हो ।

भावे लोक हँसी करो, मेरे मन मानो हो ॥

लोक कुटुंब परवार तज्यो सेहों आनन पानी हो ।

स्वात बूंद रघुनाथजी तन सँ ससानी हो ॥

प्रेम सुधारम सोचता नहीं मैं धूँ अधानी हो ।

गावे मीरा व्याकुली हरि हाथ बेकानी हो ॥<sup>१</sup>

मीराबाई के ये पद अधिकांशतः श्रीकानेर और जोधपुर के प्राचीन हस्तलेख संग्रहों से छिटपुट प्राप्त हुए हैं । राजस्थान के अनेक श्रद्धा प्रयागर अभी तक अज्ञातोदित हैं । संभव है उनके मधन से मीरा के कुछ और पद प्राप्त हो जिनसे रामानन्दीय सम्प्रदाय के भक्तों तथा रामभक्तियारा से उनके सम्बन्ध पर नया प्रकाश पड़ता हो ।<sup>२</sup>

---

१. रा० शो० सं० जोधासनी (जोधपुर) हस्तलेख सं० ८२११ से संकलित ।

२. श्री कल्याण सिंह शेखावत ने इनके सकलन में प्रशस्तनीय प्रयास किया है । देखिये उनका शोध ग्रन्थ मीराबाई के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।

## नामानुक्रमणिका

अ

अग्नी नदन शरण--२८०, २८५,  
२८८  
अक्बर--४६, १३४, १३५, १३६,  
२३२  
अक्बरपुर--१६१  
अक्षतरनगर--१६१  
अगस्त्य संहिता--२६८  
अगोथरि--(मिथिला) ३०८  
अग्रजली--(अप्रसहचरी) ८०, ८२  
अग्रदास--२८, ३४-३८, ६६, ७०,  
७८-८२, ८५, ६५, १३८, २५८,  
२६०, २७३, २७४, २६४ २६५,  
२६६, ३००  
अग्रदाम पद्मावली--परि० १  
अग्रसागर--८२  
अग्रस्वामी--८२, ८३  
अणिमा सिंह--१७४  
अध्यात्म रामायण--१५१, २०२,  
२६६-२७८  
अनन्तस्वामी--२०  
अनन्तानन्द--२४, २७, ३२, २५८,  
२५६, २७३, २७४  
अनूप म० पु० लालगढ़, बीकानेर--  
परि० ३, ५  
अदुल मसूर अली खाँ सफदर अग--  
२३  
अमरसिंह--३०८

अमदही--१४८

अमतीरि--(जनकपुर) ३०८

अमररामायण--३०१

अमानीगज--१४८

अमीरसिंह--२७६

अम्बाप्रसाद सुमन--२८३

अम्बिका प्रसाद वाजपेयी--२८४

अयोध्या--६, ११, १३, १४, १६,  
२०, २३, ४३, ४७, ४१, १३५,  
१३६, १४३, १४७, १४८, १५१,  
१६१, १६३, १७३-१७६, १७८,  
१७६, २०३, २०७, २२०, २२१,  
२२४, २३०, २४५, २८१, २६२,  
२६६, २६७, २६८, ३००, ३०१,  
३०४, ३२३।

अयोध्या दिग्दर्शन--१४८

अर्यपञ्चक--३०३

अलख रामदास--३०६

अवध प्रसाद--३२७

अवधी भाषा का विकास--२८६

अष्टवाल चरित--८०

अष्टछाप--१५३

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय--  
१५७

अष्टछाप परिचय--१५४

अष्टयाम वार्तिक--३००

अस्सीघाट--२३०

आहिर्बुध्न्यसंहिता--१०

आ	उमाहा--४२
आगरा--१६०	अष्ट
आत्मसवध दर्पण--३०१	अष्टपिवेष्ट--३२७
आनंद कृष्ण राय--१३४, १३६	ए
आनंदराम--१५१	एच० एच० विल्सन--२७८
आनंद लहरी (टीका)--२८०	एटा--१३७
आमेर--३२, ३३, ३८, २५८-२६०	एम० जार्ज--२८४
आरा--३०७	एफ० एस० ग्राउज़--२७८
आलबदार स्तौत्र--१५, १६	एस० पी० टेमीटरी--२८४
आसफुद्दौला--१६०	एशियाटिक रिमर्क्स--२७८
आस्तिकाश्रम--१४८	ए हिस्ट्री आव साउथ इंडिया--१७
इ	ए हिस्टोरिकल स्केच आव दी फ़ैजानाद
इडेकम बर्बोरम आव दि तुलसी	तहसील--१६०
रामायण--२७८	ए हिस्ट्री आव इण्डियन फ़िलामफी--
इन्द्रदेव नारायण सिंह--२८१	२६८
इमुआपुर--(छपरा) २६८	ऐ
इस्वार दि ला लि-रेन्योर इन्दुई ए	ऐनीराम--२६४, २६५
इन्दुस्तानी--२७८	ओ
इस्लामपुर (पटना)--३०२	ओरहा--२८७
ई	ओरियण्टल कांग्रेस--२७८
ईश्वर प्रसाद नारायण सिंह--२८०,	औ
२८७	औरगजेव--१६१, २६२
उ	क
उज्जवल--उत्कठा विलास--३०३	कचनारी--३०८
उडुपी--१८	कनक भवन--३२०
उत्तरादिमठ--१८	कन्याकुमारी--३०२
उत्तरीभवानी--१४७	कवीर--२४, २७, २८, २६३,
उदयमानु सिंह डा०--१६६, २८२,	२६६, २७१, २७६
२८६	कमलकुंवरि रानी--१५६
उद्दालक--१४८	कमला (नदी)--३०७
उभय प्रबोधन रामायण--१४७,	कमला साकृत्यायन--२८५
१४६, २६२	कमियार--१४८

बल्याण--१६, ४२	अध्ययन--२८४
बल्याण मिह--परि० ६	कृपानिधाम--३०८
बलिजिन स्वामी--१६	कृपाराम--२६५
बबलानद--७१	कृपान्या--३०५
बबिनाबली--१५८, १५९, १६०,	कृष्ण--१३, २०३
२०६, २०८, २१०, २१२, २१३,	कृष्णदत्त मिश्र--१४१, १४६
२१५, २२४, २३४, २३८, २४०,	कृष्णदास--३१ ३३ ३४, ३६ २६०
२४५ २४६, २४८, २४९, २५४,	कृष्णदास पयहारी--२७ २८, २९,
२८५, २९१, ३१२।	३१, ४०, ४२ ४७ ७८ ७९, ८०
बस्तूरी गिरि--३०८	२५८, २५९, २७३, ३२६, ३०८,
बाठियावाड--३००	कृष्णमाधव--१३
बार्निक प्रसाद खत्री--२७६	कृष्णभार्य--१६
बामद गिरि--३०७	कृष्णानन्द रामभागर--८३
बामहराम--३७	बेनायली--१५२
बार्नगी--१६७	बेनवर्जी दहली--७५
बानिदास--६	बेभरिगिरि--३०८
बावेरी--६	बेविनेट डे प्राग--१३४
बार्गी--१८, २०, २१, १४१, १५६,	बौटरा--१४०
२०७, २२५, २३०, २३६, २८१,	बौठारी बाराहमी--१५१
२६२, २६३	कोर्दहराम मधिर--१६
बाण्ड जिल्ला स्वामी--२८०, २८७,	बौमिनी नदी--३०७
२६३, २६४	ख
बिला मुयारव--२३	खरदूषण--११
बिहारीसाल गुप्त--१४५	खलपुरा--२६५
बीह्लदाम (बीह्लम्हामी)--२६,	खेमदास--२६५
३४, ३५, ३६, ३७, ४७, ७८,	खैराबाद--१४०
८०, २५८, २६५, ३०६	ग
बुरेस स्वामी--१७	गगादास--२६५
बुलनोवर--६, ११, १२	गहरी--३०८
बुल्लू--(पञ्जाब) ३२	गणेशानन्द--२५८
बृत्तिवाम का बैंगला रामायण और	गरीबदास--२७२, ३०१
रामचरितमानस का बुलनालक	गण्ड--१३

- गलता—१६, २८, ३१, ३६, ४५, ५३,  
७८, ८०, २५८, २६५, ३२८  
गांधी—२०५, २२७  
गासी द तासी—२७८  
गिरधर शर्मा अनुवैदी—२८२  
ग्रियसंन—१४५, १६८, २७८, २७९,  
२८१, २९५, ३०४, ३२३, ३२४  
गीतगोविन्द—५३  
गीतावली—१३६, १५८, १७३,  
१८५, २११, २१६, २२१, २५४,  
२७५, २८२, २८५, २९१  
गीताप्रेस—२८०  
गुडहृदया ठापुरवाडी (भागलपुर)—  
३०३  
गुणरत्न कोप—१७, २६२  
गुरुपरम्परा—४३  
गुरुधत्त भारती—३०८  
गोकुलदास—७१, ७३  
गुनीनदी—३२७  
गोकुलदास—७१, ७३  
गोकुलपुर—१४८  
गोधनी—१३६  
गोण्डा—१३७, १४२, १४३, १४४,  
१४७, १४८, १५१, १५६, १६०,  
१६३, १६४, १६८, २८१  
गोपीनाथ कविराज—१५४  
गोमतीदास—३०४  
गोरखनाथ—२७, २६, २६४, ३२५  
गोरखपुर—१४२, ३२५, ३२८  
गोरखवानी—२६  
गोरख सिद्धान्त सग्रह—२७३  
गोमाईगज—१४८
- गोसाई चरित—१३८, १३९, १४०,  
१४३, १४४, १४६, १५२, १५४,  
१५६, २३०, २७९  
गोवर्द्धन—२६६  
गोवर्द्धन नाथ शुक्ल—१५७, २८१  
गोविन्द—२६६  
गोविन्दाचार्य—१६  
गोस्वामी तुलसीदास चरितामृतम्—१४०  
गोस्वामी तुलसीदास का जीवन  
चरित—१५६  
गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय—१६  
गौतम चद्रिका—१४१, १४२, १४६  
ज्ञानकूप—३०६  
ज्ञान तिलक—२२, ३६  
ज्ञानदेव—२४  
ज्ञानलीला—२२, ३६  
ज्ञानवती त्रिवेदी—२८२  
ज्ञानी सत सिंह—२८०, २८७  
ज्ञानेश्वर—२७२  
ग्राम साहित्य—१६७, १७०, १७७,  
१८०
- घ
- घनश्यामदास—३०८  
घावरा—१४२, १४५, १५१  
घृताक्षी कुण्ड—३०२
- च
- चतुर्भुजा जी—२६०  
चन्द्रगुप्त—६  
चन्द्रवली पाण्डेय—२८१  
चन्द्रमान रावत—२८६  
चन्द्रहास—१५१  
चन्द्रहट—१४०

चरणदास—६६, २६५  
 चरणदास शर्मा—२८२  
 चादपोल (गद्दी)—४७  
 चित्रकूट—१४, ४१, ४७, १३५,  
 १३६, १५६, २०७, २६३, २६७,  
 ३०२, ३०६, ३०७, ३०६, ३२७  
 चिन्तामणि घोष—२७६  
 चिन्तामणिदास—२६४, २६५  
 चिरान (छपरा)—२६४, २६५,  
 २६६, ३००  
 चौखाराम—४२  
 छ  
 छपरा—२६६, ३०३, ३०४  
 ज  
 जगजीवन साहव—२७२  
 जगत सिरोमणि मंदिर—२५६  
 जगदेवदास—१५१  
 जगदीशानारायण—२८४  
 जगन्नाथदास—२७२, ३०६  
 जगन्नाथपुरी—१८, ३०२, ३०७  
 जनकपुर—१७४, १७८, १८७, २११,  
 २१३, २४८, २७५, २६३, ३०२,  
 ३०५  
 जनगाँविन्द—३०६, ३०७  
 जनहरिया—५३  
 जन्मेजय झुड--१४८  
 जम्बूतीर्थ--१४८  
 जयपुर--२४, ३१, ४२, ४३, ४७,  
 ७८, ७६, ८०, २५५  
 जयपुर मंदिर (अयोध्या)—२६८  
 जसपुर—२६५  
 जलानपुर—२६५

जहांगीर—२३२, २५३  
 जानकी कुण्ड—३२७  
 जानकी गीत—५३  
 जानकी घाट—३००, ३०२  
 जानकी चरण—२६६, ३०८  
 जानकी जयन्ती—३०४  
 जानकीदास—१५०, १५१, ३०६  
 जानकी मंगल—१५७, १६५, १६६,  
 २१२, २१३, २१७, २२४, २४८,  
 २८२  
 जाम्बवन्त—६  
 जायसी (मलिक मुहम्मद)—२७,  
 १७६, २८७  
 जायसी श्यावली—२८७  
 जालान—३०१  
 जीवाराम युगल प्रिया—३२, ८०,  
 २७३, २६५, २६८, २६६, ३००,  
 ३०२, ३०६, ३०७, ३०६  
 ३२०  
 जे० ए० कारपेण्टर—२८३  
 जे० एम० मैक्की—२८३  
 जोधपुर—४१, ६५, परि० ६  
 जौनपुर—१६१  
 ज्योतिर्मठ—२४  
 झ  
 झाँझुदास—४१, ४३, ४५, ४६  
 ट  
 टिकारी (विहार)--२६६, ३००  
 टीकमगढ़--२८७  
 टेङ्गी सगम—१४८  
 ठ  
 ठाट्टी—३२७

ह

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (गोण्डा) — १४२

१४५, १४६, १४७, १६०

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर पंजाब — १६१

त

तत्परिचि—३०८

तजकिरतुल फुकरा—२५७

तपसीराम—३०३

समसा नदी—३०१

तानसेन—४६

तारानाथ यागी—२८ ३३,

२५८

तारी—२८१

तिरुपति—१० १६, ३०२

तिरुमलि शाह—१०

तिलोई राज्य (राजबरली)—३०१

तुलसी उद्यान—३०५

तुलसी का कथा-नित्य—२८३

तुलसी का काव्य दर्शन—२८३

तुलसी काव्य मीमांसा—१६६

तुलसी चरित—१३६

तुलसी का प्रगीत काव्य—२८३

तुलसी का सामाजिक दर्शन—२८२

तुलसी का समाज दर्शन—२८२

तुलसी की अलंकारयोजना—२८३

तुलसीदास की कारयिर्मा प्रतिमा—

२८५

तुलसी की काव्य कला—२८३

तुलसी की दृष्टि में नारी—२८२

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत—२८३

तुलसी की भाषा—२८६

तुलसी-प्रवादसी—१६७, १६८, २७५

तुलसीदास के भाव्य का मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण—२८४

तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य—२८२

तुलसी-दर्शन—२८२

तुलसीदर्शन मीमांसा—२८२

तुलसीदास आधुनिक वातायन से—

२८६

तुलसीदास (मा.प्रसाद गुप्त)—

१६६, १६६, १८४ १८७

तुलसीदास का अन्तर्गत—२८५

तुलसीदास आज के सधर्म में—२८६

तुलसीदास और भारतीय सत्त्व—

२८८

तुलसीदास (गास्वामी)—२४-२७,

३०, ३६ ४०, ८२, १३७

तुलसीदास और उनका साहित्य—१५७

तुलसीदास और उनका काव्य—१५३,

१६०

तुलसीदास के रामचरित मानस का

मूलाधार व रचना विषयक समा-

लोचनात्मक अध्ययन—२८०,

२८१

तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय

के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुनच्छन

का तुलनात्मक अध्ययन—२८४

तुलसी मिथ्या (श्रीमती)—२८४

तुलसी शब्दकोश—२८७

तुलसी सतसई—२८२

तुलसी साहब—२७२

तुलसी साहित्य के बदलने प्रतिमान—

२८६

तोतादि मठ—१४

त्रिभुवननाथ चौवे- - २८८

त्रिवेणी सगम- - २६७

थ

थियोलाजी आव तुलसीदास- - २८३

द

द बलासिकल एज- - ६

दत्तसिंह, महाराज ( गोडा )- -

१६०

दर्घावि- - ३१

द माडन वनकियुलर लिटरेचर ऑव

हिन्दुस्तान- - ३२४

दयाराम (महात्मा)- - ३०६

दरादगज- - १४८

दरियावाड- - १६१

दरियासाहब- - २७२

ददिस्तानुल तवारीख- - २५७

दशनामी (गैब)- - ३०८

दशरथ- - २२०, २४८

दासकवि- - १३८

दासाय्यदास १३७, १३८, १४४

दिकोलिया- - १३६

दि रिलीजस पालिसी आव मुगल

एम्परर्स- - २६३

दिवाकर- - ८१

दिल्ली- - १६०

दीनदयाल गुप्त (डा०)- - १५७

दूलमदाम- - १६१, १६२

देवकीनन्दन साहब- - २७२

देवकी नन्दन श्रीवास्तव- - २८६

देवनारायण द्विवेदी- - २८८

देवमुरारि- - ८१

देवराजाचार्य- - १७

देवरिया- - ३५, ३२५, ३२७, ३२८

देवस्वामी- - २६३

देवाचार्य- - १६, २०

देवाजी- - २५९, २६०

देवादास- - २६५

देवानन्द- - २५६

देवी भागवत- - १४७

देवेन्द्र सिंह- - २८५

दो सी दावन वैष्णवन की वार्ता- -

१५१, १५३ १५८, १५६, १६३,

२०१, २०६,

दोहावली- - २०७, २०८, २०९, २१३,

२१५, २१६, २१७, २२२, २२५,

२२८, २३३, २३८, २४१, २४३,

२४५, २४७, २४६, २५४, २७०,

२८२, २६१, ३१२

द्वादश स्तोत्र- - १६

द्वारकादास- - ३५

॥

धनीदास- - २७२

धीरेन्द्र वर्मा (डा०)- - १५३

ध्यानमजरी- - ३७, ७०, ८१, ८२,

२७४, २६४, २६६।

न

नगवा- - १४८

नचिनेता- - १४८

नत्थुदास- - ३०६

नददास- - १५१, १५५, १५७

नददाम ग्यावली- - १५६

नदीर- - १४२

नम्मालवार- - १०, २६८, २७३

नरवोरी- - २६८, ३०६



- नरसिंह (नरहरि)--१३६, १४२, १५१  
 नरहरि तीर्थ--१८  
 नरहरिदास--२४, १५७, २०३, ४६  
 नरहर्मानन्द--२४  
 नरेन्द्रकुमार--२८३  
 नवनिधि--२७२  
 नवरहस्य प्रकाश--४७  
 नागरी प्रचारिणी पत्रिका--१५३  
 नागरी प्रचारिणी सभा, वार्ता--२६६, २६०  
 नाथमुनि--६, १३, १४, १५  
 नाथमुनियोग पटल--१४  
 नाथ सम्प्रदाय--२६५, २७२  
 नानक--२७२  
 नानकवाणी--२७२  
 नाभादास--१२, २०, २८, ३१, ३५, ३७-३६, ७३, ७५, ७६-८२, ८५, २५८, २६०, २६६, २७८, २७६  
 नामदेव--२५६-२५८, २६२, २६३, २७१  
 नामदेव के हिन्दी पद--२५७, २६३  
 नारायण महारमा--३२५  
 नासिक--३६  
 निध्वाचार्य, रामसखे--१६, ३२२, ३२३  
 निर्मलीकुण्ड--३०२  
 निराला, भूयंकान्त त्रिपाठी--२७६  
 निपनिया--२६८  
 नीमपार--१३६, १४०, १४६, २६८  
 नूरजहाँ--२५३  
 नृत्यराघवमिलन--१८  
 नृसिंह--१३  
 नृसिंहाचार्य--१७  
 नेपाल--३२७  
 नेहवर्ती--२६७  
 नेह प्रकाश--७०  
 नौ आही--३०२  
 प  
 पचमगा घाट--२०  
 पचवटी--१३६, ३०२  
 पधस्ती--१७  
 पण्डित पुरवा--३०१  
 पाचरात्र--६  
 पुढरीक--१५  
 पचारी--३०२  
 पटना--३०३, ३०४  
 पटरगा--१४८  
 पद मुक्तावली--४१, ४२, ४८, ४६, ५३, ६८-७५, ७७, ६५,  
 पदावली--८२, ८५, १३८, ३००  
 पद्मावत--१७६  
 पद्मावती शबनम--२५८, २६०  
 परमानन्ददास--२६५  
 परशुराम चतुर्वेदी--परि० ४  
 परसा (सारन)--३०३  
 पराशर भट्ट--२६२  
 पराशर भट्टाचार्य--१७  
 पारस भाग--३०३  
 परिसोख--१६७, १८४  
 पसका (गोण्डा)--१४०, १४२, १४३, १४४, १४५, १५१, १६३  
 पलटूदास--२७२  
 पलटू साहव की शब्दावली--१६२

पावर्ती मंगल—१५७, १६५, २१२,

२१३, २१७, २१८, २८२

पिपरा—२६८

पीताम्बरदत्त बडधवाल—२३, १५४

पुष्करिणी—२६८

पुरुषोत्तमाचार्य—१६, २०

पुष्कर (राजस्थान)—२८, ३२,  
२६४

पूर्णदास—३०७

पूर्णबैरागी—८१

पूणिमा—३०३

पृथ्वीराज—३२, ३३

पृथ्वी सिंह—२८, ३८

पे—१०

पेटमल तिरुमुडि—१३

पैकोली—३२६, ३२७, ३२८

प्रपन्नामृत—१०, ११, १३-१८

प्रभान—डा० २५६

प्रभावती गुप्ता—६

प्रभुदयाल भीतल—१५३-१५५

प्रयाग—२०, ३६

प्रयागदत्त—२६६

प्रयागदास—४८, २६६, २६७

प्रयागदास जर्गी—८१

प्रसादराम—३०७

प्रभादीराम—३०७

प्रियादास—१२, १८, ३१, ७६,  
१५६, २६०, २७८

प्रेमसखी—३०८, ३०९

प्यायगार—१०

फ

फलेमार मठ—१८

फल्गु नदी—३०२

फोत्रेन—डा० ३०३

फंजावाद—२३, १४८, १६१

ब

बक्सर—३०५

बगीरा—३०४

बघनगरी—२६८

बडजियर मठ—१४

बडहलगज—३२६, ३२८

बडागाँव—४६

बदरिकाश्रम—१८

बदरीनाथ—२६८

बनादास—१४७, १४८, १४९, १६१

बरवैरामायण—१५८, २५२, २८२

बराही—२६८

बरेली—१५६

बलदेवदाम 'बन्ध्रमयी'—४७

बलदेवप्रसाद मिश्र—२८२

बलदेव उपाध्याय—२५७

बलवाटोला—३०१

बेलहा—३०६

बलिया—२८१

बम्ती—१३७, १४८, १५६

बहराइच—१६३, १६८, २१५, २४५

बावर—१६१

बानूराम सक्सेना—डा० २८६

बाखावकी—१६१, १६८

बालकृष्णदास महन्त—३०७

बालकृष्ण देव तैलग—२८७

बालकृष्ण नायक बालअली—४१, ७०,

८१

बालाजी—१४

मैथिली लोकगीत--१७४, १७८, १८३

मैथिली रहस्य पदावली--३०२

मैसूर--१८

मैहर--१६

मोदलता--३०६

मोरिया--३०८

मोरोपन्त--१५२

मोहनदास--३०७

मोहन शुक्ल--१३८, १३६

मोहन सिंह--२५७

मोहिनी श्रीवास्तव--२८७

मीजीराम--२६५

य

यशोधर्मन्त--१०

यादवाचल--१६

यामुनमुनि--१५, १६

यारीसाहब--२७२

युगलमजरी--४७

युगलानन्द शरण हेमलता--१६१,

१६२, ३०२, ३०३

योगेन्द्र प्रताप सिंह--२८३

युगेश्वर--२८६

योगचिन्तामणि--२२, ३६

योगप्रवाह--२१, १५५

योगमार्ग--(सोरो) १५३

र

रगाचार्य--१४

रघुनाथदास--३०५

रघुनाथदास रामसनेही--२६२

रघुनाथाचार्य--१४

रघुराजदास--८१

रघुराजशरण शर्मा--२८८

रघुराज सिंह--७६, ८०

रघुवर गुण दर्पण--३०३

रजनीवात शास्त्री--२८१

रज्जव--२७२

रत्नसागर--३०५

रमन दुवे--२६६

रमानाथ त्रिपाठी--डा० २८४

रमेश कुतल मेघ डा०--२८६

रवनाही--(फैजाबाद) १४०

रशीदुद्दीन मालाना--२५७

रसिन अली (जनक राजकिशोरी शरण)--८१, ३००

रसिक सम्प्रदाय--५३, २७६

रहस्य पदावली--१६२

राघवदाम--२० ३०८

राघवानन्द--१६, २०, २१, २२, ८७, २६२, २६८, २६६

राजगिरि--६

राजपति दीक्षित--२८६

राजयोग--२७, ३६-३८, २७४

राजराघवदास--३००, ३०१

राजस्थान प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान--६५, परि० ३

राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी (जोधपुर) २६२, परि० १, २, ३,

४, ५, ६

राजापुर--२८१

राधाकृष्णदास--२७६

राधाकृष्ण मंदिर--(पटना) ३०८

राधावल्लभ सम्प्रदाय--१५८

रागेय राघव--२८३

राजकुमार पाण्डेय--२८३

राम अवतार—२८३  
 राम अवधदास—१५१  
 रामउदार सिंह—३०२  
 रामकवि दीलत राम—१४२  
 रामकिंकर—२९९  
 रामकिशोर शुक्ल—२८१  
 रामकिशुनदास—१५१  
 राम की शक्ति-यूजा—२७६  
 रामकुमार वर्मा डा०—२८२, २८५  
 रामगुलाम द्विवेदी—१६८, २८१  
 रामगुलेला—२६५  
 रामघाट—४३  
 रामचद्रिका—६५, २७६  
 रामचद्रिका और रामचरितमानस का  
 तुलनात्मक अध्ययन—२८४  
 रामचद्र शुक्ल—२५, १३७, १५३,  
 १६८, १८७, २८५, २८७, २८६  
 रामचरणदास—८१, १४३, १५०,  
 २६८, २६६, २८०, २८७, ३००,  
 ३०३  
 रामचरित चिंतामणि—२७६  
 रामचरितमानस—२४, ८०, १४३,  
 १५०, १५४, १५७, १६६, १७२,  
 १८१, १८५, १८६, १८६-२०५।  
 रामचरितमानस का काव्य शास्त्रीय  
 अध्ययन—२८३  
 रामचरितमानस का तत्त्वदर्शन—  
 २८२  
 रामचरितमानस की काव्य कला—  
 २८३  
 रामचरितमानस की वर्णानुक्रमणिका—  
 २८७

रामचरितमानस के साहित्यिक  
 स्रोत—२८१  
 रामचरितमानस-वाग्वैभव—२८३  
 रामचरितमानस में भक्ति—२८३  
 रामछटा—१४६  
 रामजानकी मंदिर (पटना)—३०६  
 रामज्योनार—८२  
 रामटहलदास—१४  
 रामतत्त्व सिद्धान्त—३०२  
 रामदत्त—२१, ३०१  
 रामदत्त भारद्वाज डा०—२८१, २८२,  
 २८५  
 रामदगल—३०८  
 रामदास वादस्य—३०७  
 रामदीन सिंह—३०४  
 रामध्यान मजरी—८२  
 रामनरेश त्रिपाठी—१५३, १५६,  
 १६०, १६७, १७०, २८१, २८७,  
 २८६  
 रामनवरत्न सार संग्रह—२६८  
 रामनाम माता—२६६  
 रामनिरजन पाण्डेय—२८३  
 रामपट्टी—२६८  
 रामपुर—१४०, १५१, १५३, १५७  
 रामप्यारी देवी—३०४  
 रामप्रकाश अग्रवाल—२८४  
 रामप्रसाद—१४३, ३२५  
 रामप्रसाद बिन्दुनाथ—८१  
 रामप्रसाद शरण—२८८  
 रामप्रियाशरण प्रेमचली—२६७, २६८  
 रामनहोरी शुक्ल—२८१  
 रामपाल दास—२८५

रामभक्ति और हिन्दी साहित्य में  
उसकी अभिव्यक्ति—२८३

रामभक्ति परम्परा और साहित्य—  
२७२

रामभक्ति में रामिक सम्प्रदाय—३६,  
४१, ४६, ४७, ७१, ८१, २६६,  
३२०

रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—  
२६२

रामभक्ति दाखा—२८३

रामभारती—२१

राममित्र—१५

रामरक्षा—२६६

रामरक्षा त्रिपाठी—१४८, ३०५

रामरक्षा स्तोत्र—२२, ३६

रामरसिकावली—८०

रामरासवीपिका—३०१

रामलला—२६८, ३०६

रामलला नहछू—१५७, १६५, १८८,  
२१२, २१७, २४७, २४८,  
८८२

रामलाल सिंह—२८३

रामशंकर शरण—३०५

रामशरण—३०१

रामशरणदाम—२६६

रामशलाका—२१६

रामसिंह महाराज—४७, २६५

रामसेवक—३०७

रामस्वरूप ज्योतिषी—३०१

रामाज्ञा प्रश्न—१५८, २१६, २५६,  
२८२

रामाजी—३०४

रामानंद—२१-२४, २७, ३१, ३६,  
३६, ७१, ७५, २२३, २५६,  
२५७, २५८, २५९, २६२, २६५,  
२७०, २७१

रामानंद की हिन्दी रचनाएँ—२३,  
३६, २६६

रामानंद सम्प्रदाय—१५१, १५४,  
२५८-२६०, परि० ६

रामानुज—६, १४, १६, १७, १६,  
२२, २२३, २६५, २६२

रामानुजदास—३०६

रामानुज हृष्यमरम—४३, ४६, ४७

रामानुज संप्रदाय—२६६

रामायण-टीका—१५०

रामायण मानस प्रचारिका टीका—  
१५०, १५२

रामायणोत्तर सञ्ज्ञित काव्य और राम-  
चरित मानस का तुलनात्मक  
अध्ययन—२८४

रामायत सम्प्रदाय—१६

रामार्चन—३०७

रामार्चन पद्धति—२२

रामाष्टयाम—८२

रामेश्वर मठ—२८०, २८८

रामेश्वरी—२६५

रीवा—७६, ३०२

रूढयामलतत्र—१४६,

रूद्र सम्प्रदाय—१३

रूपकला—२४, ३५

राप्ती—(नदी) ३

रैदास—२६०, २

रैपुरा—३०६

ईवासा (राजस्थान) ७८, ७९, ८०, वाराह मन्दिर--६, १५१  
२५८, २६४

ल

लक्ष्मण--१६  
लक्ष्मणविला--२३  
लक्ष्मणदाम--४६  
लक्ष्मीकुमार तानाचार्य--१७  
लक्ष्मीनारायण--१३  
लक्ष्मीनारायणदाम घमहारी--३५,  
३२५ ३२६  
लखनपुर--१४८  
लखनऊ--१४०  
लघुनेसव--७१, ७५  
लवकुश--१३  
ललिताप्रसाद दुवे--१५३  
लाडलीलाल शरण--३०१  
लाल गुलाम--७१, ७५  
लाला भगवानदीन--२८५, २८८  
लाला मीलाराम--२८५  
लोकाचार्य--१७, १६  
लौमपाद--२४६  
लोहार्गल सीवर--४७

व

वर्गीलाल, महात्मा--३०८  
वचनदेव कुमार--२८३  
वरग्राम (बिहार)--३०६  
वरवरमुनि जिलक--१७  
वल्लभ सम्प्रदाय--१५८  
वर्गीश दत्त पाण्डेय--२८७  
वामन--१३  
वायुपुराण--२४६  
वाराही सम्प्रदाय--२७२

वाल्मीकि--१५४  
वाल्मीकि आश्रम--१४०  
वाल्मीकि रामायण--६ ११ १४,  
१५, १६ १५१, १७३,  
१७४, १७६, १८५, २०२,  
२४८  
वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामा-  
यण और रामचरितमानस के नारी  
पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन-  
२८४  
वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक  
मूल्यांकन--२८४  
वामुदेवदास--३२१, ३२  
वामुदेवशरण अग्रवाल--१३४  
विजयनगर--१७  
विजयाटीका--२८०  
विजयानन्द त्रिपाठी--२८०, २८५,  
२८८  
विट्ठलदास--१५२  
विट्ठलपन--२४  
विद्याधर--३२  
विद्यामिश्र--२८४  
विनयकुमार--२८३  
विनय पत्रिका--१३६, १५८, १५९,  
१८६, १९०, १९२, २०९, २१०,  
२१८, २१९, २२७, २२८, २३४,  
२३६, २३९, २३८, २४१, २४२,  
२४३, २४४, २८२, २८५, २८९,  
३१८  
विनयपीवूष--२८८  
विनायकदास--२८०, २८८

विनायकी टीका—२८०

विनोद स्वामी—६६

विनोवा—२०५

विभीषण—६, १५, २२५

विमला—(नदी) ३०६

वियोगी हरि—२८५, २८८

विष्णुधन-राजा—१७

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—१४२, २८१,

२८२, २८५, २८६

विश्वनाथ सिंह, महाराज—३०२

विष्णुकाची—२२३

विष्णुशर्मा—२८२

वीर कवि—२६०

वीरशंकर—१७

वृन्दावन—१५३

बृहत्सहिता—६

बृहद् ब्रह्म संहिता—१३

बेकटाचल—१०, ११, १६

बेदान्ताचार्य—१६

बेन—२७८

वैराग्य सदीपनी—१५८, २२८, २८२

वैष्णवदास—२६६

वैष्णवमताब्ज भास्कर—२२, २५६,

२५६, २६२

वैष्णविजय शंविजय—(भंडारकर)

१८

श

शंकरदास—२६८, २६९

शंकराचार्य—१५४, २२३

शठकोप आलवार—६, १०, ११,

२६८

शम्भुनाथ चौबे—२८५

शरणागति गद्य—१७

शाता—२४८

शाण्डिल्य—१४२

शारदाधम उदासीन—२७२

शालिग्रामी (नदी)—३०७

शालीत बोद बील—२८०

शाहगज—१६१

शाहाबुद्दीन गोरी—१६१

शिवकाची—२२३

शिवकुमार शुक्ल—२८४

शिवनदन सहाय—२८१

शिवपूजन सहाय—२८६

शिवराम पाण्डेय—३२५

शिवलाल पाठक—२८०, २८७

शिव व्रतलाल—२७२

शिर्वांसिंह सरोज—१३८, १४४, २७६,

३२४

शिर्वांसिंह सेंगर—१३८, १४४, २७६,

३२३, ३२४

शुक्लदेवलाल मुर्शी—२८०, २८७

श्रुंगीश्रुति का आश्रम—१४८

श्रुंगवेरपुर—३०६

श्रुंगाररस रहस्य—३००

श्रुंगार सागर—८२

शेष—१६

शेष पंडित—१५४, १५५

शेष सनातन—१५४, १५५

शैलपूर्ण स्वामी—१६

शैलेशस्वामी—१६

शोभाश्री चतुर्वेदी—२६८

श्यामदास—२६४, २६६

श्यामपुर—१५३, १५७

- श्यामसुन्दरदास—२७६-२८१, २८५,  
२८८  
श्रीकातसरण—१७३, १७४, २८०,  
२८५, २८६  
श्रीकृष्ण गीतावली—१५८, २८२  
श्रीधर सिंह—२८५  
श्री भक्ति प्रकाशिका—३२६  
श्री भगवान—३०७  
श्रीभाष्य—१६  
श्रीमद्रामानन्द दिग्विजय—२१  
श्रीमन्मानस अभिप्राय दीपक—२८०  
श्री रंगदेव—१६  
श्रीरंगधाम—६  
श्रीरंगपुरी—३०२  
श्रीरामरहस्य त्रयार्थ—१०, १४, १५  
श्रीराम पदशर प्रपत्ति स्तोत्र—१५  
श्री वचनभूषण—१७  
श्री वैष्णव सम्प्रदाय—६, १३, १५,  
१६, १६, २३१, २५७, २६५,  
२७२  
श्रीशकुमार—२८०, २८२  
श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश—  
३०३  
श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदास वे-  
चरित—१४४  
स  
सगीतराग वत्पद्म—८३  
मन साहित्य मण्डल (बीकानेर)-  
परि० ३  
संत नामदेव की हिन्दी पदावली—  
२७१, २७२  
संशोषमणि—३०८  
सदीला—१४०  
सपतकुमार—१६  
सतवचनावली—३०३  
सतवाणी सग्रह—१६२  
मत सिंह पजाबी—२८०  
सआदत अली खाँ—१६०, २३  
सत्यनारायण शर्मा—२८३  
सद्गुरुशरण अवस्थी—२८१, २८५  
सदाशिव संहिता—१०, २६८, २७४  
सनक सम्प्रदाय—१३  
सफदरगज, अब्दुल ममूर अली खाँ—  
२३  
समर्थ गुरु रामदास—२२२  
ममस्तीपुर—३०७  
सय्यद मसूद बेहानी—१६१  
सय्यद सवाहुद्दीन अब्दुल रहमान—२५६  
सय्यद सालार मसऊद गाजी—१६१,  
१६२, २१५, २४५  
सरया (छपरा)—३०५  
सरयू—११, ४३, १४२  
सर्वसिद्धान्त सग्रह—१५४  
सहजराय—३०७  
सहस्रगीति—१०  
सिक्दरपुर—१४८  
सिमरदेही—२६८  
सिद्धान्ततत्त्व दीपिका—७०  
सिद्धान्त तिलक—२८०  
सिद्धान्त पञ्चन्यासा—२१  
सिद्धान्त पटल—२२  
सिद्धान्त पंचयात्रा—२६८, २६९  
सिद्धान्त मुक्तावली—३०१  
सियावार—१४



- सिधासयी (गोपालदास) — ४४, ४६, गुरंगानं नागवी — २८७  
 ४७ गुरंगुट — १४८  
 सिवान — ३०४ गेठ गोविन्ददास — १५४  
 सिधासरण — ४५ गीदुर (मिथिला) — ३०७  
 मिमिनी — ३०८ गोरों - १३७; १४५, १४३, १५७,  
 सीकर — २६५ १६०, २८१  
 सीताराम — १३ गोरों सामग्री पर एक दृष्टि - १५७  
 सीताकुण्ड — १४८ स्नेहलता - ३०६  
 सीतापुर — १३६, १४० ह  
 सीताप्रसाद — ३०६ हताला — ३०३  
 सीतामढ़ी — ३०५, ३०६ हजारासाम मंदिर - १७  
 सीताराम कपूर - २८१ हजारीप्रसाद द्विवेदी - १५३  
 सीताराम नेहवाटिया — ३०३ हठयोग - २६४  
 सीताराम ग्याह वेदी — ३०६ हनुमान - ६, १३, १४, १५, १८,  
 सीतारामदरण भगवानप्रसाद रूप- १६  
 बला — ३०३, ३०४ हनुमानवाट — १८  
 सीतारामीय हरिहर प्रसाद — २८०, हनुमान प्रसाद पीडार - २८०, २८८  
 २८७, ३०२ हनुमान बाहुक - २२२, २३६  
 मुधराम गिरि — ३०८ हनुमान मंदिर - २६१  
 मुर्षाव — ६ हनुमान हठीले - ८१  
 सुंदरदास — २७२ हृद्धार - ३२७  
 सुदामापुरी — ३०० हृद्धारीलाल शर्मा - २८५  
 मुद्राकर द्विवेदी — २७६ हरसोली — ४४, ४६  
 मुरमरि - ३०२ हरिवृष्णदास — ३०६  
 मुरमुरानंद - ७१, ७५, ३०६ हरिजनदास — ३०६  
 मूरखेन - १३६-१४०, १४२, १४४, हरिदासी सम्प्रदाय - १५८  
 १४६-१५१, १५६, १६३, १६४, हरिद्वार - ३६  
 २०३, २४५ हरिनाम सवीर्तन - ३०४  
 मूरकिशोर - २६५-२६७, ३०६, हरिमन्त्र रसामृत सिन्धुवेला — २०  
 ३२०, ३२२, ३२३, ३२४ हरिलास - ३०८  
 मूरजरोल — ३१ हरिवंशपुराण - २४६  
 मूरदास - २५, २७, १६५, २५५ ३०६ हरिसहचरी, हरिया साथी - ५३

हरिहरनाथ टुक्कू डा०—२८३

हरेराम—३०६, ३०८

हरेराम जीवन—३०६

हर्याचार्य—४१, ४२, ५३

हर्षभारती—३०८

हर्षवर्धन—१०

हवेली—१५६

हस्तिनापुर—२८१

हाजीपुर—२८१

हिंगलाज—२६४

हितहरिवंश—३०८

हितोपदेश उपपाणवावनी—८२

हिन्दी वैष्णव भक्तिकाव्य तथा काव्य  
सिद्धान्त—२८३

हिन्दी साहित्य—१५३

हिन्दी साहित्य का इतिहास—१३७,  
१५६

हिन्दी साहित्य को मराठी सतों की देन—  
२५७, २६८, २७२

हिन्दुस्तान का मध्यकालीन साहित्य  
विशेष रूप से तुलसीदास—२७८

हुमायूँ—२३२

हृदयराम—१४०

हेमानंद—४२, ४६